Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख की संस्कृति एवं परम्परागत तिब्बती चिकित्सा प्रणाली

(Traditional Tibbtan System of Medicine and Culture of Ladakh)

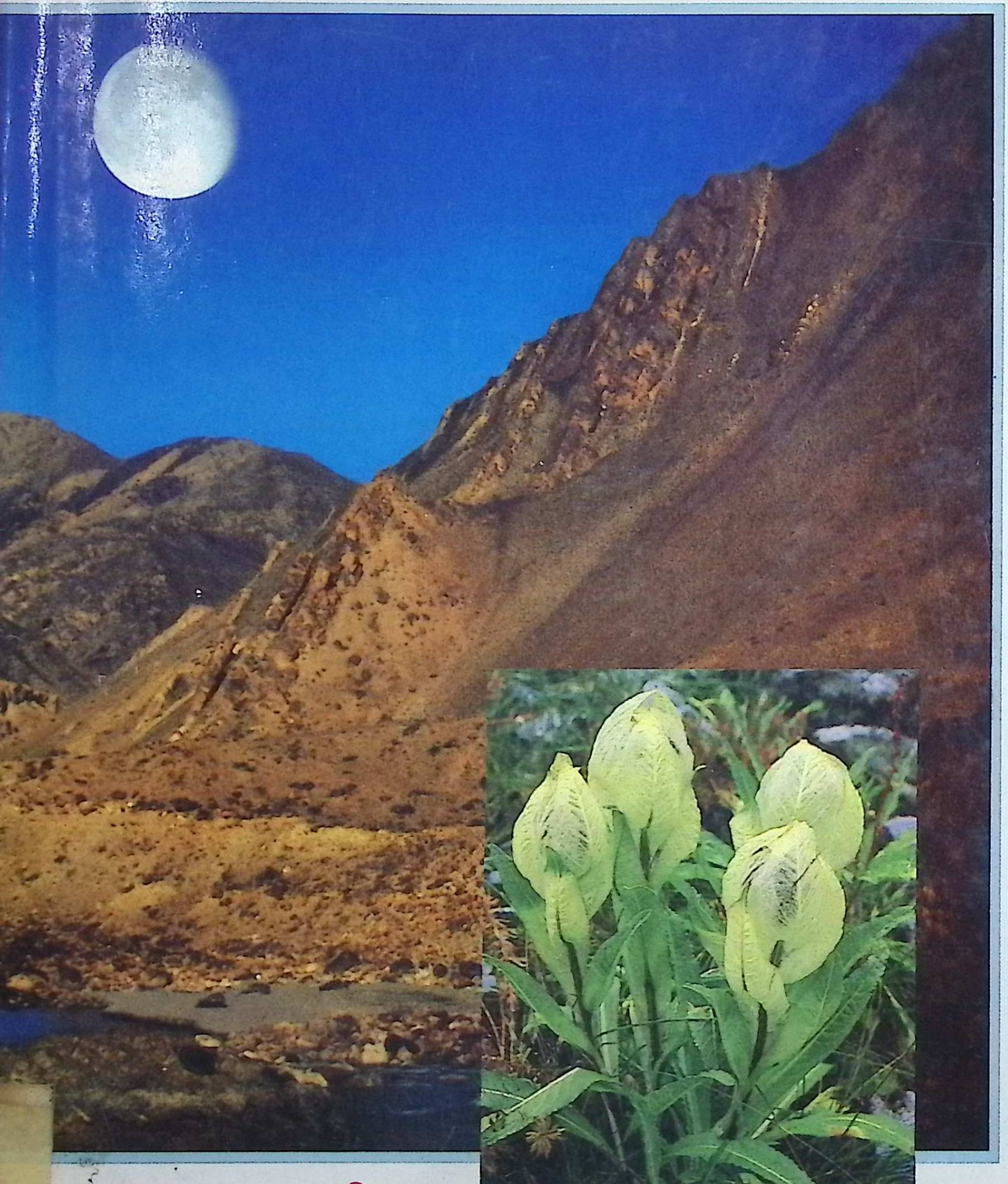

डॉ. मायाराम उनियाल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख की संस्कृति एवं परम्परागत तिब्बती चिकित्सा प्रणाली

इस शोध ग्रन्थ में लद्दाख की संस्कृति एवं परम्परागत तिब्बती चिकित्सा प्रणाली के बारे में जानकारी दी गई है। प्रथम प्रकरण में खण्डित चन्द्रमा का प्रदेश लद्दाख का भौगोलिक परिचय, भाषा-धर्म, रहन-सहन एवं बौद्ध मठों (मोनेस्ट्री) के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। दूसरे प्रकरण में परम्परागत आमची चिकित्सा में उपयोगी जड़ी-बूटियों, खनिजों एवं जान्तव द्रव्यों के स्थानिक नाम, संस्कृत नाम, तिब्बती नाम एवं वानस्पतिक नामों के साथ विस्तृत विवरण दिया गया है।

प्रस्तृत ग्रन्थ में लद्दाख में उपलब्ध 400 के लगभग औषधीय पादपो एवं खनिजों का सचित्र वर्णन आयुर्वेदिक गुणधर्मो के साथ किया गया है।

यह नवीन शोध ग्रन्थ अनुसन्धानकर्ताओं एवं आयुर्वेदिक एवं तिब्बती औषध द्रव्यों में रूचि रखने वाले बुद्धिजीवियो के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख की संस्कृति एवं परम्परागत तिब्बती चिकित्सा प्रणाली

(Traditional Tibbtan System of Medicine and Culture of Ladakh)

लेखक

डा. मायाराम उनियाल

वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका)

आयुर्वेद पुनर्वसु (भारत)

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No. LX.......N99........
Book No.
Acc No. 000024

प्रकाशक

उनियाल आरोग्य प्रकाशन

बी-98,, अवन्तिका, रोहिणी, सैक्टर-1 दिल्ली-110085

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यह पुस्तक ''केंद्रीय हिंदी निदेशालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के संस्वीकृत पत्र संख्या मि. सं. 5-70/97-के. अनु. ए. दिनांक 11-12-98 के माध्यम से प्राप्त वित्तीय सहायता से प्रकाशित हुई है।

© डॉ. मायाराम उनियाल

मूल्य : **134.00** रुपये मात्र

प्रथम संस्करण : ग्यारह सौ प्रतियाँ

वर्ष : अप्रैल **1999**

प्रकाशक :
उनियाल आरोग्य प्रकाशन
बी-98, अवन्तिका, रोहिणी,
सैक्टर-1, नई दिल्ली-110085
दूरभाष-011-7271233

मुद्रक :
लखेड़ा प्रिंन्टिग प्रेस
ए-18, अवन्तिका, रोहिणी,
सैक्टर-2, नई दिल्ली-110085
दूरभाष : 7274754

कवर डिजाईनिंग एवं रेखाचित्र
श्रीमती सीमा थपलियाल व श्रीमती विजयलक्ष्मी

मुख पृष्ठ
लद्दाख की सिन्धू नदी घाटी (Indus River Valley) का नैसर्गिक सौन्दर्य एवं दिव्यपुष्प बह्मकमल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

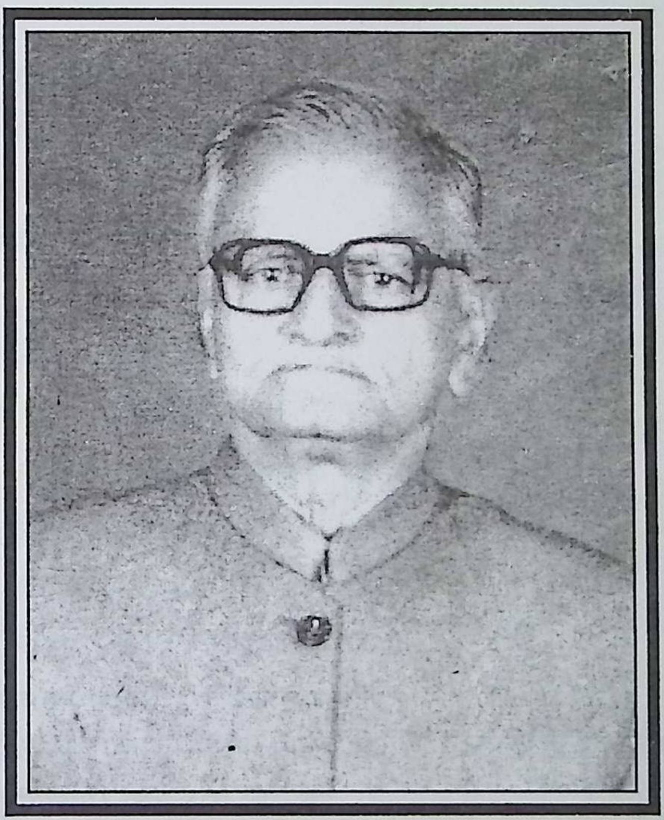

आयुर्वेद मनीषी आचार्य प्रियव्रत शर्मा जी को सादर समर्पित

डॉ. मायाराम उनियाल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विषय-अनुक्रमणिका

1. प्राक्कथन — xiii
2. लद्दाख का मानचित्र — xvi
3. खण्डित चन्द्रमा का प्रदेश लद्दाख का भौगोलिक परिचय — 1-25
   - i. हिमालय की उत्पत्ति — 2
   - ii. मानसरोवर — 4
   - iii. कैलाश पर्वत का पौराणिक महत्व — 5
   - iv. यातायात के साधन एवं प्राकृतिक सौन्दर्य — 6
   - v. रहन-सहन — 8
   - vi. सुलजा (नमकीन चाय) — 9
   - vii. त्यौहार — 10
   - viii. कृषि एवं बागवानी — 11
   - ix. भाषा-धर्म एवं मठ (मौनेस्ट्री) — 12
   - x. हिमाच्छादित् लद्दाख का महान सांस्कृतिक पर्व लोसर का मेला — 15
   - xi. संसार की बर्फीली छत है 'लद्दाख' — 18
   - xii. लद्दाख की घाटियाँ एवं तहसील — 19
   - xiii. पूगाघाटी में गंधक निकालने का पहला कारखाना — 24
4. लद्दाख की परम्परागत आमची चिकित्सा प्रणाली — 26-40
   - i. प्राकृतिक खनिज एवं गन्धक (सल्फर) आदि के जल स्रोतों के पानी से चिकित्सा — 26
   - ii. दहन कर्म (अग्निकर्म) विधि द्वारा चिकित्सा — 28
   - iii. शिरामोक्षण विधि द्वारा चिकित्सा (बिनिसेक्शन) — 29
   - iv. तंत्र-मंत्र विधि द्वारा चिकित्सा — 32
   - v. जान्तव द्रव्यों द्वारा चिकित्सा — 32
   - vi. एक्यूपंक्चर विधि (सूचीवेध) द्वारा चिकित्सा — 33
   - vii. जड़ी-बूटियों एवं खनिजों द्वारा चिकित्सा — 35

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

5. तिब्बत में आयुर्वेद का प्रसार 41-50
6. वानस्पतिक द्रव्यों की पहिचान एवं स्थानिक प्रयोग 51-127
   i. दिव्यौषधि-अजश्रृंगी 73
   ii. दिव्यौषधिः आदित्यपर्णी एंव ब्रह्मसुवर्चला 88
   iii. हिमालय की मलेरिया (विषम ज्वर) की परम्परागत बूटी 'पशाक' 95
   iv. दिव्यौषधि : 'लक्ष्मणा' 99
7. रस शास्त्र में वर्णित खनिजो का ऐतिहासिक महत्व एवं लद्दाख हिमालय की परम्परागत तिब्बती चिकित्सा में खनिजों का उपयोग 128-147
   i. रसौषधियो द्वारा चिकित्सा करने के लाभ 130
   ii. खनिजों का ऐतिहासिक महत्व एवं वर्गीकरण 131
   iii. लद्दाख हिमालय में उपलब्ध खनिजों, लवणों पाषाण एवं रत्नों का उल्लेख 134
8. कस्तूरी मृग (**Moschus moschifrus**) 148
9. लद्दाख में तिब्बती चिकित्सा प्रणाली में प्रयुक्त जड़ी-बूटियों के स्थानिक प्रयोगों की संक्षिप्त तालिका 151-177
10. लद्दाख में उपलब्ध औषधोपयोगी खनिज एवं स्थानिक प्रयोग की संक्षिप्त तालिका 178-180
11. औषधीय पादपों एवं खनिजों के तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत एवं वानस्पतिक नामों की अनुक्रमणिका 181-197
12. आधारभूत सन्दर्भ ग्रन्थ तालिका 198-199

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती चिकित्सा पद्धति की उपादेयता में धर्मगुरू दलाईलामा के उद्गार

सभी प्राणियों में कष्टों से दूर रहकर प्रसन्न बने रहने की इच्छा समान रूप से पायी जाती है। शारीरिक और मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ रहने की इच्छा इसी का द्योतक है, क्योंकि कोई भी बीमार नहीं होना चाहता हैं। जब हम स्वस्थ नहीं रहते तो दुखी होते हैं और ठीक होने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। बीमार होने पर पर हमारी काम-काज करने की क्षमता प्रभावित होती है और इसका असर हमारे साथ के लोगों पर भी पड़ता है। अत: स्वास्थ्य केवल व्यक्तिगत न होकर सार्वभौमिक मामला है जिसके लिये हम सब की जिम्मेदारी है।

मुझे विश्वास है कि तिब्बती चिकित्सा पद्धति शरीर और मन को स्वस्थ बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। प्राचीन भारतीय और चीनी चिकित्सा पद्धतियों की तरह तिब्बती चिकित्सा पद्धति स्वास्थ्य को संतुलन की तरह मानती है। कई प्रकार के कारण जैसे भोजंन, जीवन शैली, मानसिक स्थिति और मौसम के परिवर्तन इस प्राकृतिक संतुलन को गड़बड़ा देते हैं जिसके परिणाम स्वरूप कई प्रकार के रोग हो जाते हैं।

तिब्बती चिकित्सक रोगों का निदान रोगी की नाड़ी, मूत्र और अन्य सामान्य लक्षणों को देख करते हैं। वे मनुष्य के प्राकृतिक संतुलन की स्थिति का अध्ययन करते हैं। दवाओं के साथ-साथ भोजन और रहन-सहन, ध्यान आदि चिकित्सा के अंग है। औषधियां प्राकृतिक रूप से प्राप्त वनस्पतियों, खनिजों और अन्य जैविक पदार्थो से तैयार की जाती हैं। ये सामग्री सस्ती और आसानी से उपलब्ध होने वाली होती हैं। इन दवाओं के पार्श्व प्रभाव बहुत कम होते हैं और वे रोगों का प्रतिरोध एवं चिकित्सा दोनों ही काम करती हैं।

तिब्बती चिकित्सा बौद्ध दर्शन से गहराई से जुड़ी है और इसी कारण मन, शरीर और जीवनी शक्ति को परस्पर अविभाज्य और अन्र्तसम्बंधित मानती है। आदर्श चिकित्सक में चिकित्सा के गहन ज्ञान के साथ-साथ समझदारी और सहानुभूति का होना आवश्यक है।

डाक्टरों, फार्मेसिस्टों और अन्य विशेषज्ञों के प्रशिक्षण, औषधि निर्माण आदि के साथ तिब्बत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति का संरक्षण और परिवर्धन करने के लिये "तिब्बत मेडिकल एन्ड एस्ट्रो इंस्टीट्यूट" की स्थापना की गई थी। इससें तिब्बती चिकित्सा को सभी तक पहुंचाने के महान प्रयास किये जा रहे हैं। इसके द्वारा भारत वर्ष में स्थापित किये गये अनेक चिकित्सालय सभी के लिए खुले है। संस्थान का उद्देश्य जन साधारण को तिब्बती विज्ञान और दर्शन से परिचित कराना तथा तिब्बती चिकित्सा की सुविधाएं उपलब्ध कराना है। तिब्बती चिकित्सा संस्थान दिल्ली में एक विशाल परिसर में चिकित्सा केन्द्र, अभिलेखागार, पुस्तकालय और

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE
सभागार बनाना चाहता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम अपनी चिकित्सा पद्धति द्वारा आम लोगों के भले में योगदान कर सकते हैं।
(धर्मगुरू दलाई लामा, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश)

बौद्ध दर्शन और तिब्बत की वनौषधियों, खनिजों और जीवों से संमृद्ध, शांत, सुंदर और रमणीय परिदृश्य के संयोग से तिब्बती चिकित्सा पद्धति का जन्म हुआ। बौद्ध धर्म और दर्शन का उद्‌गम स्थल भारत होने के कारण आयुर्वेद तिब्बती चिकित्सा पद्धति का मूल प्रस्थान बिन्दु रहा है पर कालान्तर में तिब्बत में इसे और समृद्ध किया गया तथा इसमें आयुर्वेद से भिन्नता भी पैदा हुई। भारत में कतिपय कारणों से जब आयुर्वेद का ह्रास हुआ तो इसकी कई प्रस्थापनायें तिब्बत में सुरक्षित रही और कालान्तर में फली बढ़ी।

तिब्बती चिकित्सा पद्धति भी पश्चिमी विज्ञान द्वारा तिरस्कृत समझी जाती रही है पर इससे इसमें अलगाव की भावना पैदा नहीं हुई है और तिब्बती चिकित्सा पद्धति पश्चिमी चिकित्सा पद्धति से परस्पर लाभदायक संवाद विकसित करने के लिये तैयार है। दलाईलामा ने कहा है मन की प्रकृति समझने के मामले में तिब्बती चिकित्सा पद्धति (ति.चि.प.) पश्चिमी चिकित्सा पद्धति (प.चि.प.) से आगे है पर मानव शरीर की क्रिया के मामले में यह प्राचीन मताग्रहों का शिकार होने के कारण प.चि.प. से पीछे रह गई। दोनों पद्धतियों के उपागम (अप्रोच) को अलग-अलग रख कर और बिना एक दूसरे पर श्रेष्ठता का दावा किये दोनों पद्धतियों को परस्पर समझदारी से एक दूसरे के साथ इन पद्धतियों की क्षमता बढ़ाने के लिये काम करना चाहिए। तिब्बती चिकित्सा पद्धति सभी रोगों की रामबाण औषधियों का दावा नहीं करती पर कई रोगों जैसे संधिवात और बहुत से रोगों से ग्रस्त व्यक्ति में यह प.चि.प. के मुकाबले ज्यादा प्रभावी पाई गई है। तिब्बती चिकित्सा पद्धति रोगी की जीवन शैली, सामाजिक स्थिति और भावनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति का प.चि.प. के मुकाबले अधिक ध्यान रखती है तथा एक समग्र दृष्टिकोण (होलिस्टिक अप्रोच) अपनाकर शरीर को स्वयं रोग दूर करने के लिये प्रेरित करती है। इस चिकित्सा में जड़ी बूटियों और प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले पदार्थों द्वारा चिकित्सा की जाती है।

अमेरिका के डॉ. वाल्टर और इलिनोर क्रिस्टी ने ति.चि.प. में 10 दिन के अध्ययन कार्यक्रम में भाग लिया। उन्होंने ति.चि.प. को जीर्ण रोगों के विभिन्न चरणों के निदान में बहुत प्रभावी पाया। उन्होंने यह भी पाया कि जीवन शैली, आहार एवं पोषण तथा पूरे शरीर को समग्रता से देखने के मामले में ति.चि.प तो प.चि.प के मुकाबले कहीं आगे है।

धर्मगुरू दलाईलामा के तिब्बती चिकित्सा पद्धति की उपादेयता के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं उसका मूल आधार वैदिक संहितायें ही हैं। वेदो में भी दीर्यायुष्य प्राप्ति के सूत्रों का उल्लेख मिलता है जो कि इस प्रकार से हैं। यथा :

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदाश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्।। 17।। *(ऋगवेद)*

सबको धारण करने वाले हे अश्विनीकुमारों ! आपके अनुग्रह से वायुदेव हमारे लिए औषधीय गुणों से युक्त सुखद प्राणवायु प्रवाहित करें। धरती माता रोगनाशक वनस्पतियों से तथा आकाश पिता जीवन तत्वों से युक्त जलों से सम्पन्न बनाएँ। निचोड़ने वाले ग्रावा (पत्थर) हमारे लिए जीवनी शक्ति से युक्त सुखकारी सोम

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE
प्रदान करें। आप हमारी प्रार्थना सुनकर हमें सुखी बनायें।

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्वेदाः।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। 9।। *(ऋगवेद)*

महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें, सम्पूर्ण जगत् के ज्ञाता पूषा देवता हमारा कल्याण करें, अनिष्ट का नाश करने वाले पक्षों (पखों) से युक्त गरुड़ देव हमारा कल्याण करें तथा देवगुरू बृहस्पति हम सबका कल्याण करते हुए हमें सुखी बनायें।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानों विदथेषु जग्मयः।

अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाअंअवसागमन्निह:।।20।। *(ऋगवेद)*

शक्तिशाली अश्वों वाले अर्थात् तीव्र गति से चलने वाले, अदिति के पुत्र, सबका कल्याण करने वाले, अग्नि रूपी जिहवा तथा सूर्यरूपी नेत्र वाले, सर्वज्ञ मरुत् देवता अपनी विभिन्न शक्तियों के साथ इस यज्ञशाला में पधारें और हमें सुखी बनायें।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरग्डैस्तुष्टुवाः संसतनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।21।। *(ऋगवेद)*

याजकों के पोषक हे देवताओं ! हम सदैव कल्याणकारी वचनों को ही अपने कानों से सुनें, नेत्रों से सदैव कल्याणकारी दृश्य ही देखें। हे देव ! परिपुष्ट अंगों से युक्त सृदृढ़ शरीर वाले हम आपकी वन्दना करते हुए पूर्ण आयु तक जीवित रहें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद
Central Council for Research in Ayurveda and Siddha

पुरस्कार एवं पारितोषिक योजना
Awards and Prizes Scheme

यह प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/कु. डॉ० मायाराम उनियाल

को उनके द्वारा लद्दाख की वन-संपदा एवं परम्परागत तिब्बती (आमची) चिकित्सा प्रणाली (औषध-अनुसंधान)

के क्षेत्र में किए गए अनुसंधान कार्य के लिए परिषद का वर्ष 1987-88

का पुरस्कार प्रदान किया गया है।

This is to certify that Shri/Smt. Dr. M. R. Uniyal

has been awarded

the CCRAS Award for his/her research work in the field of

Medico-botanical Exploration of Laddakh Region & Amachi Practices for the year 1987-88

विवेकानन्द पाण्डेय

निदेशक/ Director

केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद नई दिल्ली।

Central Council for Research in Ayurveda and Siddha New Delhi

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रचना के सन्दर्भ में आयुर्वेद विकास के भूतपूर्व 'प्रधान सम्पादक' श्री शंभूनाथ बलियासे मुकुल के विचार

वैद्य मायाराम उनियाल, भारतीय कायचिकित्सा संस्थान, पटियाला, (केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद, भारत सरकार) में निदेशक के रूप में कार्यरत हैं, मात्र यहीं इनका परिचय नहीं है। ये एक साधक, गंभीर अध्येता, वरेण्य विद्धत् आयुर्वेद मनीषी, वनौषधि-विशेषज्ञ के रूप में उभरते सितारे जैसे हैं। ये संपूर्ण आयुर्वेद जगत, देश-विदेश में सम्प्रति सम्मान्य वनौषधि-विशेषज्ञ के रूप में सुपरिचित एवं विश्वस्त कर्मयोगी जैसे हैं।

वनौषधियां जंगलों-पहाड़ों में उगती हैं, पर अपनी गुणवत्ता का प्रभाव-विस्तार दिग्-दिगंत तक, जीव-जन्तुओं से लेकर पशु-पक्षियों तथा अज्ञानी, ज्ञानी, विज्ञानी मानव तक करना चाहती है। निश्चय ही यह उनकी प्रकृति प्रदत्त उदारवृति का परिचायक है। ये सानिध्य का लाभ मुक्त हृदय से देना चाहती हैं। अस्तु, उनकी यह महानता गुणज्ञों को निहाल करने में द्विद्या का बोध नहीं करती हैं। वनौषधियां घनघोर जंगलों में रहें या पर्वतों के उत्तंग श्रृंग पर, वे निरंतर मौन निमंत्रण देती रहती हैं। जीवधारियों को सानिध्य लाभ का, गुणज्ञ होने का, सामान्य बनने का, पर ये पात्रता की पहचान करती हैं। इनकी अपनी कसौटी है, उस पर खरा उतरने के बाद ही अपना सब कुछ देने को अनायास तैयार होती हैं।

वैद्य उनियाल ने इनका सानिध्य लाभ किया है। निश्चय ही इनकी यायावरी रूचि ने, प्राप्ति की उत्कट इच्छा ने जन संकुल चाक-चिक्स भरे शहरी जन-जीवन से अपेक्षाकृत निर्जन, एकांत, प्रकृति के आंचल में वनौषधियों के सानिध्य से पुलकित, आल्हादित होने का वरदान दिया है, जो इन्हें खींचकर यहां-वहां, जंगलों-पहाड़ों में, हिंसक और विषैले जीव-जन्तुओं के बीच निर्भिकता से आते-जाते रहने की बाध्यता उपस्थित करती रहती है। शायद इन्हें वहां से अधिक यहां संपन्नता मिल रही है।

यह सच है कि ये वहां जो प्राप्त करते हैं, उसका यत् किंचित प्रसाद के रूप में ही सही जन-जन में वितरण करने की उदारता भी दिखाते रहे हैं।

वैद्य उनियाल जी की लद्दाख यात्रा का विवरण लेख रूप में प्रकाशित करते हुए हम अपने पाठकों से यह कहना चाहेंगे कि यदि आपने इसे ध्यानपूर्वक पढ़ने का काम किया, तो निश्चय ही वनौषधियों के साथ वहां की प्रचलित "आमची'' चिकित्सा-पद्धति के संबंध में भी आपको यथोचित जानकारी इसके द्वारा मिलेगी।

('आयुर्वेद विकास' जून, 1987)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

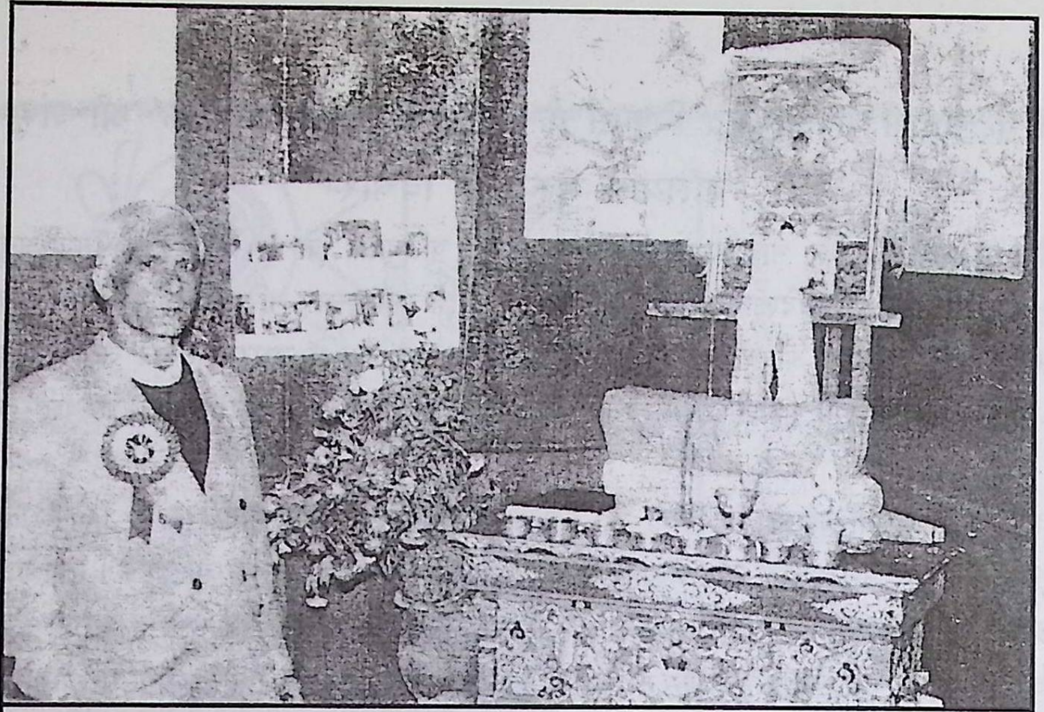

लेह में आयोजित आमची चिकित्सा संगोष्ठी के अवसर पर लेखक परिलक्षित

लेह में स्थित बौद्ध स्तूप (Chorten)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राक्कथन

मानव समाज एवं उसकी संस्कृति से वनस्पतियों का घनिष्ठ सम्बंध वैदिक काल से ही रहा है। मनुष्य के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास क्रम के सभी स्तरों एवं आनुवांशिक परिस्थितियों में वनस्पतियों का प्रमुख योगदान रहा है। इसी कारण से मनुष्य ने भी अपना आभार प्रदर्शन कर इन वनस्पतियों की सम्मानपूर्वक पूजा की है। भारत ने बहुत प्राचीन काल से ही पेड़ पौधों का महत्व पहचान लिया था। इसी कारण हमारे महर्षियों एवं आचार्यो ने पर्यावरण संरक्षण एवं आरोग्यमय जीवन के लिये वनस्पतियों की महत्ता को सर्वोपरी स्वीकार किया है। आज भी भारत के कतिपय आदिवासी एवं सुदूर हिमालय के सीमावर्ती ग्रामीण एवं वनेचर लोक परम्परागत जड़ी-बूटियों द्वारा अपनी चिकित्सा करते हैं। महर्षि चरक ने इस संदर्भ में स्पष्ट उल्लेख किया है। यथा :

औषधीर्नामरुपाभ्यां जानतेह्यपजावने।
अर्विपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनवासिनः।। *(चरक. सू. अ. 1/121)*

हिमकिरीट लद्दाख केवल कश्मीर का ताज नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष का मुकुट-मणि है। कश्मीर राज्य के लेह जनपद का कोई ऐसा स्थान नहीं जो समुद्र तल से 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 5,000 मीटर की ऊँचाई तक न चला गया हो। लेह जनपद का भूभाग रेतीला एवं रंग-बिरंगी ऊँची पर्वत श्रेणियों के होने के कारण पर्यटकों ने लद्दाख को मूनलैंड कहा है।

हिमालय केवल पत्थर मिट्टी का ढेर नहीं, बल्कि लता, गुल्म, वृक्षों, औषधीय पादपो, खनिजों, रत्नों एवं अपार जल सम्पदा का स्रोत हैं इसी कारण महाकवि कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा कहा है। अथर्ववेद में हिमालय की स्तुति के अनेकों मंत्र आयें है। महर्षि चरक ने लिखा है कि देवलोक हिमालय में निवास करने वाले इन्द्र से आयुर्वेद के अध्ययन करने हेतु भृगु, अंगिरा, भारद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव एवं गौतम आदि महर्षि हिमालय पर गये थे। इसी देवलोक को त्रिविष्ठक (तिब्बत) भी कहा गया है।

लद्दाख का अपना पृथक आयुर्वेद है। वैद्य को लद्दाखी 'आमची' कहते हैं। 'आमची' गुरू-शिष्य प्रणाली से पढ़ाया जाता है। शिष्य गुरू के पास 5-6 वर्ष तक नियमित रूप से पढ़कर आमची बनता है। आमची का समाज में काफी आदर होता है। ऐसा माना जाता है कि सातवीं शताब्दी में आमची चिकित्सा तिब्बत से लद्दाख पहुंची। लद्दाखियों का पूर्ण विश्वास है कि यह निरापद चिकित्सा है। आज भी कतिपय हस्तलिखित दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ लेह जनपद के बौद्धमठों में (गुम्पाओं में) एवं आमचियों के पास सुरक्षित है। अधिकतर ग्रंथ आयुर्वैदिक संहिताओं पर आधारित है। भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म के साथ-साथ आयुर्वेद का प्रसार भी तिब्बत, चीन, मंगोलिया, जापान, म्यानमार (बर्मा), मलेशिया आदि कतिपय देशों में किया। लामा बौद्ध मठों में हीनयान, महायान आदि पवित्र ग्रंथ यहां पर हैं। तिब्बतियों का प्रमुख आयुर्वेद का केन्द्र ल्हासा है। यह स्थान

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बत में है। आज भी तिब्बत में भारतीय चिकित्सा विज्ञान के कतिपय ग्रंथों का अनुवाद तिब्बती लिपि में सुरक्षित है। जिसमें सिद्ध नागार्जुन जीव-सूत्र, योगशतक, अश्ववैद्यक, अष्ठांगहृदय, शालिहोत्र आदि ग्रंथ हैं। तिब्बत के बौद्ध गुरू दलाईलामा सन् 1954 में तिब्बत पर चीन का अधिकार होने के कारण ल्हासा छोड़कर हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला मकलोड़गंज नाम स्थान पर निवास करने लगे। जिसके फलस्वरूप धर्मशाला में बौद्धमठ के साथ-साथ तिब्बतियन मेडिकल कालेज एवं फार्मेसी स्थापित है। इस केन्द्र में तिब्बतियन शरणार्थी, लद्दाखी, सिक्कमी एवं बौद्ध धर्मावलम्बी छात्र-छात्राओं द्वारा तिब्बती चिकित्सा का अध्ययन किया जाता है।

उपरोक्त सभी महत्वपूर्ण जानकारी के आधार पर केन्द्रीय आयुर्वेद एवं होम्योपैथी की अनुसंधान परिषद् (सी.सी.आर.आई.एम.एच.) नई दिल्ली के तत्कालीन निदेशक एवं आयुर्वेद सलाहकार डॉ. पी.एन.वी. कुरूप ने लद्दाख क्षेत्र की पारम्परिक लोकप्रचलित जड़ी-बूटियों एवं खनिजों के सर्वेक्षण हेतु वनौषधि सर्वेक्षण दल वर्ष 1974 में लद्दाख भेजा। इस वनौषधि सर्वेक्षण दल में सदस्य के रूप में मुझे भी कार्य करने का सुअवसर मिला सर्वेक्षण दल ने सफलतापूर्वक सर्वेक्षण कर वर्ष 1978 में परिषद द्वारा "प्रिलिमरी टैक्नो-इकोनोमिकल सर्वे आफ नेचुरल रिसोर्सिस एण्ड हर्बल वेल्थ आफ लद्दाख" नामक मानोग्राफ प्रकाशित किया था। इसी श्रृंखला में लेखक द्वारा हिंदी, अंग्रेजी में लद्दाख हिमालय की वनसंपदा एवं तिब्बतियन आमची चिकित्सा पर कतिपय लेख समय पर आयुर्वेद पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहें हैं। वर्ष 1987-88 में लेखक द्वारा कतिपय क्रमबद्ध लेख 'आयुर्वेद विकास' पत्रिका में प्रकाशित किये हैं। इस शोध कार्य के हेतु परिषद् द्वारा लेखक को वर्ष 1987-88 के पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया। इस जनपद में आमची चिकित्सा के विकास हेतु केन्द्रीय आयूर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) द्वारा लेह में आमची रिसर्च सेन्टर की भी स्थापना की गई। इस केन्द्र के माध्यम से दुर्लभ तिब्बतीय पाण्डुलिपियों के प्रकाशन का कार्य भी किया जा रहा है। लद्दाख में तिब्बतीय चिकित्सा में उपयोगी लोकोपयोगी जड़ी-बूटियों की महत्ता को ध्यान में रखते हुये लेखक ने ''लद्दाख की संस्कृति एंव परम्परागत तिब्बती चिकित्सा प्रणाली'' नामक यह रचना तैयार की है।

प्रस्तुत पुस्तक में लद्दाख हिमालय का भौगोलिक एवं सामाजिक परिचय, यातायात के साधन, रहन-सहन, लद्दाख की प्रमुख घाटियों, मोनैस्ट्री, परम्परागत आमची चिकित्सा, लद्दाख में मिलने वाली लगभग चार सौ दुर्लभ जड़ी-बूटियों एवं 50 खनिजों, शिलाजीत, कस्तूरी मृग आदि के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया गया है। औषधीय पौधो के वानस्पतिक वर्णन के साथ-साथ स्थानिक प्रयोगों के बारे में भी विस्तृत रूप से उपयोगी सामग्री सर्वप्रथम प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आदिकाल से यह देखा गया है कि मानव रोग मुक्ति हेतु मणि-मंत्र एवं लोकोपयोगी औषध द्रव्यों द्वारा अपनी चिकित्सा करते चला आ रहा है। इसी आशय को ध्यान में रखते हुये जम्मू-कश्मीर राज्य के सीमावर्ती जनपद लेह-लद्दाख के गुरू-शिष्य परंपरा के आमची (चिकित्सक) चिकित्सा करते हैं। आमची चिकित्सा में जिन जड़ी-बूटियों एवं खनिजों का उपयोग होता है उनका विस्तृत रूप से विवरण इस रचना में देने की दिशा में भी प्रयास किया गया है।

आभार : जनहित में उपयोगी सामग्री के निर्देशन एवं सहयोग हेतु निदेशक, केन्द्रीय आयूर्वेद एवं अनुसंधान परिषद् (केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय (आई.एस.एम.), भारत सरकार) का हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनके

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सहयोग से इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग मिला है।

लेखक को लद्दाख हिमालय की जड़ी-बूटियों के सर्वेक्षण एवं अध्ययन करने का अवसर केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) द्वारा मिला जिसके फलस्वरूप इस सामग्री को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जा सका है। लेखन कार्य हेतु मैं आचार्य पदमभूषण वैद्यराज पं. बृहस्पतिदेव त्रिगुणा जी का हृदय से आभारी हूं जिनका सतत् स्नेह एवं प्रेरणा मुझे बराबर मिलती रही है। लोक प्रचलित स्थानिक प्रयोगों एवं लद्दाखी नामों की जानकारी हेतु लेह जनपद के स्थानिक आमचियों का मैं विशेष रूप से ऋणी हूं। मेरे सहयोगी डॉ. टी.एन. श्रीवास्तव एवं डॉ. ओ.पी. गुप्ता उपनिदेशक सी. सी. आर. एस. का विशेष आभारी हूं। प्रस्तुत पुस्तक में कतिपय समाचार पत्रों में प्रकाशित उपयोगी सामग्री के अंशो का भी साभार समावेश किया गया हैं जिसके लिए मैं उन सभी पूर्ववर्ती लेखको का भी हृदय से आभार व्यक्त करता है।

इस पुस्तक में संशोधन, प्रकाशन, साज सज्जा प्रदान करने में मधुसूदन उनियाल के विशेष योगदान से यह रचना तैयार हुई हैं उनको हृदय से आर्शीवाद देता हूँ। इस कार्य में मेरी पत्नी श्रीमती सतेश्वरी देवी उनियाल का भी विशेष सहयोग मिला है। प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित औषधीय पादपों के रेखाचित्र तैयार करने हेतु श्रीमती विजयलक्ष्मी उनियाल को भी आशीर्वाद देता हूँ।

अप्रैल, 1999

विदुषामनुचर

मायाराम उनियाल

(वैद्य मायाराम उनियाल)

बी-98, अवन्तिका, रोहिणी, सै-1
नई दिल्ली-110085
दूरभाष : 011-7271233

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेह-लद्दाख का मानचित्र

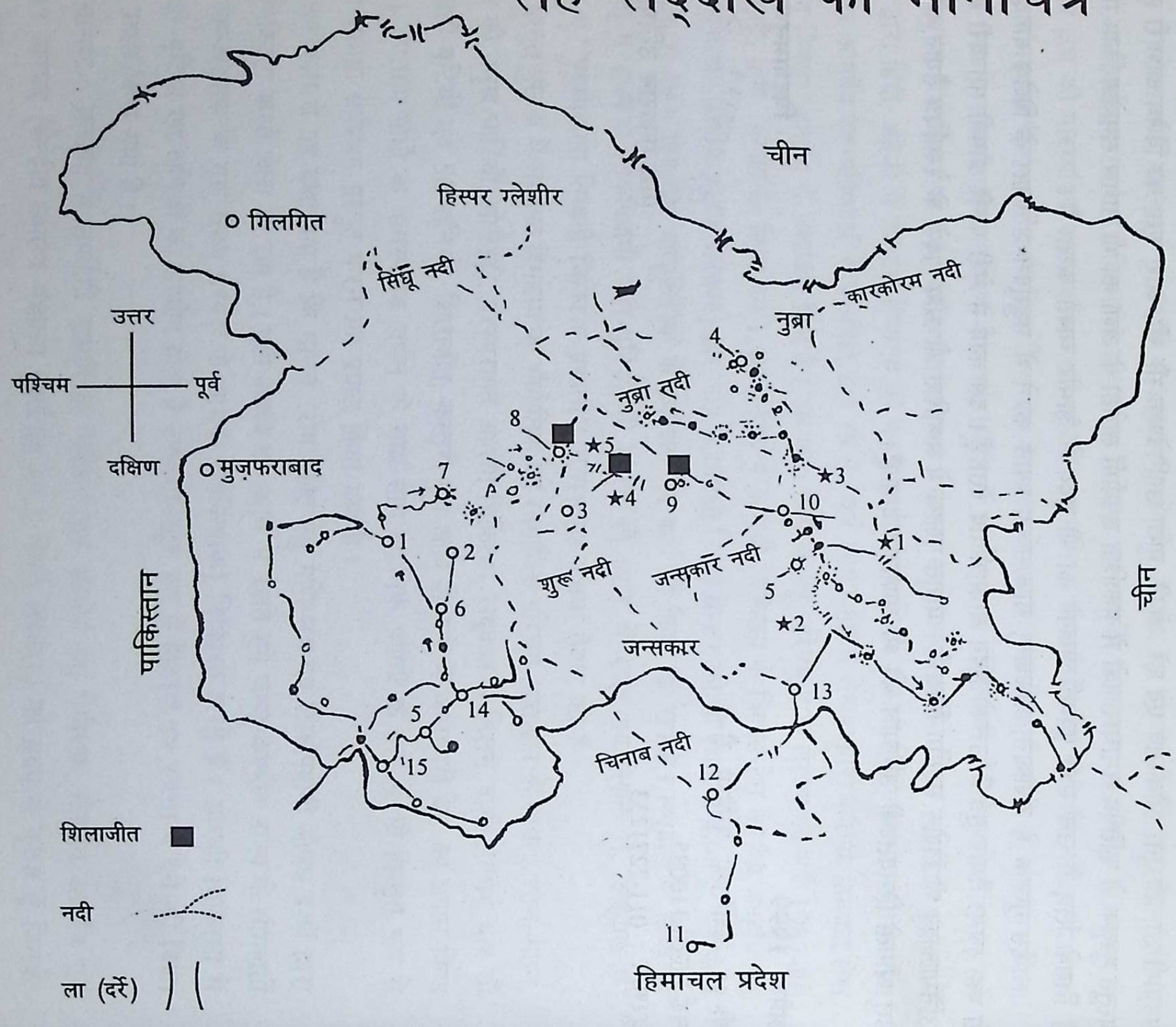

1. श्रीनगर
2. जोजीला
3. मुलीबेक
4. नमीक
5. उद्यमपुर
6. अनंतनाग
7. सोनमर्ग
8. सोनीकुंड

झीले

★1 च्यांग
★2 तगलंग्
★3 खरदोंग
★4 फाटू
★5 नम्‌ख

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

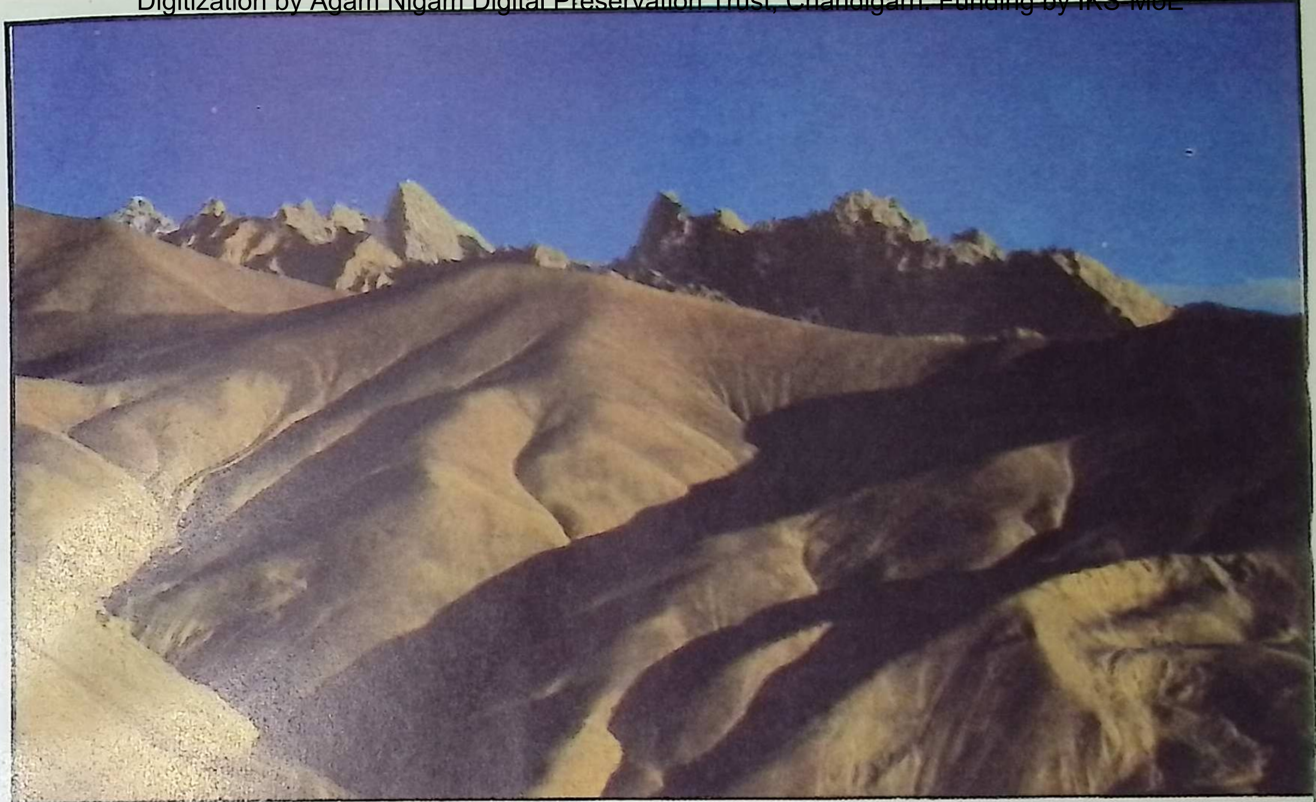

लेह के पास कारगिल रोड़ पर पठारी पहाड़ का दृश्य

कीचे *Primula sikkimensis.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

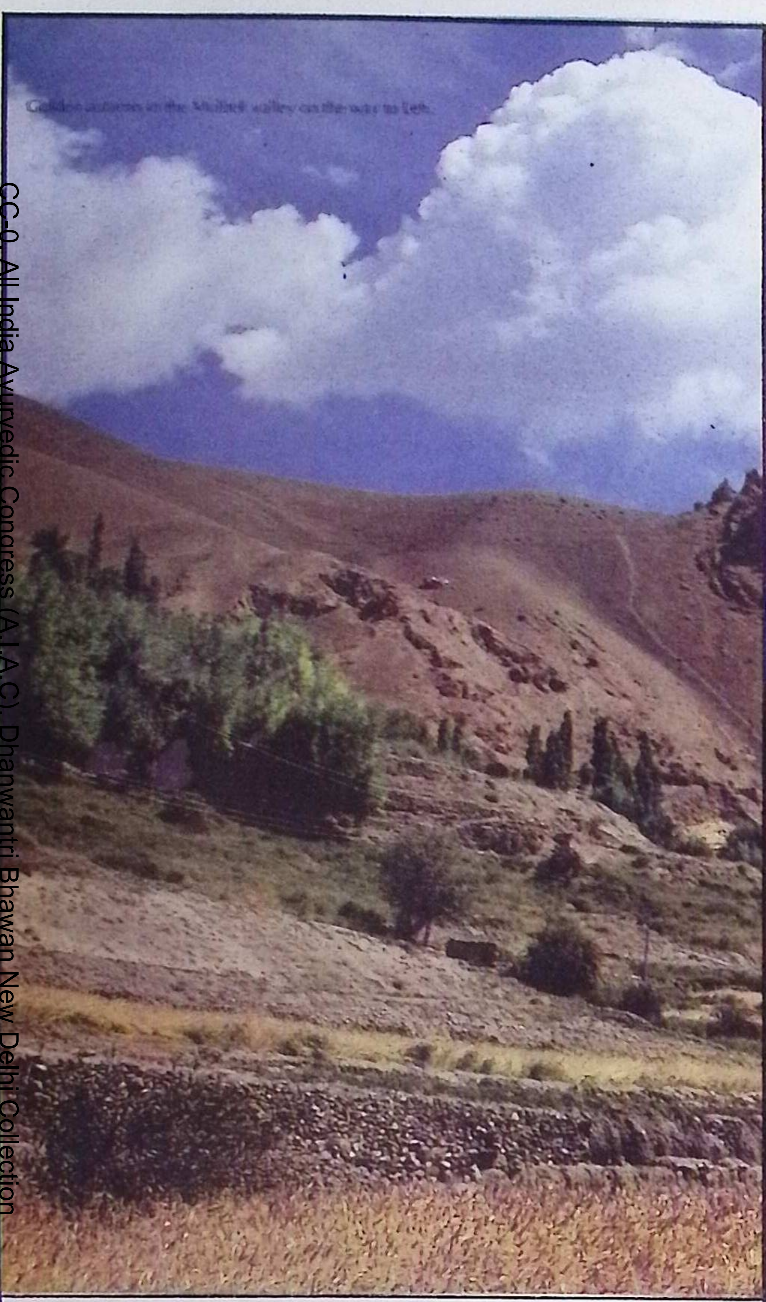

वसन्त ऋतु में मूलबेक धाटी का प्राकृतिक दृश्य

लेह में तिब्बती चिकित्सा पर आयोजित संगोष्ठी के अवसर पर डा. मायाराम उनियाल, डा. शिव कुमार मिश्र, डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, वैद्य नानक चन्द शर्मा एवं स्थानिक आमची आदि परिलक्षित

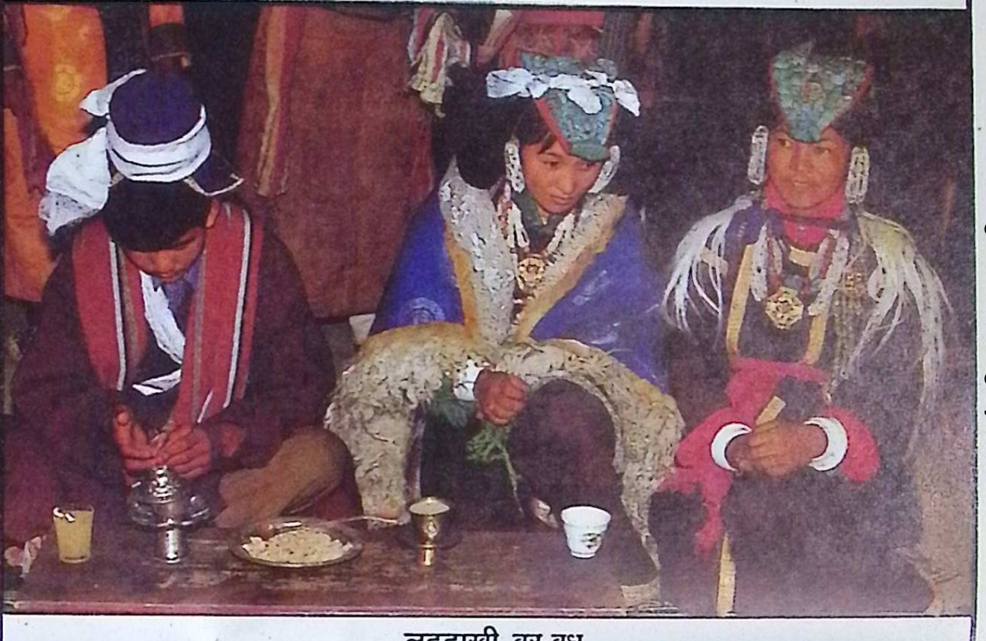

लद्दाखी वर-वधु

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

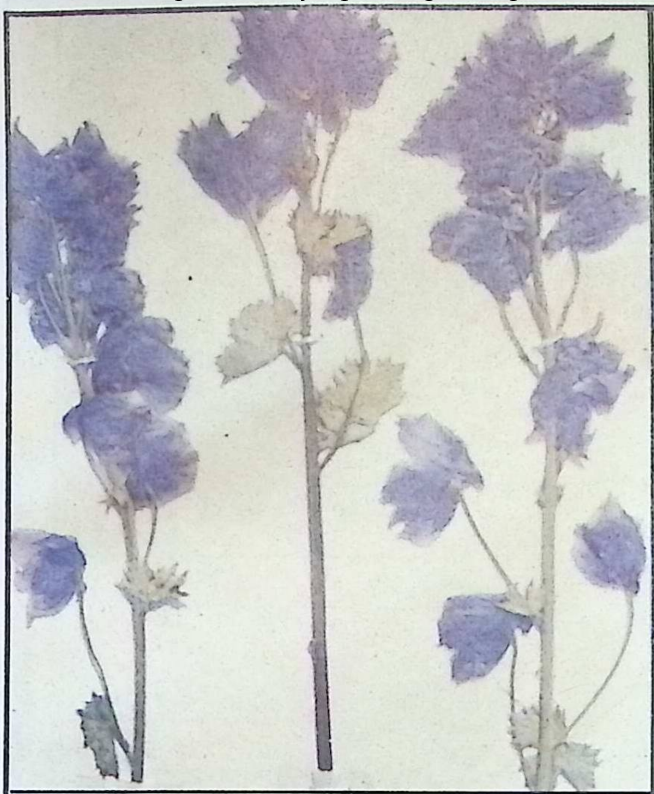

चारगोत्पोस ***Delphinum brunonianum.***

वौंगनक (विख) ***Aconitum* sp.**

थरम-नरम (जंगली इसबगोल) ***Plantago lanceolata.***

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शालमपञ्जा *Orchis latifolia*

चोरक *Angelica glauca*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खण्डित चन्द्रमा का प्रदेश 'लद्दाख' का भौगोलिक परिचय

टिकसे मठ के केन्द्रिय कक्ष में भगवान बुद्ध की भव्य प्रतिमा

हिमकिरीट लद्दाख केवल कश्मीर का ताज नहीं, अपितु समस्त भारत का मुकुटमणि है। जिस प्रकार भगवान शिव के मस्तक पर चन्द्रमा शोभित होता है, उसी प्रकार समृद्धिशाली और विशाल भारत देश के सर्वोपरी भाग में सिंह के वीर पुत्रों का स्थान लद्दाख है। कश्मीर के श्रीनगर से उत्तर की ओर विश्वविख्यात लद्दाख पठारी प्रदेश है, जो अपनी भौगोलिक स्थिति एवं सामाजिक रीति-रिवाजों के कारण संसार भर में प्रसिद्ध है। लद्दाख की प्राकृतिक नैसर्गिकता एवं कला को देखने के लिये देश विदेश से पर्यटक प्रति वर्ष यहाँ आते हैं। विशेष ऊँचाई एवं रंग बिरंगे नग्न हिमशैलों के कारण इसे खंडित चन्द्रमा का प्रदेश भी कहा गया है। लद्दाख का अर्थ है देवताओं द्वारा स्वच्छ किया गया हुआ स्थल। गगनचुम्बी पर्वतमालाओं से घिरे पूर्वी कश्मीर घाटी का क्षेत्र लद्दाख भू-भाग है। इस क्षेत्र में कोई ऐसा स्थान नहीं है जो समुद्रतल से 2,700 मीटर की ऊँचाई से कम हो। लद्दाख की पर्वत श्रेणियों की ऊँचाई 5,000 मीटर से लेकर 7,000 मीटर की ऊँचाई तक चली गई है। लद्दाख जोजीला दर्रा पार करने पर प्रारम्भ हो जाता है जो तिब्बत, चीन एवं पाकिस्तान के सीमा-प्रदेश तक चला गया है।

विदेशियों ने लद्दाख को मूनलैण्ड कहा है, क्योंकि यह स्थल रेतीला, नंगा एवं बर्फीला हिमालयी भाग है जहां हरियाली नाम मात्र की है। इस क्षेत्र में आबादी 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 4,900 मीटर की ऊँचाई तक है। इन स्थानों पर लोगों ने अपने रहने के लिए घर बनाऐ हुऐ हैं। सम्पूर्ण लद्दाख 47 हजार वर्ग मील में फैला हुआ शुष्क और विषम पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ पहाड़ी क्षेत्र है। जम्मू-कश्मीर प्रांत का सबसे विशाल जनपद लेह है। इस जनपद का क्षेत्रफल सबसे विस्तृत है। लद्दाख उत्तरी हिमालय की ओर 32.15 से 36.0 अक्षांश उत्तर तथा 75.15 एवं 80.15 देशान्तर के मध्य में स्थित है। इस क्षेत्र की सीमाऐं उत्तर में चीन, तिब्बत पश्चिम में पाकिस्तान एवं दक्षिण में हिमाचल प्रदेश के लाहुलस्पीती जिले के हिमशैल बनाते हैं। सम्पूर्ण लद्दाख में 250 के करीब गांव आते हैं जो कि करगिल, लेह नुब्रा, जन्सकार एवं चुमाथांग इन पांच तहसीलों में विभक्त है लद्दाख का जनपद कार्यालय लेह है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हिमालय की उत्पत्ति

हिमालय की उत्पत्ति का वैज्ञानिक उल्लेख डॉ. प्रेमस्वरूप सकलानी ने ''हिमालय की सम्पदा'' नामक पुस्तक में किया है। कहा है कि हिमालय अनादिकाल से अपने अद्‌भुत प्राकृतिक सौन्दर्य एवं वनसम्पदा से सर्वदा जनसाधारण को आकृष्ट करता रहा है। हिमालय उत्तर में कश्मीर से असम तक अनेक पर्वत श्रृंखलाओं का एक समूह है। इस हिमालय का विस्तार लम्बाई में लगभग 2,400 किलोमीटर एवं चौड़ाई में लगभग 300 सौ किलोमीटर है। भूगर्भ शास्त्रियों का मत है कि एक समय सम्पूर्ण हिमालय भूभाग समुद्र में विलीन था। सचमुच हिमालय की उत्पत्ति बहुत रोचक है। शैल अध्ययन के आधार पर वर्तमान भूमध्य सागर प्राचीन काल में चीन तक विस्तृत था, जिसके लिए वैज्ञानिकों ने उत्तरी-समुद्र, टैथिस-समुद्र या भू अभिनति नाम दिये हैं। यह उत्तर महाद्वीपीय भू-भाग (अंगारालैंड़) एवं दक्षिण महाद्वीपीय भू-भाग में (गोंडवानालैंड़) को एक दूसरे से पृथक् करता था। दक्षिण-महाद्वीपीय भूभाग में भारत, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया एवं एंटार्कटिका आदि देश सम्मिलित थे और संभवत: आजकल की भांति एक दूसरे से पृथक न होकर आपस में संलग्न थे। भू-अभिनति (जिओसिन्क्लाइन) पर्वतमालाओं के उद्‌भव में बहुत ही महत्वपूर्ण माने गये हैं, क्योंकि ये अवसादन के विशाल क्षेत्र होते हैं। बहुधा यह पाया गया है कि अवसाद के उत्तरोत्तर संचयन के साथ-साथ इनका अधोभाग अवतालित हो जाता है, जिससे दीर्घकाल तक इनकी गहराई एक समान बनी रहती है और कई हजार फुट मोटा अवसाद एकत्रित होने के संभावना हो जाती है। अवसाद के बढ़ते हुए भार के साथ दाब और तापक्रम दोनों ही बढ़ते है। इसके फलस्वरूप यह क्षेत्र अश्मवैज्ञानिकी (लिथोलॉजिकल) तथा समास्थितिक समायोजनी (आइसोस्टैटिक) परिवर्तनों से अभिभूत होते है भू-अभिनति में होने वाले ये क्रियाशील विर्वतनिक प्रक्रम तथा पर्वत रचना के प्रक्रम इन ,जलमान चट्टानों को कालांतर में विशाल पर्वत-मालाओं में परिवर्तित कर देते हैं।

टैथिस-समुद्र (भू-अभिनतिं) की उल्लिखित परमियनकाल से लगातार बन रही चट्टानों का उत्थान हिमालय क्षेत्र में कम से कम पांच बार हुआ। कृष्णन् 1960 एवं वाडिया 1961 के मतानुसार तीन ही मुख्य उत्थान है। प्रथम उत्थान मध्य से उर्ध्व क्रिटेशस तक हुआ। इसके कारण टैथिस समुद्र अनेक कटक और द्रोणियों में विभाजित हो गया। गहन भागों में 'रेडियोलेरीय चर्ट" निर्मित हुई एवं उथले भागों में फ्लिश जैसी चट्टानें बनी। इसी समय 'असम वेज' (बंगाल, असम और बर्मा को परस्पर अलग करती हुई) एवं 'काश्मीर वेज' (सिंध और बलूचिस्तान को परस्पर अलग करती हुई) का भी निर्माण हुआ। उर्ध्व इओसीन (आदिनूतन) युग में दूसरा उत्थान हुआ।

हिमालय का तीसरा उत्थान मध्य मायोसीन युग में हुआ। इसके परिणाम स्वरूप टैथिस समुद्र का विलोप हुआ और उसके स्थान पर हिमालय पर्वत-श्रेणियों की रूप-रेखा बन गई। इसके फलस्वरूप उत्तर में उठते हुए हिमालय और दक्षिणी प्राय:द्वीपीय खंड़ के बीच एक अग्रगर्त (फोर ड़ीप) का भी विकास हुआ। हिमालय की ओर वाले भागों में शिवालिक पर्वत-श्रेणियों और मछार, दूपलिया, दिहींग जैसी चट्टानें हैं। यह उत्थान सभी उत्थानों की अपेक्षा प्रगाढ़ होने के कारण इसके अनन्तर हिमालय की चट्टानों में बहुत ही महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन भी हुए हैं। इन कतिपय परिवर्तनों के कारण हिमालय की रचना बहुत ही जटिल और गूढ़ हैं। हिमालय का चौथा उत्थान शिवालिक की पर्वत-श्रेणियों की चट्टानों के निर्मित हो जाने के पश्चात

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्लायोसीन कल्प में हुआ जहां शिवालिक काल में विशाल सघन वन थे, वे सभी भूखण्ड दीर्घकाल के लिए हिमाच्छादित हो गये। सबसे अन्तिम तथा पांचवां उत्थान प्लास्टोसीन कल्प में हुआ जिसमें पीर-पंजाल कई हजार फुट ऊपर उठ गया। हिमालय की चट्टानें विभिन्न उत्थानों के परिणामस्वरूप बनी हैं । हिमालय में आज भी परिवर्तन हो रहे हैं क्योंकि कई स्थानों पर भूमिक्षरण (लैण्डस्लाईड) एवं कई स्थान जमीन में घंस जाते हैं या ऊपर उठ जाते हैं यह सभी परिवर्तन दर्शाते हैं कि हिमालय अभी भी सक्रिय है।

यह हिमालय आज वैज्ञानिकों के लिए प्रयोगशाला है, जहां पर विपुल जडी-बूटियों, खनिजों एवं रत्नों का भंडार है। हमारे वैदिक ग्रंथों में पृथ्वी को रत्नगर्भा कहा गया है। उस काल में भी रत्नगर्भा वसुन्धरा के समुद्र, नदियों, पर्वतों एवं वनों में अनेक खदानों के प्रमाण मिलते हैं। मानव को हजारों वर्ष पूर्व इनकी उपादेयता का ज्ञान था। यही कारण है कि मानव के जीवन के साथ खनिजों एवं रत्नों का विशेष महत्व रहा है।

ये रत्न पृथ्वी के गर्भ में स्थित उत्ताप से भारी दबाव पाकर प्रतिक्षण परिवर्तनशील बने रहते हैं। कालान्तर में ये पाषाण खण्ड पृथ्वी के भारी दबाव एवं ज्वालामुखी के कारण रत्नों के रूप में बदल जाते हैं। उदाहरण स्वरूप हीरा मात्र कार्बन या कोयलों का यौगिक है। पृथ्वी के भारी उत्ताप एवं दबाव से यह हीरे के रूप में बदल जाता है। इस परिवर्तन की क्रिया में कई हजार वर्ष लगते हैं।

वैदिक एवं महाभारत आदि पौराणिक ग्रंथों में हिमालय को ऋषि-मुनियों की भावनाओं का सार कहा गया है। हिमालय भारत की उत्तर सीमा पर स्थित एक विशाल पर्वतराज है, जो शरीर से पर्वत होते हुए भी आत्म से देवता है। इसी देवात्मा हिमालय को महाकवि कालिदास ने भारत की आत्मा कहा है। यथा :

अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरोतोयनिधीबगाह्य, स्थित्वापृथिब्या इवमानदण्डः।। *(कुमार सम्भव सर्ग 1-1)*

हिमालय की प्राकृतिक सुदृढ़ दीवार एशिया महाद्वीप भारतवर्ष के उत्तर, तिब्बत के दक्षिण में तिब्बत और भारत को पृथक करती हुई धनुषाकार पूर्व से पश्चिम को चली गई है। यह हिमालय पश्चिम में गान्धार से लेकर पूर्व में वर्मा तक फैला हुआ है। इसकी पूर्व एवं पश्चिम की लम्बाई लगभग दो हजार मील है और दक्षिण उत्तर की चौड़ाई 300 मील है।

कश्मीर, लद्दाख, उत्तराखण्ड (अल्मोड़ा, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, यमनौत्री), नेपाल, भूटान, दार्जीलिंग, मणिपुर, अरुणाचल, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, नेफा, शिलांग आदि पर्वतीय प्रदेश इसी हिमालय के गर्भ में है। देवलोक हिमालय के कैलाश, मानसरोवर एवं मेरु नामक पर्वत संसार भर में प्रसिद्ध है। महर्षि चरक ने चरक-संहिता में लिखा है कि हिमालय देवलोक में निवास करने वाले इन्द्र से आयुर्वेद अध्ययन करने हेतु भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित और गौतम आदि महर्षि हिमालय पर गये थे। हिमालय पर देवराज इन्द्र का शासन था। देवलोक त्रिविष्ठक हिमालय तिब्बत है। हिमालय पर गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और देवता वास करते थे, ऐसा उल्लेख पुराणों में मिलता है। इसका अचिन्त्य तथा अद्भुत प्रभाव है। यहाँ ब्रह्मर्षि, सिद्ध तथा चारणों का स्थान है। यह दिव्यतीर्थ, अनेक प्रकार के रत्नों और दिव्यौषधियों का उद्गम-स्थान है। यह हिमालय गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, चन्द्रभागा, ब्यास, सतलुज, तिस्ता जैसी कतिपय

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशाल महानदियों का उद्गम स्थल है।

हिमालय केवल पत्थर-मिट्टी का ढेर नहीं, वह लता, वनस्पति, वृक्ष, औषधि, खनिज, रत्नों एवं अपार जल सम्पदा का स्रोत है। यह देवभूमि है। हिमालय की देवत्व की भावना समस्त राष्ट्र में व्याप्त है। हिमालय और कैलाश जैसे नाम प्राचीन स्मारकों के रूप में अशोक के स्तम्भ सदृश्य हैं। यह शिव एवं पार्वती का प्रदेश है। वेदों में हिमालय की स्तुति के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। यथा :

यस्येमे हिमवनतो यहित्वा यस्य समुदं रसया सहाहु:।

यस्येमा प्रदिशो, यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषाविधेम:। *(ऋग्वेद:)*

हिमालय से निकलने वाली एवं समुद्र में मिलने वाली नदियां हमारे लिए उत्तम औषधि प्रदान करें।

हिमवत: प्रसवन्ति सिन्धौसमहसंगत:।

आपोह मस्ये तद्, दैवीदेहृद्यन् हृद्दयोत भेषजम्।। *(अथर्ववेद:)*

इसी प्रकार हे मातृभूमि तेरी पहाड़ियों, तेरे हिमधवल पर्वत, हिमवन्त, तेरे वन, उपवन हमारे लिए सुखमय हों।

गिरयसो पर्वता हिमवन्तोरव्यते पृथ्वी स्योनमस्तु : *(अथर्ववेद:)*

आदि मंत्र वेदों में हिमालय की स्तुति के सन्दर्भ में मिलते हैं। महर्षि चरक ने भी **"हिमवान् औषध भूमिनां श्रेष्ठम्"** कहा है । पर्वतराज हिमालय भारत का ही नहीं विश्व का एक गौरव है। भौगोलिक दृष्टि से इस विशाल हिमालय को पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है। यथा :

1. जम्मू-कश्मीर हिमालय
2. हिमाचल प्रदेश हिमालय
3. उत्तर प्रदेश हिमालय (उत्तराखण्ड़)
4. अरुणाचल एवं सिक्किम हिमालय
5. नेफा-असम हिमालय

पौराणिक ग्रन्थकारों ने भी हिमालय को पांच खण्डों में विभक्त किया है। यथा :

खण्डापंञ्च हिमालयस्य क्रथित नैपाल कूर्मांचलौ।

केदारोऽथजलन्धरोऽथ रुचिर: कश्मीरसंज्ञोंन्तिम:।। *(केदारखण्ड़)*

इस प्रकार से विस्तृत उल्लेख महाभारत के वन पर्व में हिमालय के प्रसंग में मिलता है। इसी हिमखण्ड में मानसरोवर तिब्बत का प्रसिद्ध एवं पवित्र तीर्थ है जिसका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है :-

मानसरोवर

तिब्बत के पठार में मानसरोवर और राक्षसताल नामक दो सरोवर है। यह साढ़े तीस उत्तरी अक्षांश, साठे इक्यासी पूर्वी देशान्तर पर संसार का सबसे प्रसिद्ध सरोवर है। यह स्थान समुद्र की सतह से 4,500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इस सरोवर की गहराई लगभग 300 फीट है। घेरा 54 मील एवं क्षेत्रफल 200 वर्गमील है। मानसरोवर के पश्चिम में राक्षस ताल है। मानसरोवर संसार की समस्त झीलों में सबसे अधिक पवित्र, सबसे अधिक मन-मनोहर, सबसे अधिक स्फूर्तिदायक और सबसे अधिक प्रसिद्ध है। मानसरोवर हिन्दु

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जाति का पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्व का पवित्र स्मारक है। भारत के तीर्थयात्री हिमालय की उच्च श्रृंखलाओं एवं घाटियों को पार करके मानसरोवर के दर्शन करते हैं। महाभारत के आठवें अध्याय के वन पर्व में मानसरोवर का उल्लेख है। कैलाश एवं मानसरोवर पहुंचने में कम से कम एक मास लग जाता है। इस समय यह झील चीन के अधीनस्थ है। लीपूलेख पिथौरागढ होकर जाना पड़ता है। मार्ग में धारचूला, पांगी, संगचुम, कालापानी, लिपूलेख, पाला, तक्लकोट आदि पड़ाव है। संगचुम भारत-तिब्बत की सीमा पर है। लीपूलेख 5,160 मीटर की ऊंचाई पर है। तक्लाकोट तिब्बत का पहला बाजार है। यहां से आगे माचा, गुलाफुंग पड़ाव पड़ता है एवं इसके बाद मानसरोवर आ जाता है। मानसरोवर से 20 मील की दूरी पर कैलाश पड़ता है पूरा मार्ग उतार-चढ़ाव का है। नीती घाटी से भी मानसरोवर जा सकते हैं। यह मार्ग अति कठिन है। कैलाश एवं मानसरोवर में वर्षा कम होती है। जलवायु अधिक शीतल, अधिक शुष्क और अधिक तीखी है। मानसरोवर चार नदियों का उद्‌गम स्थान माना गया है। सतलज का उद्‌गम-स्थान मानसरोवर से 39 मील पश्चिम में सिंधु नदीं का मानसरोवर से 63 मील आग्नेयकोण में और करनाली का सरोवर से 30 मील वायव्यकोण में एवं ब्रह्मपुत्र का सरोवर के पूर्व में है। इन चारों नदियों के पांच सौ सहायक छोटी नदियाँ (नाले) हैं। ये चारों महानदियां कैलाश और मानसरोवर की सातप्रदक्षिणा करके क्रम से पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण से प्रवाहित होती है। मानसरोवर एवं तमसाताल तट के समीप सोने की खानों की एक लड़ी फैली हुई है। तिब्बत में सोने की कई खाने हैं। यहां की खानों से सोना गहराई में मिलता है। इस प्रकार की किंवदन्ती प्रचलित हैं। मानसरोवर के दक्षिण में मान्धाता पर्वत है। सूर्यवंशी राजा मान्धाता का यह निवास-स्थान था। ऐसा उल्लेख महाभारत में मिलता है। राजा इन्द्र मान्धाता का बहुत आदर करते थे। मान्धाता पर्वत की ऊँचाई लगभग 26 हजार फीट है।

कैलाश पर्वत का पौराणिक महत्व

कैलाश पर्वत मानसरोवर से 20 मील उत्तर में हैं इस पर्वत की परिधि 32 मील है। अलकापुरी का राजा कुबेर इसी कैलाश पर निवास करता था। इस पर्वत का विस्तार कश्मीर से भूटान तक है। इसके उत्तरी सिरे पर शिवलिंग के सदृश्य कैलाश की शिखर चोटी है। कैलाश के उत्तर में मैनाक पर्वत एवं हिरण्य शृंग नामक पर्वत है। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, भूत आदि जातियों का निवास स्थान कैलाश एवं मानसरोवर है। कैलाश पर्वत पर ही कुबेर रहते थे। कुबेर महादेव जी के मित्र एवं शिष्य भी थे। कुबेर के पुत्र का नाम नलकूवेर था। हरिवंश पुराण के अनुसार कैलाश भगवान विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ। यह पर्वत देवता एवं यक्ष, गन्धर्वो का निवास-स्थल एवं भगवान शंकर का निवास-स्थान है। कैलाश के समीप ही भूत स्थान है। इसका अपभ्रंश भूटान है। इसके शासक रुद्र थे। नन्दी, शृंगी, वीरभद्र, चण्डीश आदि रुद्र के गण थे। गणों के अधिपति का नाम गणपति या गणेश था। नन्दी कामशास्त्र के ज्ञाता थे। इसका उल्लेख वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में किया है। महादेव वेद, वेदांग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, दिव्यास्त्र और संजीवनी विद्या के ज्ञाता एवं यन्त्र द्रष्टा भी थे। रुद्र योगी एवं सांख्ययोग के प्रवर्तक थे। भगवान् शिव ने संजीवनी विद्या के द्वारा परशुराम को जीवित किया था। देवासुर संग्रामों में शुक्राचार्य संजीवनी विद्या से उन्हें पुर्नजीवित कर दिया करते थे। इस प्रकार के उदाहरण पौराणिक ग्रंथों में उपलब्ध है। अतः संक्षिप्त परिचय हिमालय की उत्पत्ति एवं धार्मिक महत्ता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

का ऐतिहासिक पक्ष यहां पर दिया गया है।

यातायात के साधन

श्रीनगर से लेह तक की दूरी 440 किलोमीटर की है यह रास्ता मोटर मार्ग का है। दिल्ली एवं चण्डीगढ़ से हवाई मार्ग द्वारा श्रीनगर पहुंचकर लद्दाख पहुंच सकते हैं। लेह पहुंचने के लिए जोज़ीला नामक दर्रा पार करना पड़ता है। यहां पर तेज हवायें चलती हैं। इस दर्रे की ऊँचाई 3,500 मीटर समुद्रतल से है। लोगों का अनुमान है इस दर्रे में भैरवी शक्ति निवास करती है। यह ला (दर्रा) श्रीनगर और द्रास के मध्य में है। जोजीला दर्रा पार करने के बाद नमिकला आता है इसकी ऊँचाई 3,900 मीटर है जो कारगिल एवं बुद्धखरवू के मध्य में है। बुद्धखरवू से खालसी के मध्य में फोटुला नामक दर्रा आता है जिसकी ऊँचाई 4,100 मीटर है। इसके बाद इस प्रदेश का लेह नामक दर्रा आता है जिसकी ऊँचाई 4,100 मीटर है। यहीं इस प्रदेश का मुख्यालय लेह नामक स्थान है लेह से नुब्रा जाते समय खरदुंगला नामक दर्रा आता है जिसकी ऊँचाई 5,500 मीटर है लेह से छोकर-लेख जाने पर टंगलंगला नाम दर्रा पड़ता है। यह दर्रा उपसी से बड़ा-लाचापास मार्ग में पड़ता है। इसकी ऊँचाई 5,000 मीटर है। इन प्रमुख दर्रों से यहां के ग्रामवासियों को प्रायः आना पड़ता है। जोज़ीला पास लद्दाख का दरवाजा है। नवम्बर मास में हिमपात प्रारम्भ हो जाने पर लगभग चार मास के लिए यहां के मोटरमार्ग बन्द हो जाते हैं। जोज़ीला से आगे द्रास नामक स्थान आता है। यहां पर सबसे अधिक सर्दी पड़ती है। इसका दूसरा नाम हिमनद हेम्बोज है। हेम्बोज इसलिये कहते हैं यहां पर अधिक हिमपात होता है।

जोज़िला नामक दर्रा पार करने हेतु लद्दाखी यहां पर पड़ाव डालते हैं इसलिये इसे द्रास कहते हैं। यह एशिया का सबसे ज्यादा शीत वाला गांव है। यहां का तापमान 0° सेन्टीग्रेट से भी कम हो जाता है। लद्दाख में वनों के अभाव के कारण साल में 2-3 इंच वर्षा हो पाती है। यही कारण है कि यहां पर कृषि योग्य भूमि बहुत कम है।

प्राकृतिक सौन्दर्य

विश्वविख्यात लद्दाख का पठारी भू-भाग जम्मू-कश्मीर प्रान्त के उत्तर में स्थित है। जो अपने भौगोलिक एवं सामाजिक रीतिरिवाजों के कारण संसार भर में विख्यात है। लद्दाख के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं संस्कृति को देखने हेतु प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में देश-विदेश के पर्यटक हर वर्ष लद्दाख आते हैं। लद्दाख का स्थल मार्ग अत्यन्त लम्बा मनोरंजक एवं रोमांचकारी है। मार्ग में हिमाच्छादित विषम पर्वतमालायें, दर्रे एवं काली-पीली, लाल-भूरी रंग की धरती दिखाई देती है ऐसा मालुम पड़ता है कि हम पृथ्वी पर नहीं अपितु चन्द्रलोक की यात्रा कर रहे हैं। यही कारण है कि लद्दाख को खण्डित चन्द्रमा का प्रदेश कहा गया है। लद्दाख के मध्य भाग से होकर प्रवाहित होने वाली सिन्धु नदी (इन्ड़स) वास्तव में जल की नहीं अपितु यह विशाल समृद्धिशाली देश भारत के रक्षक सपूतों में शेर के समान बल पैदा करने वाली दूध की धारा सदृश्य है। इस नदी का जल पीकर लद्दाखवासी अपने शरीर को पुष्ठ और बलवान बनाते हैं। लद्दाख बौद्ध मतावलम्बियों के लिये विशेष महत्व रखता है। यहां पर हजारों विदेशी सैलानी बौद्धमठों (गुम्पाओं) को देखने आते हैं। गर्मी का मौसम अत्यन्त सौन्दर्य युक्त रहता है। चारों ओर सीढ़ीनुमा खेतों की हरियाली मनमोहक होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेखक लद्दाख के प्राकृतिक सौंदर्य को निहारते हुए

आक्सीजन की कमी के कारण नये यात्रियों को सांस लेने में कठिनाई, सिरदर्द, मिचली-आना, नाम से रक्त आना साधारण बात है लद्दाखी युवतियाँ पारम्परिक वेश-भूषा में पर्वतीय सौन्दर्य को बढ़ाने में विशेष सहायक हैं। टिकसे का सबसे बड़ा और वैभव सम्पन्न बौद्धमठ, टिकसेमठ में भगवान बुद्ध की भव्य प्रतिमा एवं लेह से 50 मिलोमीटर दूरी पर स्थित हेमिस-बौद्धमठ में भगवान बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा आज भी अतीत के गौरव का परिचय देती है। हिमाच्छादित लद्दाख का प्राकृतिक सौन्दर्य आकर्षक एवं मनमोहक है। अर्धगोलाकर पर्वत श्रेणीयाँ नाना रंगो के पत्थरों एवं मिट्टी के कारण चित्रकारी की गई सदृश्य प्रतीत होती है। बर्फीली सफेद पहाड़ियों पर से फिसलती पूर्ण चन्द्रमा की किरणें और उससे उत्पन्न प्रकाश पुंञ्ज दिन हो जाने का भ्रम पैदा कर देता है। किसी ने तो यहां तक कहा है कि प्रभु ने इस देश में लाल, नीले, पीले, सफेद, जामुनी रंग के पर्वत तथा रेत पत्थर, पानी यहां तक नाना रंगों की बर्फ का खजाना जमा करके एक भण्डार बनाया हुआ है। स्थान-स्थान पर पर्वत श्रेणियों एवं खरदुंगला की ढलानों पर बर्फ की विविध रंगों में मिली सूर्य के चढ़ाव-उतार के साथ-साथ विविध रंगों का दृश्य अपनी विशेषता लिये है। लद्दाख भारत वर्ष के मस्तक का चमकता हुआ मुकुट, बौद्ध एवं हिन्दु जाति का उत्तुंग अभिमान, पूर्वजों का अमिट स्मारक, स्तूप एवं खनिजों का भण्डार है। चारों ओर सूखी कंकरीली पथरीली जमीन है, वहां भी बीच-बीच में अच्छी खेती हो जाती है। बर्फीले ढलानों पर अनेक रंग-बिरंगी वनस्पतियों की शोभा एवं *जैन्शियाना, ससूरिया, पोलेग़ोनम, ईनूला, पोटेन्टीला, प्रीमूला, रेननकुलस, डेलफीनियम, आर्टिमीसिया, ऐस्ट्रेगैलस* आदि वनस्पतियों के रंगबिरंगे पुष्पों का अनुपम सौन्दर्य देखने योग्य है। यूरोपियन विद्वानों एवं शास्त्रवेत्ताओं का कहना है कि हिमालय की जलवायु में कोई विषाक्त कीटाणू पैदा नहीं हो सकता है। हरियाली बहुत कम दिखाई देती है लेह क्षेत्र के ऊपरी भागों में बड़े वृक्ष दिखाई नहीं देते हैं तेज हवा अधिक चलती है।

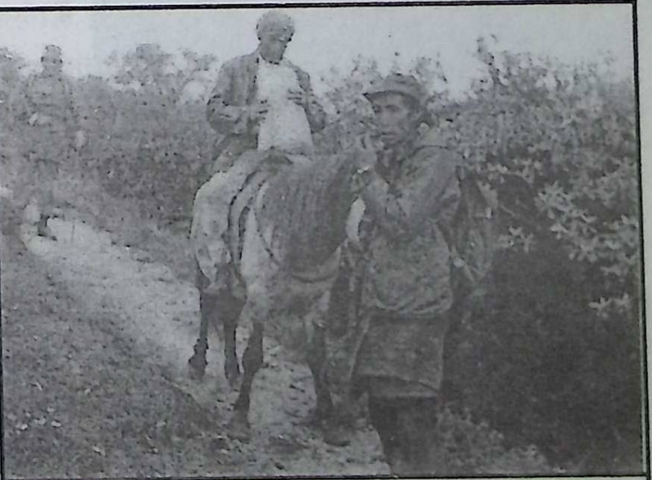

लेखक लद्दाख क्षेत्र में जड़ी-बूटियों की पहचान करते हुए

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सदियों से लद्दाख एक रहस्यमय प्रदेश बना रहा है। सर्दी की ऋतु में खाने-पीने के उपयोग के लिये पानी गर्म करना पड़ता है। समस्त लद्दाख में उत्तर पश्चिम की ओर समानान्तर पर्वत श्रेणियां फैली हुई हैं। यहां पर कतिपय मनोरम झीलें हैं। झीलों की शोभा देखते ही बनती है। अनेक झीलें ऐसी हैं जो कि छोटी-मोटी धारायें उत्पन्न करती हैं। गानांग झील के अतिरिक्त छोकर-लेख सहित सभी झीलें खारे पानी की हैं। इन झीलों में कई किस्में के लवण (साल्ट) एवं रसायन पाये जाते हैं।

रहन-सहन

लद्दाख की जलवायु शीत प्रधान है। जलवायु के अनुकूल ही यहां के लोगों की अलग-अलग पोशाकें हैं। लद्दाखवासी ऊनी वस्त्रों का अधिक प्रयोग करते हैं। यहां के जनजीवन का स्तर सरल और सादा है। स्त्रियाँ आभूषण पहनना पसन्द करती हैं। मुस्लिम बहुल लद्दाख क्षेत्र में दरदी एवं लद्दाखी बहुल क्षेत्र में लद्दाखी भाषा बोली जाती है। लद्दाखी (भोट) तिब्बती लिपि है। इस्लाम एवं बौद्ध दोनों धर्मो के लोग इस क्षेत्र में निवास करते हैं। करगिल से ऊपर के क्षेत्र में बौद्ध धर्म के लोग अधिक संख्या में हैं। लद्दाख बौद्ध महायान मतावलम्बियों का विशेष स्थान है। इसमें दरदी एवं बालती मुसलमान भी मिलते हैं। लद्दाखी प्रायः गहरे लाल रंग के लम्बे कोट पहनते हैं। जिन्हें गोंचा कहते हैं, इस पर वे रंगबिरंगे कमरबंध बांधते हैं। इनकी टोपियां मोटी, लाल, नीले या काले रंग की मखमली या पट्टू की होती है। ये टोपियां कनपटदार होती है। महिलाओं की ओढ़नी पर अनेक सुन्दर पिने और रंग बिरंगें कीमती मोती जड़े होते हैं। ये लोग मोटे ऊनी जूते जिनका निचला भाग चमड़े का होता है पहनते हैं। बहुत से लोग पशमीने का जूता पहनते हैं जिसे पबू कहते हैं। उच्चपरिवार की स्त्रियों के आभूषणों का मूल्य 50 हजार से 80 हजार तक होता है। स्त्रियां प्राय दो लद्दाखी चोटियां रखती हैं ये स्त्रियाँ रुपवती, चन्द्रमा सदृष्य मुखमण्डल वाली, मृगनयनी पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिश्रमी होती है। खेती एवं भेड़-बकरी पालना यहां का मुख्य व्यवसाय हैं। महिला एवं पुरुष दोनों कनपटदार टोपियां पहनते हैं।

लद्दाख की प्रारम्परिक वेसभूषा में बालती मुसलमान

सनातन धर्म के अनुसार लद्दाखियों में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इस प्रकार की वर्ण व्यवस्था नहीं है। केवल कर्म के अनुसार ही बालक या व्यक्ति लामा बन जाता है। लामा को श्रेष्ठ माना जाता है। लामा को शादी, जन्म-मरण आदि संस्कार कराने का अधिकार होता है। हीन जाति में बाजे बजाने वाले व्यक्ति आते हैं जिन्हें वेदा या मून कहते हैं। खान-पान में छूआछूत की परम्परा इन लोगों में नहीं है। शादी ये लोग रक्त के सम्बंध को छोड़ कर अन्य दूसरे के साथ करते हैं। हिन्दु धर्म के अनुसार वर-कन्या का अग्नि को साक्षी मानकर सात फेरों का

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

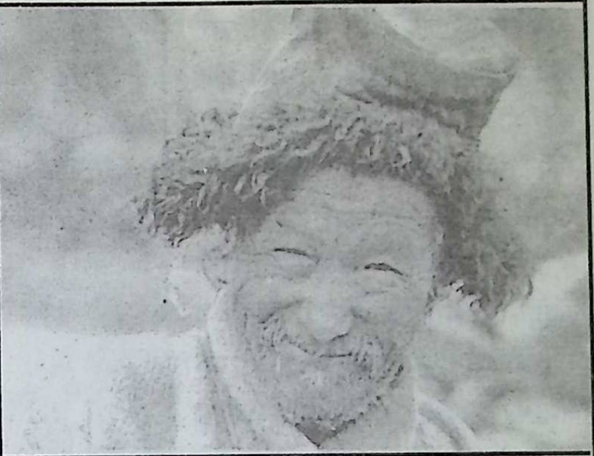
लद्दाखी वृद्ध पुरुष

रिवाज यहां पर नहीं है। लद्दाखी लोगों का खान-पान प्राय: तिब्बत से मिलता है। शीत प्रदेश के निवासी होने के कारण जौ से बनी शराब पीते हैं। जिसे यहां की भाषा में छंग कहते हैं। छंग बनाने हेतु ये लोग जौ को तांबे के बर्तन में उबालते हैं। इतना पानी डालते हैं कि जौ चावल की तरह पक जाय, पके हुये जौ को चादर के ऊपर फैला देते हैं, जब यह कुछ शीतल हो जाता है तो इसमें जड़ी-बूटियों से तैयार किये हुये मशाले की 3-4 गोली मिला देते हैं तथा किसी बर्तन में ढककर गर्म स्थान पर रख देते हैं जब गर्मी के कारण इसमें किवण्ड़ीकरण (फर्मन्टेशन) होने लगता है तथा छंग की सुगन्ध आने लगती है तो समझों छंग तैयार हो गया। इसके बाद एक घड़े में इसे डाल देते हैं और इसमें पानी मिला देते हैं तथा घड़े के मुंह को बंद कर देते हैं। 6-7 दिन में यह तरलसार खट्टे बियर की गन्ध सदृश्य मादक पेय छंग तैयार हो जाता है। इसे छानकर स्थानिक लोग छंग के नाम से मादक पेय के रुप में उपयोग करते हैं।

सुलजा (नमकीन चाय)

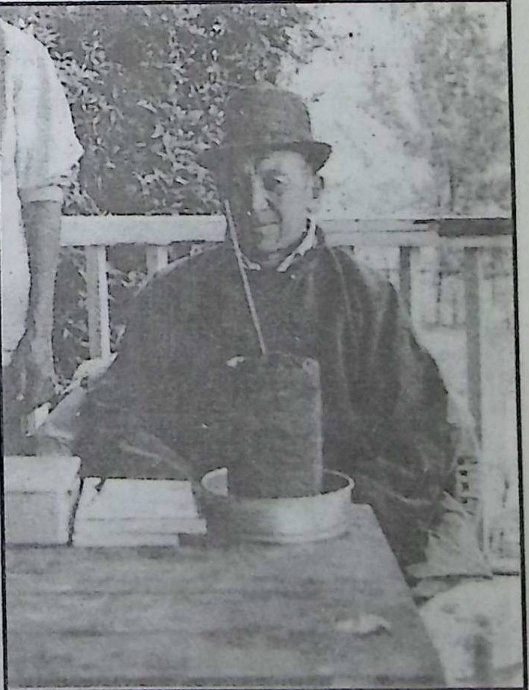
स्थानिक मादक पेय्र 'छंग' का सेवन करते हुये

सुलजा (नमकीन चाय) का यहां पर स्थानिक लोग प्रयोग करते हैं। नमकीन चाय (सुलजा) बनाने की भी यहां पर विशेष विधि है।

नमकीन चाय बनाने हेतु साधारण किस्म की चायपत्ती के अतिरिक्त मोटी पत्ती वाली भोटिया चाय भी प्रयोग होती है। पानी उबाल कर चायपत्ती डालते हैं इसमें आवश्यकतानुसार नमक डालते हैं। चाय छान कर बांस के बने हुऐ खोखले पाईप (दोनमों) में डालते हैं। पुन: इसमें दूध और मक्खन डालकर मथते हैं। यह चाय लद्दाखी लोग पीते हैं। शीत प्रदेश होने के कारण ये लोग पानी के बदले इसी चाय को पीते हैं। चीनी वाली चाय ये लोग स्वास्थ्य के लिये हानिकर मानते हैं। चाय के साथ जौ का सत्तू खाते हैं। मौसम अच्छा होने पर या धूप के निकलने पर ये लोग लस्सी के साथ सत्तू खाते हैं। इसी प्रकार जन, स्क्यु, मोमो, शुकपा लद्दाखियों के मुख्य आहार हैं। प्राय: सभी लोग माँसाहारी होते हैं। मुसलमान लोग भी जौ का सत्तू, नमकीन

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

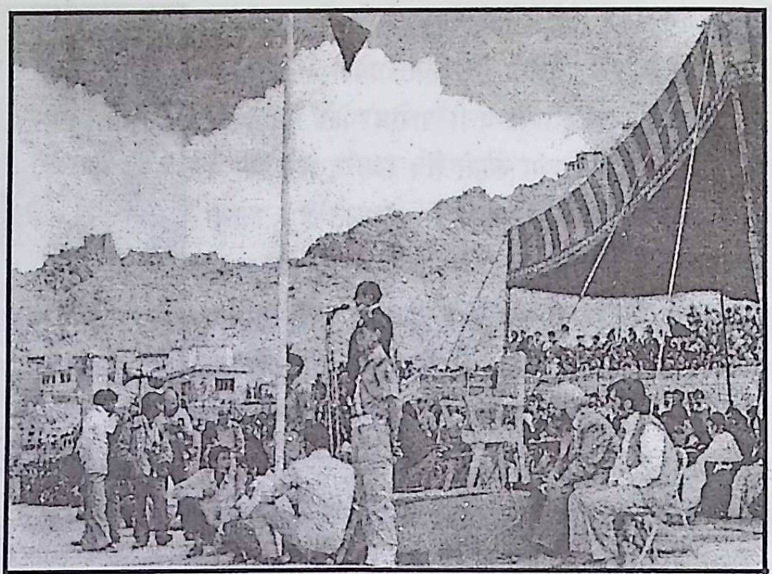
लेह जनपद में स्वंतत्रता दिवस समारोह

चाय, खमीरे की रोटी खाते हैं। सत्तू दही में मिलाकर खाते हैं। दूध अण्डे का भी ये लोग प्रयोग करते हैं। नमकीन चाय पीने से पहाड़ियों पर चढ़ने पर कोई परेशानी नहीं होती है ऐसा इन लोगों का विश्वास है। लद्दाख में ज्योतिषी का अपना पृथक अस्तित्व है। लद्दाखी बोली में इसे ओनपो कहते हैं। समाज में जिस प्रकार लामा एवं आमची (वैद्य) का आदर होता है उसी प्रकार ज्योतिषी (ओनपो) का भी होता है। लोग उसको शादी, पुत्रजन्म आदि शुभकार्य के अवसर पर बुलाते हैं। इसके अतिरिक्त देवता भी आदमी में प्रकट होता है, जो कि भविष्य बताता है। लद्दाखी बोली में इसे ल्हा कहते हैं। लद्दाख में बहुपतिप्रथा का विशेष प्रचलन है जो कि अब समाप्त होती जा रही है।

त्यौहार

जिस प्रकार हिन्दू धर्म में दीपावली मनाई जाती है इसी प्रकार लद्दाखी लौसर का त्यौहार मनाते हैं। इस अवसर पर हिमाच्छादित लद्दाख के गॉव, मठ दीपों के प्रकाश से जगमगा उठते हैं। लोसर का मेला लद्दाख वासियों के लिये धार्मिक, ऐतिहासिक एवं संस्कृति का प्रतीक है। लोसर का पर्व तिब्बती पंचांग के अनुसार 25 नवम्बर से प्रारम्भ होकर 5 दिसम्बर तक चलता है। इस अवसर पर लद्दाख वासियों की प्राचीन संस्कृति, धर्म, कला एवं रहन-सहन का वास्तविक स्वरुप देखने को मिलता है सभी लोग अपने सगे सम्बन्धियों से मिलने जाते हैं। बौद्ध मठों (गुम्पाओं), स्तूपों एवं माणों पर दीप जलाते हैं। त्यौहारों एवं बुद्धजयन्ती आदि उत्सवों के अवसर पर धनुर्विद्या की प्रतियोगितायें होती हैं। धनुर्विद्या प्रतियोगिता के बाद पारम्परिक वेष-भूषा में नर नारी सामुहिक रूप से नृत्य करते हैं। नृत्य धीरे-धीरे प्रारम्भ होता है। बौद्ध मठों के मुखौटे लगाकर ये लोग नाच करते

लेखक स्थानिक कलाकारों के साथ परिलक्षित

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हैं। वाँसुरीवादन इनका मुख्य वाद्य है। यह देखा गया है कि लद्दाख के लोगों का अपनी संस्कृति के प्रति गहरा लगाव है। धर्मिक अनुष्ठानों, त्यौहारों, सामाजिक समारोह, शादी आदि के अवसरों पर स्त्री, पुरूष, बच्चे बड़े उत्साह से अपनी पारम्परिक वेशभूषा में एकत्रित होते हैं एवं पीढ़ियों से चले आ रहे रीति-रिवाजों का बड़े आदर के साथ पालन करते हैं। अमीर-गरीब बराबर के सम्मानित भागीदार होते हैं एवं साथ-साथ उठते बैठते हैं।

लद्दाखी त्यौहारों का एक दिलचस्प पहलू गोन्पा के लामाओं का नृत्य है। ये भांति-भांति के मुखावरण पहन कर पिशाच नृत्य करते हैं व खासतौर पर बाहर के लोग लद्दाख का यह नृत्य देखने आते हैं। लोक संगीत का भी विशेष महत्व है। इनके वाद्य यंत्र दर्शनीय होते हैं। ये लोग छोटे कद के होते हैं। चेहरे की अस्थियाँ उभरी हुई ठुडी छोटी और आंखे मिची हुई होती है। चेहरे पर बाल भी बहुत कम होते हैं। वेशभूषा एक सी होती है। सरलता से स्त्री पुरूष की पहिचान करना कठिन होता है।

दाहसंस्कार

दाह संस्कार की लद्दाख में अनोखी प्रथा है। सात, आठ दिन निरन्तर लामाओं के लिये खाने-पीने एवं रहने की अच्छी व्यवस्था की जाती है। मृतक के सभी रिश्तेदार एक पंक्ति में बैठकर रोने लगते हैं। रोते समय भूत की सभी बाते याद करते हैं। दाह संस्कार में इन लोगों का काफी खर्चा होता है।

कृषि बागवानी

समस्त लद्दाख में प्राय: 8 महीने तक ही खेती की जा सकती है अन्यथा सारा भाग बर्फ से ढका रहता है। करगिल, द्रास की मुसलमान आबादी के किसान प्राय: नस (जौ), गन्दुम (गोधूम), ब्रो (कोदू), मटर, चीनाक की खेती करते हैं। करगिल क्षेत्र की शूरू घाटी खेती के लिये अधिक उपजाऊ है। यहां के लोग मुख्य रूप से गन्धुम (गेहूं) एवं जौ की खेती के साथ-साथ मूंगफली, मटर, तम्बाकू, प्याज, शलजम, सरसों, चौलाई की खेती करते हैं। इस क्षेत्र की जमीन काफी उपजाऊ है। बागवानी में खुमानी, अखरोट प्रसिद्ध हैं। यहां की खुमानी सूखे मेवे के रूप में जम्मू-कश्मीर एवं दिल्ली तक आती है। सेव की बागवानी भी इन क्षेत्रों में की जा रही है। लेह एवं नुंब्राघाटी में भी यव (जौ), गन्धुम (गेहूं), कोट्टू, आलु, गोभी, सलजम, मूली की खेती की जाती है। बागवानी में सैलीक्स, पोपुलर के वृक्षों का रोपण कार्य बड़ी तेजी से चल रहा है। रहने के लिये घर पत्थर एवं लकड़ी के होते हैं। खेती जोतने के काम में याक एवं छोटे-छोटे बैलों का उपयोग करते हैं। दूध की पूर्ती गाय पालने से

लद्दाख में स्थित भोटिया जनजाति का कृषक पुरुष

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख का प्रसिद्ध भारवाहक पशु 'याक'

होती है। सामान ढोने का काम घोड़े-खच्चर, याकों से करते हैं। भेड़, बकरी, पशमीना बकरी पालन इन लोगों का मुख्य व्यवसाय है।

समस्त लद्दाख क्षेत्र में ईन्धन की लकड़ी का बहुत अभाव है। आग जलाने के लिये स्थानिक लोग कांटेदार झाड़ियों के पंचांग, बूरचे, *ब्रमा, लोगजे, सूपा, लगमा,* गुलाब की कांटेदार झाड़ियों को एकत्रित कर रखते हैं तथा हिमपात के दिनों इनका उपयोग जलावन के रूप में करते है।

स्थानिक लोग याक, जम्बुक, भेड़, बकरी एवं घोड़ा पालते हैं। पशुचारा में द्रास एवं करगिल घाटी के लोग प्रगोंस एवं होटूंगप्रंगोस नामक एकवर्षायु पौधे का उपयोग विशेष रूप से करते हैं। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसे *प्रगोंस पोर्डलरिस* कहते हैं जो कि शतपुष्पाकुल (अम्बेलिफेरी) की वनस्पति हैं। मूरक्राफ्ट ने सर्वप्रथम लद्दाख क्षेत्र के यात्रा काल में इस पौधे का चारा के रूप में उल्लेख किया है इस पौधे के बीज औषध उपयोगी माने गये हैं एवं मूल का भी प्रयोग अतिसार में किया जाता है। ये किस्में करगिल एवं द्रास घाटी में काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। इसके अलावा ईसपित एवं जरोई ईसपित नामक पादपों का भी पशुचारा के रूप में उपयोग होता है। शीतकाल में ग्रामीण लोग पशुओं के चारे के लिये इन किस्मों को सुखाकर रखते हैं।

भाषा-धर्म एवं मठ (मौनेस्ट्री)

अब से लगभग 150 वर्ष पूर्व लद्दाख में केवल बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। बौद्ध धर्म अशोक के समय लद्दाख में पहुंचा। सम्पूर्ण लद्दाख में लद्दाखी, दरदी एवं बालती तीन भाषायें बोली जाती है। द्रास से लेकर करगिल क्षेत्र तक दर्दी एवं बालती भाषा बोली जाती है, जो कि मुसलिम धर्मानुलम्बी बोलते हैं। लद्दाखी (भोट) तिब्बती लिपि जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त सुदूर स्थित आंचलों में खम्पा जाति के लोग रहते हैं इनकी भाषा एवं लिपि लद्दाखियों से कुछ भिन्न होती है। लद्दाख में कई शताब्दियों से बौद्धधर्म जीवित है। लेह में 16 वीं शताब्दी के बने हुये अनेक महल ओर बौद्धविहार हैं। लेह बहुत सुन्दर और आकर्षक नगर है। चारों ओर हरियाली एवं सिन्धु (इन्ड़स) नदी के कारण बनी झीलों से लेह का आकर्षण अधिक बढ़ जाता है। लद्दाख में बौद्धधर्म के विषय में काफी सामग्री मिलती है। प्रत्येक गांव में छोटे बड़े रूप में बौद्ध मठ (गुम्पा) अवश्य मिलते हैं। इनमें बौद्ध पुरोहित लामा होता है। इन मठों में बुद्धभगवान् के विभिन्न अवतारों की सुन्दर एवं भव्य मूर्तियां होती हैं। इस क्षेत्र में *चम्बा, लामायुरु, शंकर, एलची, ठिकसे, हिमिस, शेगुम्पा, यांग, सासपोल, स्पितुक, निमों, लिकिर, स्ये* आदि कतिपय मठ (गुम्पा) लद्दाख में विद्यमान हैं। सड़कों के किनारे जगह-जगह पर लम्बे *ऊँ मणीमपदे हुंम्* एवं *ऊँ वज्रपाणे हुंम्* के मन्त्र खुदे पत्थर देखने को मिलते हैं। बौद्ध स्तूप (मांणे) बड़े आकर्षक रूप से बनाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हिमिसगुन्पा (मौनेस्ट्री)

लद्दाख का सबसे पुराना और मुख्य मठ हिमिस गुम्पा है। यह मठ चुमाथांग मार्ग पर लेह से लगभग 45 किलोमीटर दूरी पर लगभग 12 हजार फिट की ऊँचाई पर स्थित है। चिशूल मार्ग पर सिन्धु नदी के बांयी तरफ हिमिस गुम्पा (मौनेस्ट्री) के लिये सिन्धु नदी पार करके जाना पड़ता है। हिमिस गुम्पा के सर्वोच्च धार्मिक अधिकारी परमगुरू तंकचांग रिम्पोछे हैं। हिमिस गुपा ठुकपा सम्प्रदाय का मठ है। लद्दाख के राजा

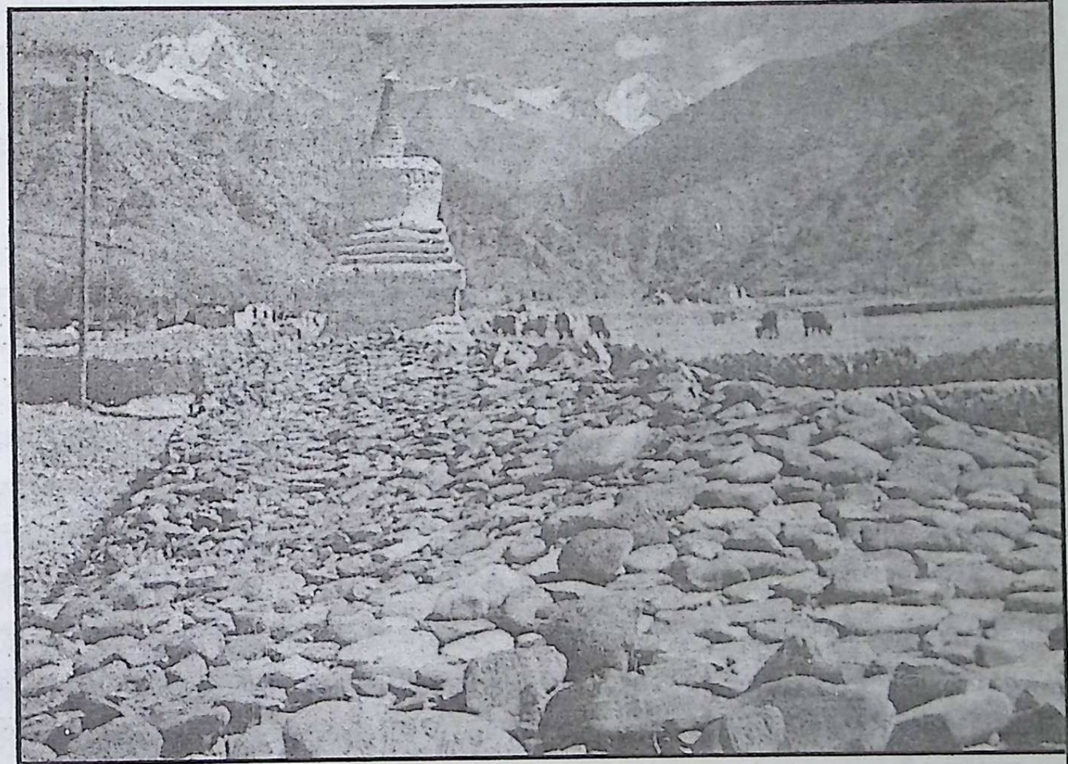

हेमिस ग्राम के समीप : पत्थर-पत्थर पर अंकित है बौद्ध प्रार्थनाएं

सिंगेनमग्याल ने इस मठ के नाम पर कतिपय छोटे-छोटे गांव व अचल सम्पत्ती कर रखी है। इसकी आय से मठ का खर्चा चलता है। यह चार सौ वर्ष से भी अधिक पुराना मठ है ऐसा लामाओं का विश्वास है। स्थानिक लामाओं का कहना है कि लद्दाख क्षेत्र की सबसे प्राचीन मौनेस्ट्री *एलची मौनेस्ट्री* है जो कि करीब 15 सौ वर्ष पुराना है। तीसरा स्थान लिकिर गौन्पा का है। इसके अतिरिक्त *लामायुरु, फ्यांग गोन्पा, मशोक गोन्पा* आदि मौनेस्ट्री लद्दाख में हैं। हेमिस गुम्पा के अंतरंग मन्दिर में बुद्ध की विशाल प्रतिमा रखी हुई है। इस प्रतिमा के एक हाथ में कंकण, गले में हार-मणी मालायें हैं। मौनेस्ट्री की दीवारों पर बौद्ध धर्म से सम्बन्धित सामग्री अंकित है। देवताओं के विभिन्न अवतारों में *जयघोष, अवलोकेश्वर, ग्यालपा,* वैद्यगुरू तथा *भिक्षुओं* एवं लामाओं के चित्र अंकित हैं। रिम्पोछे की भव्य मूर्तियां हैं। इन मठों में महायान, हीनयान पर आधारित कन्ज्यूर एवं तन्ज्यूर पौराणिक हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित रखे हैं। कन्ज्यूर के विनय एवं प्रशानमित दो भाग हैं जो कि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

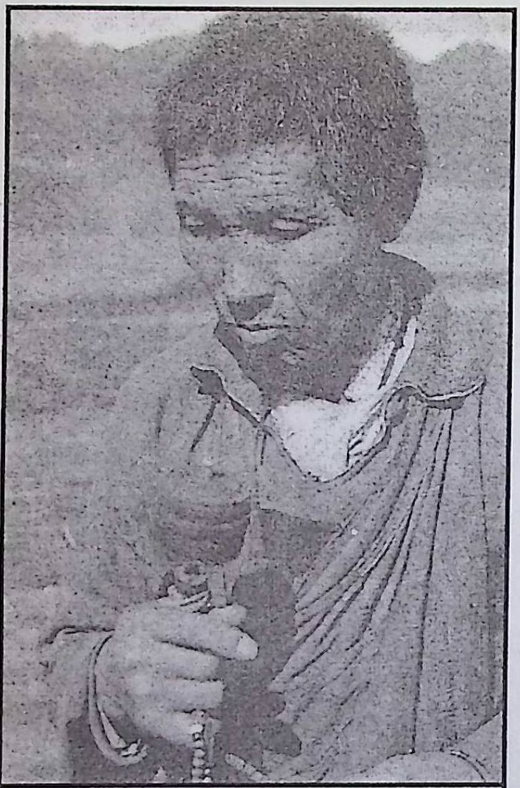

बौद्ध धर्मावलम्बी माने के साथ मंत्र जाप करते हुए

108 खण्डों में हैं। तन्जोर के 225 भाग हैं। जिसमे तन्त्र एवं सूत्र हैं। धर्मशास्त्र एवं आयुर्वेद भी इन खण्डों में वर्णित है। सम्पदा एवं ऐतिहासिक रूप से हेमिस गुम्पा महत्वपूर्ण है। 1602 में महाराज सिंगी नंम ने इसका विकास किया। हेमिस गुम्पा के ध्रर्मिक गुरू तंकचांग रिम्पोछे हैं। जो इस समय चीन में हैं। सन् 1952 में जब चीनियों ने तिब्बत पर आक्रमण करके अपना प्रभूत्व जमाया था तो उस समय चांग रिम्पोछे अपने माता पिता से मिलने तिब्बत गये थे तब से चीनियों ने उनको लद्दाख आने नहीं दिया । हेमिस गोन्पा टुकपा सम्प्रदाय का मठ है।

स्पितुक गोन्पा

लद्दाख में द्वितीय स्थान का प्रमुख मठ (गोन्पा) स्पितुक है। इस मठ के धर्मिक गुरु कुशुक वकुला है। जिस प्रकार परम दलाई लामा को 14 वें दलाईलामा का अवतार मानते हैं उसी प्रकार कुशुक वकुला को भी प्रमुख मानते हैं। इस मठ में भी लगभग 150 लामा रहते हैं। यहां पर भी कतिपय दार्शनिक मूर्तियां एवं दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार कई अन्य प्रमुख गोन्पा लद्दाख में आज भी विद्यमान हैं। लद्दाख में बौद्धधर्म का बोलबोला है। इसका कारण प्राचीन राजाओं के बनाये हुये बहुत से स्तूप एवं माने हैं। माने के उपर *'ओंम् मणि पद्मे हूं श्री'* का मन्त्र पत्थर शिलाओं पर खोदकर रखा हुआ रहता है। ताकि इधर-उधर जाते समय इसकी परिक्रमा लग जाय। इस प्रकार भगवान बुद्ध के माध्यम से लद्दाख भारतीय संस्कृति से युगों से जुड़ा हुआ है।

करजा एवं लिकिर गुम्पा

करजा जन्सकार नदी के वांयी तरफ जन्सकार तहसील में हैं। यह लिकिर गुम्पा सदृश्य ही ऐतिहासिक मठ है। सनातन धर्म के अनुसार इन मठों के मन्दिरों में द्वारपाल (ग्यालचंग) होता है जिन्हें बुद्ध भगवान का रूप मानते हैं। इसी प्रकार बुद्ध भगवान के अवतारों में शुकदन, मं-घोष, वैद्यगुरू रिंगचित, अवलोकेश्वर, चौ-खावा आदि देवता हैं। इन देवताओं की मूर्तियाँ लिकिर गोन्पा में है। यह गोन्पा लेह-खालसी मार्ग पर है। प्रत्येक मठ में सौ से अधिक लामा (बौद्धभिक्षु) रहते हैं। लामा लोग अपने सिर के बाल मुंडवाते हैं और लाल व पीला चोगा धारण करते हैं जब किसी परिवार में दो या तीन से अधिक लड़के या लड़कियां होती हैं तो उनके माता-पिता बच्चे को 8 या 10 वर्ष की आयु में बौद्धभिक्षु एवं लड़की को भिक्षुणी बना देते हैं। लड़की को भिक्षुणी बनाने पर लड़के की तरह बालों का मुण्डन किया जाता है जिसे चोमो कहते हैं। दलाईलामा धर्मगुरू है। लोसर के मेले पर एवं बुद्धजयन्ती के अवसर पर लामाओं का नृत्य देखने योग्य होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हिमाच्छादित लद्दाख का महान सांस्कृतिक पर्व लोसर का मेला
(दीपावली का त्यौहार)

जिस प्रकार हिन्दू संस्कृति में दीपावली का पवित्र त्यौहार बड़े उल्लास एवं धूमधाम से मनाया जाता है उसी प्रकार लद्दाख क्षेत्र में लोसर का मेला जगमगाते हुये दीपमालाओं के साथ मनाया जाता है। जिस महापुरूष के बारे में यह उत्सव मनाया जाता है उनका नाम *'ग्यालपा चोड़े-खांपा लोजडे'* है। सम्पूर्ण लद्दाखवासी इस त्यौहार को उसी हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाते हैं जिस प्रकार कि वर्षा ऋतु के दिनों बादलों की गर्जन से वन उपवन हरे भरे, रंग-बिरंगे पुष्पों से शोभायमान होते हैं एवं इस खुशी में मयूर अपने झुण्डों में नाचते गाते झूमने लगते हैं। जिस प्रकार ओंस के कण-कमल पत्र में टपक कर मोतियों के समान सुन्दरता लिये हुए चमकने लगते हैं उसी प्रकार प्रत्येक गांव में दीपों की ज्योति हिमाच्छादित धरती पर चमकने लगती है एवं ऐसा प्रतीत होता है कि मानों तारों की तरह चमकने वाला यह दूसरा चन्द्रलोक हो। वास्तव में इस लोसर के त्यौहार (लद्दाखियों का दीपावली का त्यौहार) का श्रीगणेश पूजा पाठ से होता है। मुख्य लोसर के प्रारम्भ से पूर्व उपलोसर भी मनाया जाता है। उपलोसर के दिन तिब्बती बौद्धधर्म के गेल्पा सम्प्रदाय के संस्थापक व मूर्धन्य विद्वान, कवि, काव्यकार, लेखक, महापुरुष नमग्याल्पा लोजड़ टक्सपा का जन्म दिन मनाते हैं। इस दिन को सुमति कीर्ति का महापरिनिवार्ण दिन भी कहा जा सकता है। इस महापुरूष की स्मृति में प्रत्येक गांव में दीप जलाये जाते हैं और पूजा पाठ भी किया जाता है यह त्यौहार केवल लद्दाख क्षेत्र में ही नहीं अपितु हिमाचल प्रदेश के सभी सीमान्त क्षेत्रों लाहुलस्पीती, किन्नौर, चम्बा आदि स्थानों पर भी मनाया जाता है। अत: लोसर एवं उपलोसर समस्त लद्दाख वासियों का धार्मिक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक छवि का प्रतिनिधित्व करता है।

लौसर का पर्व तिब्बती पंचांग के अनुसार 25 नवम्बर से प्रारम्भ होकर 5 दिसम्बर तक चलता है। इस पर्व पर लद्दाख वासियों की प्राचीन संस्कृति कला, धर्म व रहन-सहन का सही रुप देखने को मिलता है। इन दिनों सभी लोग अपने सगे सम्बन्धियों से मिलने जाते हैं। हाथ में मादक पेय का घड़ा और खमीरे की रोटी होती है एवं जूले-जुले के स्वरों में यह क्षेत्र गूंजरित होने लगता है। भगवान बुद्ध की प्रतिमा गोन्पो (मठो), स्तूपों एवं माणों पर दीपक जलाये जाते है। यहां तक कि पशु, चक्की एवं अन्य उपयोगी वस्तुओं पर भी दीप जलाये जाते हैं।

यहां के लोग रिश्तेदारो को निमंत्रण देने के अतिरिक्त कुत्ते, बिल्ली, चंवरगाय आदि सभी जन्तुओं को भी निमंत्रण देते हैं, जो कि समान भाव को प्रदर्शित करता है। इन दिनों ये लोग एक दूसरे को प्यार भरी नजरों से देखते हैं और सभी भेदभावों को समाप्त कर देते हैं। स्त्री पुरूष के बीच छंग पीने की प्रतियोगिता होती है यह प्रतियोगिता छंग के गीतो से प्रारंभ होती है तथा आपस में गले मिलते हुए एक दूसरे की दीर्घ आयु की कामना करते हैं। इस प्रकार पांच छ: दिन तक यह त्योहार उत्साह एवं जोश के साथ मनाया जाता है।

श्री ग्यालपा-चोड़-खांपा लोजड़े टक्सपा के संक्षिप्त जीवन परिचय के विषय में भी पाठकों को संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है जो कि इस प्रकार है - प्राचीन काल में भगवान बुद्ध के इस संसार में होते समय यही लामा चोड खांपा रिंपोछे भारत में किसी ब्राह्मण कुल में भिक्षु भेष धारण करके जन्में थे। बड़े होकर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लोसर के अवसर पर लिया गया सामुहिक चित्र

रिंपोछे बौद्ध-सप्त से मिले और उनके शिष्य बने। एक दिन गुरु और शिष्य दोनों भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ भगवान के पास पहुंचे। शिष्य ने भगवान को मूल्यवान सफेद कान्तिमणि की एक माला श्रद्धा के साथ भेंट की और भगवान से अनित्यत्व नामक यथार्थ मणी के सम्यग् ज्ञान के लिए प्रणिधान किया। यह भिक्षु ब्राह्मण अनित्यत्व के यथार्थ दृष्टि सम्यग् ज्ञान प्राप्त करने वाला संस्कारी बना। इसके अतिरिक्त इसके विषय में भगवान बुद्ध ने स्वयं आनन्द से कहा कि यह अमिट श्रद्धा एवं भक्ति वाला भिक्षु मेरे धर्म की प्रचुर सेवा एवं प्रचार करेगा। भविष्य में याक नामक पशुओं से युक्त भारत की सीमा पर स्थित 'गे' नामक स्थान में गोन्पा (मठ) का निर्माण होगा और उस समय लोजडे नामक मूर्धन्य विद्वान सिद्ध पुरुष जन्म लेंगे।

यह स्वामी ग्यालपा लोजड़े तिब्बत की पूर्व दिशा में स्थित चठे नामक प्रदेश में सम्पन्न परिवार में जन्मे। इनके पिता का नाम रवखेलुवुम था। ये अत्यन्त वीर पराक्रमी और गरीवों से प्यार करने वाले थे। इनकी माता भी सरल स्वभाव वाली गुणवती विदुषी महिला थीं। इस प्रकार एक शिक्षित परिवार में ग्यालपा चौडखांपा लोजड़े ने जन्म लिया।

ग्यालपा चौड़खापा का जन्म भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 2199 वर्ष बाद हुआ था। इसका वर्णन गंदन छोंस जुड़े नामक धर्मिक इतिहास की तिब्बती पुस्तक में मिलता है। इस होनकार बालक के जन्म के समय से ही सिर छत्र की तरह विशाल, लम्बी-लम्बी भृकुटियां, लम्बे कान, विशाल हाथ पैर तथा शरीर कुमुदपुष्प की तरह शुभ वर्ण का था। बचपन से ही धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा, दान आदि गुणों के कारण वोधिसत्व के आचरणों से युक्त थे।

इस महान पुरुष ने गृहस्थी त्याग कर भिक्षु जीवन में प्रवेश किया। इन्होंने भौतिक जीवन को कारावास की भांति समझकर त्याग दिया तथा भिक्षु जीवन व्यतीत करने हेतु माता-पिता से आज्ञा मांगी। बचपन से ही इस बालक में इतनी विलक्षण बुद्धि थी कि उसका वर्णन करना संभव नहीं है बालक ने भिक्षु बनते ही तन्त्रयान एवं महायान आदि सभी धार्मिक सूत्रों एवं उपदेशों का अध्ययन किया। इस प्रकार छोटी अवस्था में ही यह बालक मूर्धन्य विद्वान हो गये।

कुछ बड़े होने पर विद्वान बालक ने स्वामी तीन दुवे रिन्खेन एवं जोनू जड़धुपे नामक विद्वानों से दीक्षा ली तथा दोनों गुरुओं से गम्भीर विषयों का अध्ययन किया एवं भगवान बुद्ध के उपदेशों को लोगों तक पहुंचाने के लिये पत्रों पर उपदेश लिखने लगे। कुछ समय बाद वे अपने शिष्यों के साथ चंड नामक प्रदेश में गये तथा यहां पर ठिखुंड नामक गोन्पा में निवास किया। इस मठ के प्रमुख लामा चंग रिन्पोन्छे थे। जिनसे आपने

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

महायान नामक मुख्य ग्रंथ के निगूढ़ तत्वों का ज्ञान प्राप्त किया, महायान के साथ-साथ अपने आयुर्वेद के कतिपय ग्रंथ छलक्, च्यूगत, लेमिक, लंगथप का अध्ययन किया तथा प्रकाण्ड आमची (कविराज) के नाम से भी प्रसिद्ध हुये। कालान्तर में आपने भारत का भ्रमण किया और भारत में आकर भारतीय विद्वानों से सिद्धनागार्जुन, वसुवन्धु, धर्मकीर्ति, शाक्यप्रभु आदि अद्वितीय विद्वानों की कृतियों का अध्ययन किया।

भारत से अध्ययन करने के बाद तिब्बत में तवचन नामक स्थान पर रहकर उन्होंने आचार्य युरग्यान से सम्पर्क स्थापित किया, एवं वहां पर 12 वर्ष तक रहकर पारमिताओं का अध्ययन किया इसके पश्चात पुनः चंडे नाम स्थान की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में सस्कया, तोतजड़ आदि स्थानों में रुक कर धार्मिक उपदेश दिये। आपने गुरुओं एवं शिष्यों के साथ समस्त तिब्बत में भ्रमण कर बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार इस महाप्रभु एवं धर्मगुरु लोजड़े को समस्त तिब्बत एवं लद्दाखवासी भूल नहीं सकते हैं जिनकी स्मृति में समस्त लद्दाख क्षेत्र में लोसर एवं उपलोसर का पवित्र पर्व मनाया जाता है। वास्तव में ऐसे महापुरुष का अभिर्भाव एक महान आदर्श की याद दिलाता है जिसका कि प्रत्यक्ष स्वरूप इन क्षेत्रों में देखने को मिलता है।

लद्दाख की जलवायु

लद्दाख में गर्मी का मौसम अत्यंत सुहावना रहता है। चारों ओर सीड़ीनुमा खेतों की हरियाली, अखरोट, सेव एवं खुमानी की बहार, फूलों से लदी क्यारियां तथा जंगली गुलाबों की बहार से सारे लद्दाख में एक अपूर्व उल्लास नजर आता है। धूप निकले तो गर्मी महसूस होने लगती है और बादल होते ही ठंड, शाम को भी गुलाबी ठंड रहती है। गर्मी के दिनों में लद्दाख क्षेत्र का संबंध सड़क यातायात से जुड़े होने के कारण बड़ी चहल पहल रहती है। विदेशी सैलानियों के लिए भी यह स्थान अत्यंत आकर्षक हो गया है। यहां वर्ष में केवल एक ही फसल होती है अनाज में एक विशेष प्रकार के गेहूं की किस्म जिसे ग्रीम कहते हैं और दालों में छोटी किस्म की मटर पैदा होती है। यहां सब्जी बहुतायत में होती है, मूली आठ किलो वजन की, बन्द गोभी बारह किलो वजन की तथा आलू एक-एक किलो तक का देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मटर, प्याज, टमाटर, धनिया, पोदिना तथा सलज़म भी पैदा होते है।

गर्मी का मौसम जितना सुहावना होता है, शीत उतनी ही कष्टदायक होती हैं। सर्दी यहां अक्टूबर से अप्रैल तक पड़ती है। वर्षा यहां नहीं के बराबर होती है, किन्तु सर्दियों में जमकर बर्फ गिरती है तथा जिससे सब कुछ सफेद हो जाता है, और एक अजीब सन्नाटा सा छा जाता है। लगता है कि, मानों प्रकृति श्वेत चादर ओड़ कर विश्राम कर रही है। शरीर पर वस्त्रों की संख्या दर्जनों में हो जाती है, तापमान गिर कर शून्य से नीचे-38 डिग्री तक पहुंच जाता है। पैट्रोल व मिट्टी के तेल को छोड़ कर सब तरल पदार्थ सरसों का तेल, मूंगफली का तेल, पेंन की स्याही, नलों का जल सब कुछ जम जाता है। इंधन के अभाव में लकड़ी बहुत महंगी है घरों में लकड़ी, कंडे व मिट्टी के तेल की बुखारी जलायी जाती है यदि यह व्यवस्था न हो तो दीवारों पर बर्फ की मोटी तह जम जाती है।

लेह सिन्धू नदी के किनारे पर स्थित हैं। सिन्धु नदी के दोनों किनारे भी बर्फ से जम जाते है और नदी की धारा बहुत क्षीण हो जाती है। यहां के जनजीवन में अत्यंत सरल प्रकृति तथा सहिष्णु मनोवृति के लोग होते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हैं। बात-चीत में नम्रता और सौजन्य सहज रूप से झलकता रहता है। अन्जान व्यक्ति भी हाथ को सिर तक ले जाकर सभी को जूले (नमस्ते) कहता है। इन लोगों का पहनावा ऊनी वस्त्रों का होता है। आदमी व औरतें लम्बा चोंगा पहनते हैं। शिर पर टोपी भी विशेष प्रकार की होती है जूते अपने हाथों से बने ऊन व चमड़े के होते हैं। समय के साथ-साथ पहनावे में नये से नये फैशन ने भी अपना स्थान बन लिया है। प्राय: सभी लोग मांसाहारी होते हैं। अधिकांश लोग कृषक हैं तथा सीड़ीनुमा छोटे-छोटे खेतों में गेहूं, जौ, मटर आदि की पैदावार आवश्यकतानुसार करते हैं। कुछ लोग दुकान भी करते हैं यहां का बाजार छोटा है फिर भी यहां पर वस्तुएं महंगी व सस्ती मिल जाती है।

संसार की बर्फीली छत है लद्दाख

कश्मीर की सुन्दर वादी के उत्तर में विश्वविख्यात लद्दाख का पठार है जो अपनी भौगोलिक स्थिति एवं सामाजिक रीतिरिवाजों के कारण संसार भर में प्रसिद्ध है। लद्दाख को देखने देश-विदेश के पर्यटक हजारों की संख्या में हर वर्ष यहाँ आते हैं इसे संसार की छत भी कहते हैं। लद्दाख का अर्थ है "हला पूलस दर्वत' अर्थात देवताओं द्वारा स्वच्छ किया हुआ भाग। गगनचुंबी पर्वत मालाओं से घिरे पूर्वी कश्मीर घाटी के क्षेत्र लद्दाख में कोई ऐसा स्थान नहीं है जो समुद्रतल से 2,700 मीटर से कम ऊँचा हो यहां की पर्वत श्रेणियों की ऊँचाई 5,100 मीटर से लेकर 5,700 मीटर तक है। 3,600 मीटर से 4,500 मीटर के मध्य पर्वत पर एवं सिंधु नदी के दोनों तरफ लद्दाखी जनता रहती है। यहां वर्ष में एक दो इंच वर्षा होती है। विदेशियों ने लद्दाख को चंद्रमा का प्रदेश कहा है, क्योंकि यह रेतीला नंगा और वर्फीला है। हरियाली यहां नाममात्र के लिये ही है। यहां पर हर समय तेज हवाएं चलती रहती हैं। लोगों का ख्याल है कि जोज़िला आदि दर्रों पर भैरवी शक्ति का निवास है। जब लोग इस मार्ग से गुजरते हैं तो यहां चढ़ावा चढ़ाते हैं। दो पर्वतों के बीच सिंधू नदी के किनारे घाटी में बसा द्रास नामक स्थान है। यहां सबसे अधिक सर्दी पड़ती है। इसका दूसरा नाम हिम-भवदी है। लद्दाखी लोग विश्वासपात्र एवं भोले होते हैं। ये जौ से बनी शराब पीते हैं। जिसे यहां की भाषा में छंग कहते हैं। लद्दाख का तापमान शून्य के नीचे -40 डिग्री सैल्सियस तक पहुंच जाता है। शीत काल में सिंधु नदी का पानी जम जाता है। शतरंज व पासा यहां के पुराने खेल हैं। शादी ब्याह के मौंको पर मेहमानों को बुलाकर सबको छंग पिलाई जाती है और फिर नाच गाना शुरु होता है। लद्दाखियों का मुख्य खाद्य ग्रीम है जिसे पीस कर आटा बनाया जाता है। इसे चाय में मक्खन के साथ रोटी या सत्तू के रूप में खाया जाता है। मक्खन वाली नमकीन चाय प्राय: ये लोग पीते हैं। यहां पर एक दर्ज जाती के लोग भी रहते हैं। इन लोगों का रहन-सहन भी निराला है ये कभी नहाते नहीं हैं। इनके इलाकों में पीने का पानी उपलब्ध नहीं है। इन्हें पानी के लिये कई-कई मील दूर जाना पड़ता है। अब से लगभग 150 साल पहले लद्दाख में केवल बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। लेकिन आज लद्दाख के निवासियों में से 30 प्रतिशत इस्लाम और हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। बौद्ध धर्म अशोक के समय कश्मीर पहुंचा और भिक्षुओं द्वारा चीन, तिब्बत आदि देशों में फैला।

कला दस्तकारी

लद्दाख के युवक एवं युवतियों को दस्तकारी सिखाने का यहां पर प्रशिक्षण केन्द्र है। यहां पर थुलमा, गलीचे, दीवार पर टांगने के बड़े-बड़े चित्र, मुखोटे, पूजापाठ में काम आने वाले पूजा के पात्र एवं अन्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कलाकृतियां बिक्री के लिये तैयार की जाती हैं। विदेशी पर्यटक इनको अपने देशों को खरीद कर ले जाते हैं। तिब्बती कला का बहुत सुन्दर चित्रण यहां देखने को मिलता है। तांत्रिक साधन की अनेक वस्तुये हेमिस मौनेस्ट्री के मेले में बिकने को आती है। विदेशी पर्यटक हड्डी की बनी तूरी क्रय करते हैं। छंग रखने हेतु सींग का बना हुआ बर्तन होता है जिसे आसासचु कहते हैं। यह मुड़े हुये सींग से बनाया गया पात्र है। खरगोश, स्नोलेपर्ड एवं तेन्दुवे की खाल का यहां पर व्यापार किया जाता रहा है। जोजीला के आसपास कस्तूरी मृग भी देखे गये हैं। कस्तूरी का आयुर्वेद एवं तिब्बती चिकित्सा में विशेष महत्व है।

लद्दाख की घाटियां एवं तहसील

लद्दाख हिमालय की घाटियां उन क्षेत्रो की ऊँची पर्वत श्रेणियों के आधार पर निर्धारित है। मुख्यतया लद्दाख हिमालय की पर्वत श्रेणियां चार भागों में विभक्त की गई हैं। इन्हीं पर्वत श्रेणियों से कई छोटी-छोटी नदियों का उद्गम होता है।

1. कराकोरम रेंज 2. कैलाश रेंज 3. लद्दाख रेंज 4. जन्सकार रेंज

1. कराकोरमरेंज

कराकोरम हिमालय श्रृंखला करीब 480 किलोमीटर लम्बी पश्चिम से दक्षिण तक चली गई है। इसी क्षेत्र को श्योक रेंज भी कहते हैं। यहां का प्रमुख दर्रा श्योकनाला (नदी) का उद्गम माना गया है। अन्य कतिपय हिमनद आकर श्योकनाला में संगम करते हैं। यह रेंज तिब्बत एवं चीन का सीमाक्षेत्र बनाता है।

2. कैलाशरेंज

कैलाश हिमालय की श्रृंखला करीब 576 किलोमीटर लम्बी दक्षिण से पश्चिम तक चली गई है। इस क्षेत्र से इन्डस (सिंगेखवाव) नामक नदी का उद्गम होता है। इस रेंज की सबसे उंची चोटी कैलाश है जो कि तिब्बत तक चला गया है। ये पर्वत श्रेणियां पंक्तिबद्ध रूप से स्थित हैं।

3. लद्दाखरेंज

लद्दाखरेंज हिमालय की पर्वत श्रृंखला करीब 368 किलोमीटर लम्बी पश्चिम से दक्षिण तक चली गई है। इसके एक तरफ श्योकनदी प्रवाहित होती है एवं दूसरी तरफ इन्डस नदी प्रवाहित होती है इस रेंज में सबसे ऊँची पर्वत श्रृंखला कामेत है।

4. जन्सकार रेंज

ये पर्वत श्रेणियाँ कश्मीर से तिब्बत तक लगभग 640 किलोमीटर पश्चिम से दक्षिण तक विस्तृत हैं। इस क्षेत्र से शुरू नदी एवं जन्सकार नाला का उद्गम होता है। इसकी सीमायें हिमाचल प्रदेश के लाहुलस्पीती जिले की पर्वत श्रेणियां बनाती हैं।

प्रशासन एवं व्यवस्था की दृष्टि से लद्दाख पांच तहसीलों में विभक्त है जो कि निम्नप्रकार से है :-

1. लेह तहसील 2. न्यूमा तहसील 3. नुब्रा तहसील 4. जन्सकार तहसील 5. करगिल तहसील

लद्दाख वनखण्ड को निम्न मुख्य रेजों में विभक्त किया गया है।

1. लेह रेंज 2. चुमाथांग रेंज 3. नुब्रा रेंज 4. जन्सकार रेंज 5. करगिल रेंज 6. द्रास रेंज

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मुख्य पास (ला) एवं घाटियां

लद्दाख में निम्न मुख्य घाटियां है।

1. इन्डस घाटी 2. श्योक घाटी 3. नुब्रा घाटी 4. जन्सकार घाटी 5. शुरु घाटी
6. द्रास घाटी 7. कोकसर घाटी 8. गिलगित घाटी 9. कराकोरम घाटी

कतिपय हिमनद लद्दाख हिमालय की पर्वत श्रेणियों से पिघलकर अन्त में विशाल सिंधु (इन्ड़स) नदी बनाते है जो कि पाकिस्तान को चली गई है।

लेह-लद्दाख की प्रमुख घाटियों में पहुचने हेतु जो मुख्य पास (ला) या दर्रा स्थानिक लोगों को लेह पहुंचने पर पार करने पड़ते है वे निम्न हैं।

1. जोजीला पास : 3,600 मीटर ऊँचाई, श्रीनगर से द्रास मार्ग के बीच में यह पास लद्दाख जाने पर सर्वप्रथम ला है।

2. नमिकला पास : 4,000 मीटर ऊँचाई, करगिल से बुद्ध खरबू मार्ग के मध्य में।

3. फोटुला पास : 5,600 मीटर ऊँचाई, बुद्ध खरवू से खालसी के बीच में

4. खरदुंगला पास : 5,600 मीटर ऊँचाई, लेह से नुब्रा के बीच में।

5. टंगलंगला पास : 5,500 मीटर ऊँचाई, उपसी से होकर छोकर लेख के मध्य में।

6. वड़ालाचा पास : 5,000 मीटर ऊँचाई, छोकर से लाहुलस्पीती, हिमाचल प्रदेश मार्ग पर।

7. पिंजैला पास : 5,000 मीटर ऊँचाई, शुरू से जन्सकार के मार्ग पर।

इस प्रकार कतिपय दर्रा (ला) लेह जनपद में हैं। इन दर्राओं से लद्दाखवासियों को अक्सर आना जाना पड़ता है। शीतकाल में अधिक हिमपात होने से यातायात बंद हो जाता है। केवल हवाई मार्ग से लेह, नुब्रा, चुमाथांग एवं जन्सकार जाया जा सकता है। सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में शीत अधिक पड़ती है।

संक्षिप्त रूप से इस क्षेत्र में द्रासघाटी, शुरूघाटी, नुब्राघाटी, चुमाथांगघाटी, पूगाघाटी, जन्सकार घाटी, इन्ड़सघाटी आदि घाटियां औषधीय पौधो एवं खनिजों के लिये प्रसिद्ध है।

सम्पूर्ण लद्दाख को ऊँचाई की दृष्टि से निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. सबएलापाईनजोन : 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर।

2. एलपाईनजोन : 3,600 मीटर की ऊँचाई से लेकर 5,200 मीटर की ऊँचाई तक।

3. विशालहिमश्रृंग्र : इनकी ऊँचाई 7,500 मीटर तक चली गई है, जो कि सनातन हिमशैल है।

1. सबएलपाईन जोन

यह भाग 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक चला गया है। नमदार पहाड़ी ढलानों पर अनेक प्रकार की रंग-बिरंगों पुष्पों वाली वनस्पतियां पाई जाती है। ये पुष्प खिलने पर बहुत सुन्दर लगते हैं कि मानों प्रकृति स्वयं इन उद्यानों व वनों की प्रहरी है। हिमनदों (गलेसियर) एवं नमदार ढ़लानों पर *थायमस सरपाईलम* (वन्ययवानी), *रोडेडेन्ड्रोन*, भूर्ज (*वेटुला युटिलिस*), *जुनिपरस*, शेषकी (*आर्टिमीसिया मैरीटिमा*), अफसन्तीन (*आर्टिमीसिया*), *रोज़ा सिरीसियां*, छेफट (*इफेड्रा जियार्डियाना*), प्रंगोस (*प्रगोस पेबुलरिस*), *हेरेक्लियम, फेरुला जेस्कियाना*, फगून, लंगतांग (*हायोसायमस*), *ऐनिमोन, पोलिगोनम, कैल्था, रैननकुलस,*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

धूवीतिंग (*जैन्सीयान*), *डेल्फीनियम*, कुटकी (*पिक्रोराईजा*), पाषाणभेद (*सेक्सीफ्रिगा*), *प्रिमूला, पोटेन्टिला,* अतिविषा (*एकोनाईटम हेट्रोफाइलम*), *पोडोफिलम* आदि कई किस्मों की जड़ी-बूटियाँ प्राकृतिक रूप से पायी जाती हैं। सम्पूर्ण लद्दाख में वृक्षों का अभाव है। वन विभाग इन घाटियों में सैलीक्स एवं पौपुलर आदि वृक्षों के रोपण का कार्य विस्तृत पैमाने पर कर रहा है। कुछ भाग लद्दाख का पठारी एरिडजोन से मिलता है।

2. एलपाईनजोन

यह भाग 3,600 मीटर की ऊँचाई से लेकर 5,600 मीटर की ऊँचाई तक चला गया है। इन हिमनदों पर विशेष प्रकार के ब्रहम-कमल, जोगीपादशाह, घुगी, वाण, ससूरिया की किस्में, जैन्शीयाना की कई प्रजातियां पाई जाती है। जुलाई से सितम्बर तक यह भाग नाना प्रकार से रंगबिरंगे पुष्पों से ढका रहता है। अधिक ऊँचाई वाले हिमशैलों पर अधिक तेज बर्फीली हवा चलने से शिरः शूल एवं चक्कर आने लगते हैं। इसका उपचार सत्तू, खटाई आदि का सेवन कर करते हैं। ज्यादा ऊँचाई पर हवा में आक्सीजन की कमी के कारण सांस फूलने लगता है एवं पहाड़ियों पर चलना काफी कठिन हो जाता है। इससे आगे सनातन हिमरेखाओं के अगम्य बर्फीले हिमश्रृंगों के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता। कुछ दिनों गर्मी का मौसम रहता है। इस पर्वतीय प्रदेश में वर्षा का औसत बहुत कम रहता है। वर्षा की इस क्षेत्र में प्रायः कमी पाई जाती है। बर्फ गिरने का कोई खास मापदण्ड नहीं है। इस क्षेत्र में विशाल रंगबिरंगे हिमशैल पाये जाते हैं। जमीन रेतीली, पठारी एवं ढलुवां होती है।

लद्दाख की प्रमुख घाटियों का विवरण

1. द्रासघाटी

यह घाटी जोजीला पास से प्रारम्भ हो जाती है। इसी स्थान से द्रास नामक हिमनद का उद्‌गम होता है। द्रास दरिया के किनारे द्रास नामक गांव बसा हुआ है। जोजीला पास पार करने के बाद लद्दाखवासियों का यह पहला पड़ाव है। घाटी के दोनों तरफ ऊँची-ऊँची विशाल हिमशैलें हैं। एक तरफ का भाग बलूचिस्तान की सीमा बनाता है। यह घाटी करगिल तक चली गई है। द्रास ब्लाक में सकरान, गोसून, गटोह, डौक्स, ठाकुरान, मराईनस, प्रन्दास, लुगुचन्द आदि गांव हैं। मटाईन से काकसर तक द्रास ब्लाक है। जिसमें लगभग 18 गांव हैं। द्रास ब्लाक का क्षेत्रफल लगभग 62 किलोमीटर है। द्रास नाम स्थान में सबसे अधिक शीत पड़ती है। संसार के शीत वाले स्थानों पर इसका दूसरा स्थान है। जहां पर आबादी बसती है। करगिल तहसील के मूलवेग से बुद्धखरवू तक बौद्ध धर्म के लोग रहते हैं।

इन ग्रामों में अधिक आबादी बालती एवं दरदी मुसलमानों की है। खेती एवं भेड़बकरी पालना इनका मुख्य व्यवसाय है। जौ, गेहूं, गोधूम, मटर, कोटू की ये लोग खेती करते हैं। सत्तू, नमकीन चाय, खमीरे की रोटी, लस्सी मुख्य पेय एवं भोजन हैं। इस क्षेत्र में लकड़ियों का काफी अभाव है। खुमानी (सूखे मेवे) का मुख्य व्यवसाय यहां के ग्रामीणों का है। इनका रहन-सहन सम्यता सभी मुस्लिम धर्म पर आधारित है।

2. शुरूघाटी :

यह घाटी करगिल से पानीखर एवं पिन्जैलापास तक चली गई है जो कि 2,800 मीटर की ऊँचाई से

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेकर 5,200 मीटर की ऊँचाई तक विस्तृत है। जड़ी-बूटियों की दृष्टि से यह घाटी काफी महत्वपूर्ण है। 4,300 मीटर की ऊँचाई से ऊपर विशाल हिमशैल हैं। करगिल से सांकू तक मोटर मार्ग है यहीं से रास्ता पिन्जैला पास होते हुये जन्सकार को चला गया है। इस घाटी में प्रमुख शुरू दरिया है। यह दरिया करगिल के पास इन्ड़स नामक नदी में संगम करता है। शुरूरीवर में कई अन्य हिमनद भी आकर मिल जाते हैं। शुरूदरिया का उद्‌गम स्थल पिन्जैलापास के हिमश्रृंग हैं। शांकूब्लाक में वरू, पानीखर, शांकु, परकाची कई गांव आते हैं। इस ब्लाक में भी अधिकतर मुसलमानों की आबादी है। खेती इनका मुख्य व्यवसाय है। करगिल से शांकू करीब 50 किलोमीटर पड़ता है। इस गांव में प्राईमरी हैल्थ सैंटर, हाईस्कूल, पशु चिकित्सालय, फोरेस्ट गार्ड चौकी आदि सरकारी कार्यालय हैं। यहां दो मंजिले मकान होते हैं। दरिया के किनारे दोनों तरफ कई गांव बसे हुये हैं। शुरूघाटी करगिल तहसील में पड़ती है। पिन्जैला पास के दूसरी तरफ से जन्सकार दरिया का उद्‌गम स्थल है जो कि जन्सकार होते हुये लेह तहसील में पहुंच जाता है। गर्मियों के दिनों में स्थानिक लद्दाखी इस मार्ग से भी लेह पहुंचते हैं। पिन्जैलापास से जन्सकार पहुंचने के लिये सिन्मूंडासा, रंगदू, उनेरम आदि पड़ाव आते हैं।

जड़ी-बूटियों की दृष्टि से भी शुरू घाटी स्थानिक आमचियों के लिये उपादेय हैं इस घाटी में अतीस (*एकोनाईटम हेट्रोफाइलम*), कुटकी (*पिक्रोराईजा करूआ*), पाषाणभेद (*सैक्सीफ्रेगा*), रेवन्दचीनी (*रूयूम*), *ससूरिया,* पारषीक यवानी (*हायोसायमस*), सोम (*ईफेड्रा*), *फेरुला, हेरेक्लियम, जुनिपरस, बर्बेरिस, पोडोफिलम,* डियांकू, पांगीतवो, उत्पल, तस्क्या, याकिमों, थरम-नरम, रेदांणी आदि वनस्पतियां उपलब्ध हैं।

3. नुब्रा घाटी

यह घाटी नुब्रा तहसील में पड़ती है। नुब्रा जाने के लिये लेह जिला मुख्यालय से खरदुंगाला पास पार करके पहुंचना पड़ता है। खरदुंगाला पास की ऊँचाई 5,600 मीटर है। यह संसार का सबसे ऊँचाई वाला मोटर मार्ग है। नुब्राघाटी की सीमायें तिब्बत एवं चीन के हिमश्रृंग बनाते हैं। लेह से खरदुंगाला 50 किलोमीटर है। पास को पार करने पर नुब्राघाटी प्रारम्भ हो जाती है। यह घाटी 2,600 मीटर से 5,000 मीटर से अधिक ऊँचाई तक चली गई है। इस क्षेत्र का मार्ग बहुत कठिन एवं छोटा है। इस क्षेत्र में याक द्वारा सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। अन्य घाटियों की अपेक्षा यह घाटी हरियाली एवं सुन्दरता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस घाटी में श्योक दरिया बहता है जिसका कि तिब्बत एवं चीन के हिमश्रृंगों से उद्‌गम होता है। दूसरा दरिया नुब्रा दरिया है। ये दोनों दरिया अन्य हिमनदों का जल लेकर अन्त में इन्ड़स में मिल जाते हैं। नुब्राघाटी में पनामिक नामक स्थान प्रमुख है। पनामिक में ब्लाक-कार्यालय, चिकित्सालय, प्राईमरी हैल्थसेंटर एवं हाईस्कूल है। थारखण्ड मार्ग पर गन्धक वाले उष्ण जल स्रोत हैं। इन गर्म जल स्रोतों (हौटस्प्रींगस्) में कई किस्म के लवण (साल्ट) पाये जाते हैं। खनिजों में टंकण (वोरेक्स), गन्धक (सल्फर) चोंजी आदि उपयोगी लवण यहां पाये जाते हैं। इस घाटी में खालसर, डिसकित, हुन्द्रार, प्रतापपुर, टुरटुक आदि ग्राम है। श्योग एवं नुब्रा दरिया डिसकित के पास आपस में मिल जाते है।

इस घाटी में मध्यम आकार के वृक्ष सैलीक्स, पौपुलर, उम्बू, आमील (हीपफोपी) आदि गुल्म पाये जाते हैं। अखरोट, खुमानी, सेव के बगीचे हैं। नुब्राघाटी में भी कई किस्मों की तिब्बती चिकित्सा में उपयोगी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वनस्पतियां पाई जाती है। इस घाटी का भी वनौषधियों की दृष्टि से विशेष महत्व है। नुब्रा का शब्दिक अर्थ है कि नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर।

4. जन्सकार घाटी

यह घाटी जन्सकार तहसील में पड़ती है। इस क्षेत्र में जाने के लिये करगिल, सांगू, परकाजी होकर जाना पड़ता है। जन्सकार घाटी पहुंचने के लिये पिन्जैलापास को पार करना पड़ता है। मार्ग में शुरू घाटी आती है। पिन्जैलापास की दूरी तय करने पर सिनमूडोसा, रंगदू, उनेरम आदि स्थान जन्सकार पहुंचने पर पड़ते हैं। जन्सकार पहुंचने हेतु मोटर मार्ग का निर्माण कार्य प्रारम्भ है। जन्सकार हिमालय की सीमायें लाहुलस्पीती हिमाचल प्रदेश के हिमशैल बनाते हैं। यह घाटी 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 5,600 मीटर की ऊँचाई तक चली गई है। इस घाटी में खनिज, लवण युक्त ऊष्ण जल के स्रोत (हौटस्प्रींगस्) पाये जाते हैं। जड़ी बूटियों एवं खनिजों की दृष्टि से भी जन्सकार घाटी काफी महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक मठ (मोनेस्ट्री) करश्योंग गोन्पा जन्सकार तहसील में हैं। यहां के लामागुरू प्रायः ल्हासा तिब्बत से आते हैं। यहां पर भी काफी लद्दाखी बौद्ध धर्म के लोग बसते हैं। मुसलिम धर्म के भी लोग यहां पर हैं। मुनकुन पीक इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण हिमशैल है। जन्सकार दरिया भी अन्त में ईन्ड़स नदी में मिल जाता है।

5. ईन्डस घाटी (लेह रेंज)

यह सबसे आबादी वाली घाटी है। इस घाटी के दोनों तरफ 80 प्रतिशत आबादी बसती है। इन्ड़स घाटी के ऊपरी भाग में बौद्ध धर्मानुलम्बी एवं करगिल तहसील में दरदी तथा बालती मुसलमान बसते हैं। मुसलिम आबादी में सिया एवं सुन्नी दोनों धर्मो के लोग हैं इसी घाटी में चुमाथांग (न्यूमा) तहसील एवं पूगाघाटी, शोकरलेख, टंगलंगला पास आदि मुख्य स्थान आते हैं। रुपसू एवं पूगाघाटी टंकण (वोरेक्स), गन्धक (सल्फर) एवं उष्णजल के लिये विश्वविख्यात है। चुमाथांग से ही इन्ड़स (सिंगेरववाव) नामक नदी प्रवाहित होती है। इसका शाब्दिक अर्थ है सिंह के मुख से प्रवाहित होने वाली नदी इसको सिन्धु भी कहा है। इस घाटी का सबसे अन्तिम गांव धमजोंग है। धमजोंग को न्यूमा ब्लाक से पैदल-चलने पर चार दिन लगते हैं। न्यूमा से चिशूल करीब 90 किलोमीटर है। इस घाटी में कई सुन्दर झीले हैं सबसे प्रसिद्ध एवं विस्तृत झील चिशूल लेख है। जिसका आधाभाग तिब्बत में है। रुपसू करजोग आदि स्थानों पर भी गन्धक के पहाड़ है तथा उष्ण जल के स्रोत है। रुपसू की ऊँचाई लगभग 15 हजार फिट समुद्र तल से है। लेह से पूगाघाटी एवं चुमाथांग लगभग दो सौ किलोमीटर है चुमाथांग तक मोटर मार्ग है। इस क्षेत्र में कई सल्फर के झीलें (लेक) हैं। खनिजों के लिये यह घाटी प्रसिद्ध है। इन्ड़स नदी में सोना भी पाया जाता है। इस घाटी में प्रायः बौद्ध धर्मावलम्बी है। स्त्री एवं पुरूष दोनों सिर के बाल रखते हैं। ये स्त्री पुरूष सिर के बालों का चोटा बना कर रखते है। बहुपति प्रथा यहां पर विशेष रूप से विद्यमान है। शीत अधिक होने पर बकरी की खालों का वस्त्र बनाकर पहनते हैं। पशमीना बकरी एवं भेड़ पालन इनका मुख्य व्यवसाय है। समस्त घाटी में गेहूं एवं जौ की फसल होती है। प्रत्येक गांव में स्थानिक चिकित्सक (आमची) होता है। जो कि स्थानिक जडी-बूटियों से परम्परागत चिकित्सा करता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पूगाघाटी में गंधक निकालने का पहला कारखाना

भू-उर्जा सम्पदा (जिओथरमल ऊर्जा) की खोज 1880 के आसपास प्रारम्भ हुई थी किन्तु इस पर गम्भीर रूप से 1950 के आसपास सोचा गया। आज इटली, उत्तरी अमेरिका, न्यूजीलैण्ड, मैक्सिको, जापान तथा रूस इसे विकसित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। आंणविक एवं कोयले की ऊर्जा की अपेक्षा जिओथरमल ऊर्जा पाँच गुनी सस्ती है।

पृथ्वी के गर्भ में विभिन्न खनिज है कुछ खनिज रेड़ियोधर्मी भी है। रेड़ियोंधर्मी खनिज के क्षय से एवं भूवैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा यह ऊष्मा पृथ्वी की सतह की ओर उन्मुख होती रहती है, और यह प्राकृतिक ऊष्मा चट्टानों के द्वारा भौम जल में प्रविष्ठ हो जाती है। कभी-कभी जहां भौम जल का दबाव, तापक्रम की अपेक्षा कम हो जाता है तो गर्म झरने फूट जाते हैं। इसके साथ भाप भी निकलती है जो कि चट्टानो की दरारों या रन्ध्रों से बाहर निकलती है, और इसे बिजली में परिवर्तित किया जा सकता है। सन् 1966 में भारत सरकार ने हौटस्प्रिंग द्वारा लद्दाख के पूगा घाटी आदि स्थानों में जिओथरमल ऊर्जा का विकास किया। इसी आधार पर क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला (आर.आर.एल.) जम्मू ने भूतापीय ऊर्जा का उपयोग करके गंधक निकालने की एक जल तापीय विधि तैयार की है। पूगा घाटी में स्थित गंधक के भंडारों के आसपास यह भूतापीय ऊर्जा का प्रचुर मात्रा में भण्डार उपलब्ध है। गंधक एक सामरिक महत्व का खनिज है। अम्ल, उर्वरक, पैट्रोल, कागज, रबड, रंग का सामान, औषध, विस्फोटक, लौह और इस्पात का निर्माण करने वाले कारखानों में काम आने वाली कच्ची सामग्रियों में यह आवश्यक द्रव्य है। इस समय देश की गंधक सम्बंधी समस्त आवश्यकता अमेरिका एवं अन्य देशो द्वारा विदेशी मुद्रा विनिमय कर मंगाकर पूरी की जाती है। इस विषय में विदशों से करोड़ों रुपये का गन्धक आयात किया जाता है। भारत में लद्दाख की पूगा घाटी ही एक ऐसा स्थान है जहां पर स्फटिक वाली चट्टानों में मूल गंधक विद्यमान है।

गर्म पानी के झरने में लवण (नमक) घुली अवस्था में मिलते हैं। इस पानी के रासायनिक संगठन में सोडियम, मैगनिशियम के सल्फेट, बाईकार्बोनेट तथा क्लोराईड पाये जाते हैं। यदा कदा गर्म पानी में गंधक, वोरेक्स, आयोड़ाईड के अंश भी घुलनशील अवस्था में मिलते हैं। गरम पानी के झरनों के आसपास जो काई जम जाती है इसे सुखाकर लेप बनाकर कर गठियावात में स्थानिक आमची वाह्य प्रयोग करते हैं। लद्दाख के क्षेत्र में कई गर्मपानी के झरने हैं जो हर दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। और इन स्रोतों से ऊर्जा विकसित करने की बहुत सम्भावनायें हैं।

इसी प्रकार लद्दाख की सभी घाटियों में जड़ी-बूटियों (वनसम्पदा) के विपुल भण्डार हैं। स्थानिक आमची परम्परागत चिकित्सा में उपयोगी कई किस्मों की वनस्पतियां इस घाटी में पाई जाती हैं। इस घाटी का प्रमुख स्थान लेह है जो कि लद्दाख जनपद का कार्यालय है। लेह इन्ड़स (सिन्धु नदी) के पास बसा हुआ है। लेह की ऊँचाई समुद्र की सतह से 11,500 फिट है। लेह लद्दाख का जिला मुख्यालय है। लेह में एक मेनाईट चोटी प्रमुख रूप से दिखाई देती है। लेह व्यापारिक एवं राजनैतिक केन्द्र है। लेह में कई पुराने राजमहलों के खण्डर आज भी विद्यमान हैं जो कि 16वीं शताब्दी के बने हुये हैं। लेह का सबसे पुराना महल पहाड़ की चोटी पर है। जिसे स्तेमोनामग्याल फोटाई कहते हैं। इस महल को महाराज ताशी नामग्याल ने बनवाया था। इस

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

समय यह महल खण्डर के रूप में दिखाई देता है। लेह का बाजार 1834 से 1842 के युद्ध के बाद डोगरों ने बनवाया था। पोलो खेल का सुन्दर मैदान भी यहां स्थिर है। ऐसा माना जाता है कि पोलों खेल लद्दाख से ही भारत तथा विश्व के दूसरे भागों में गया है। भारतीय सेना का मुख्य कार्यालय भी यहां पर हैं। भारतीय सेना के जवान वीरान पहाड़ी सीमा प्रदेशों की सुरक्षा में रात्रि-दिन सेवारत हैं। शीतऋतु में सम्पूर्ण सिन्धुनदी का पानी जम जाता है। ऊपरी भाग में बर्फ पड़ जाती है। इसके ऊपर से चल सकते हैं लेह का बाजार छोटा है जिसके दोनों ओर एवं छोटी-छोटी गलियों में बाजार लगता है। लद्दाखी वस्तुओं की विशेष दुकानें हैं। लेह में बौद्धमठ, मस्जिद, मन्दिर सभी धर्मो के धार्मिक स्थल हैं। चित्रकला के लिये लेह लद्दाख विश्वविख्यात है। यही तिब्बतीय चिकित्सा प्रणाली का आमची केन्द्र है। आमची एसोसियेशन के अध्यक्ष विधानसभा के सदस्य श्री कशुक वकुला हैं। प्रकृति के अधिक निकट रहने के कारण लद्दाखी लोग बहुत हंसमुख, ईमानदार एवं शान्त स्वभाव के होते हैं। लेह से एक मार्ग नुब्राघाटी को चला गया है तथा दूसरा मार्ग इन्ड़स नदी के किनारे-किनारे चुमाथांग, पूगाघाटी एवं लाहुलस्पीती को चला गया है।

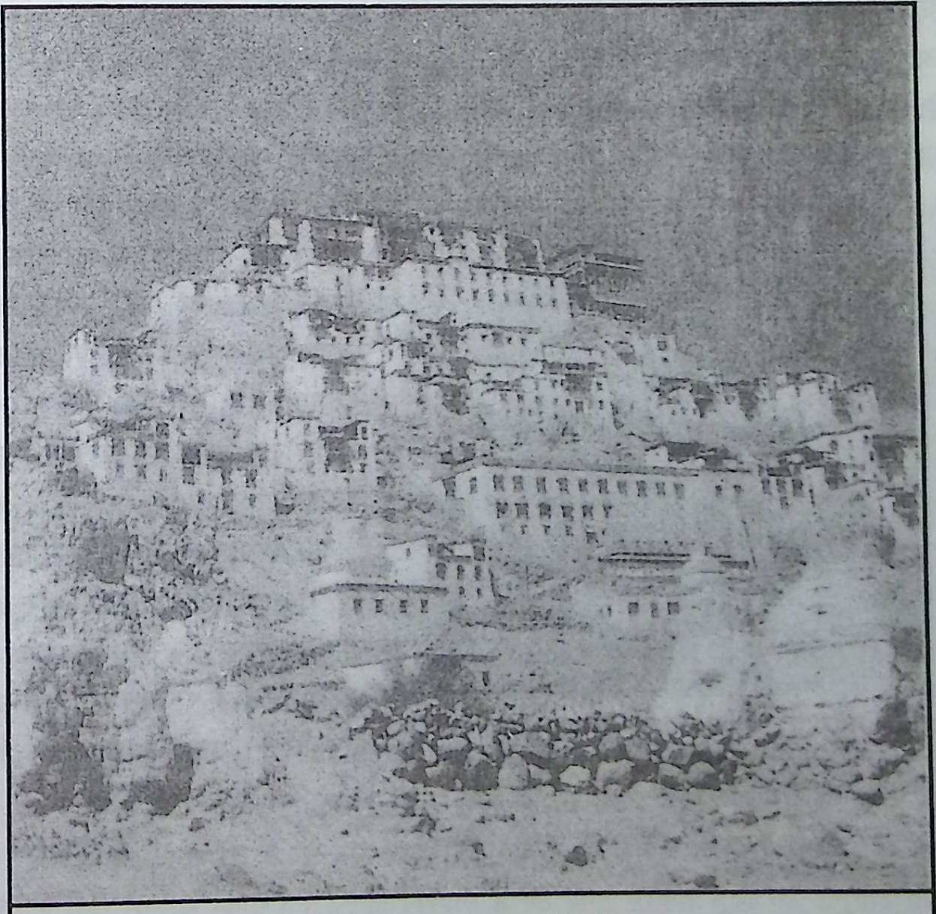

लद्दाख में स्थित थिकसे मठ (मोनेस्ट्री) का दृश्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख की परम्परागत आमची चिकित्सा प्रणाली

लद्दाख का अपना पृथक आयुर्वेद है। वैद्य को लद्दाखी भाषा में आमची कहा जाता है। आमची को गुरु-शिष्य प्रणाली से पढ़ाया जाता है। इसके लिये अलग से कोई मान्यता प्राप्त विद्यालय नहीं है। प्रायः जिस परिवार में आमची होता है, उसके पुत्र को आमची (चिकित्सा) का प्रशिक्षण दिया जाता है। आमची का समाज में अधिक सम्मान होता है। आमची (तिब्बती) चिकित्सा-प्रणाली शताब्दियों से लद्दाख में प्रचलित है। लद्दाख में इस चिकित्सा प्रणाली का प्रचलन लोटसावारिंचन जंगपो ने दसवीं शताब्दी में किया था लोटसावारिंचन एक महान दार्शनिक थे। ऐसा माना जाता है कि सातवीं शताब्दी में आमची चिकित्सा तिब्बत से लद्दाख पहुंची और गुरु-शिष्य प्रणाली से सम्पूर्ण लद्दाख में इस चिकित्सा का प्रचलन बढ़ता गया। लद्दाखियों का पूर्ण विश्वास है कि यह निरापद चिकित्सा है। आज भी कतिपय हस्तलिखित दुर्लभ पाण्डुलिपियां यहां के बौद्धमठों (गूम्पाओं) एवं स्थानिक आमचियों के पास सुरक्षित है। अधिकतर ग्रंथ आयुर्वेदिक संहिताओं पर आधारित है। भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म के साथ-साथ आयुर्वेद का भी प्रसार किया। तिब्बत के ल्हासा नामक स्थान पर प्रसिद्ध लामा चनंग रिम्पोछे एवं चौखंडम्पा रिम्पौछे ने महायान का अध्ययन किया उसके बाद आयुर्वेद का अध्ययन किया। इन्होंने भारतीय आयुर्वेद के विद्वान नागार्जुन, वसुबन्धु, धर्म-कीर्ति, दिङ्नाग, शान्तिदेव, ज्ञानप्रभु, शक्यदेव, शान्तरक्षित आदि अद्वितीय विद्वानों की कृतियों का भी तिब्बती एवं भोट भाषा में तेवचन नामक स्थान पर अनुवाद किया।

सम्राट स्त्रोङ् चन गोम्पे तिब्बत के महाप्रतापी राजा थे। इन्होंने सन् 630 ई. से 698 ई. तक तिब्बत पर राज किया। वह अपने पिता की मृत्यु के बाद 13 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा, और उसने अइछु नदी के किनारे ल्हासा नगर बसाया तथा यहाँ एक पर्वत पर अपना राजभवन बनाया। राजा ने युवा होने पर बड़ी भारी सेना लेकर नेपाल एवं चीन पर आक्रमण कर इन प्रदेशों के कुछ हिस्सों को तिब्बत में मिला लिया। स्त्रोड्चन गोम्पे ने नेपाल एवं चीन की राजकुमारियों से विवाह कर लिया, दोनों राजकुमारियां बौद्ध धर्मावलम्बी थी जिसके परिणाम स्वरूप राजा ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद सम्राट डिस्त्रोड्चन

स्थानिक आमची के साथ वनौषधि सर्वेक्षण दल का सामुहिक चित्र

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नामक राजा ने नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य शान्तिरक्षित को बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ बुलाया। ये लगभग 724 ई. में ल्हासा पहुंचे तथा आचार्य के उपदेशों का इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। तिब्बत में बौद्ध धर्म से पूर्व बोन नाम का धर्म प्रचलित था ये पर्वत, नदी सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, भूत-प्रेत एवं देवी-देवताओं की पूजा करते थे तथा यन्त्र, मंत्र एवं जादू-टोना पर विश्वास करते थे। आचार्य शान्तिरक्षित के परामर्श के अनुसार राजा ने पद्म सम्भव को बुलाया तथा पद्मसम्भव ने यन्त्रबल से तिब्बत के सभी देवी, देवताओं, डाकिनी, योगिनी एवं भूत, प्रेत आदि को परास्त कर दिया। इसके अतिरिक्त आर्य देव, बुद्धकीर्ति कुमार, श्रीकर्णपति, सूर्यध्वज ओर सुमर्तिसेन आदि अनेक भारतीय विद्वानों ने तिब्बत में जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। यह क्रम सातवीं शताब्दी से लेकर ग्यारवीं शताब्दी तक रहा। परन्तु इन सब में शान्ति-रक्षित, पद्मसम्भव और दीपकर श्री का अधिक प्रभाव रहा। इसी तरह समय-समय पर तिब्बत में भी परिवर्तन होते रहे तथा अबिलोकितेश्वर को बुद्ध का अवतार घोषित कर दिया। तिब्बतियों ने इसे स्वीकार कर लिया। दलाईलामा की उपाधि इनको पहले ही मिल चुकी थी। तिब्बत में जितने भी अवतार हुये वे सभी दलाईलामा के नाम से प्रसिद्ध हुये हैं। तिब्बतियों का विश्वास है कि दलाईलामा बुद्ध के अवतार हैं। वर्तमान चौदवें दलाईलामा तिब्बत के उत्तर में चीन की सीमा के पास रहने वाले एक किसान के लड़के हैं। दलाईलामा सन् 1954 में तिब्बत पर चीन का अधिकार होने के कारण ल्हासा छोड़कर तवांग मार्ग से भारत आ गये और भारत में रहने लगे। भारत सरकार ने दलाईमामा को शरण दीकर एवं उन्होंने हिमांचल प्रदेश के धर्मशाला, मकलोड़ गंज नामक स्थान का निवास हेतु चयन किया। आज भी यहां पर बौद्ध मठ (मौनेस्ट्री) एवं तिब्बतियन मेड़िकल रिसर्च सेंटर, तिब्बतियन मेडिकल कालिज एवं फार्मेसी स्थापित हैं। इस केन्द्र में तिब्बतियन, लद्दाखी, सिक्किमी, बौद्ध धर्मावलम्बी छात्र औषधि-शास्त्र का अध्ययन करते हैं।

तिब्बत, मंगोलिया, चीन आदि प्रदेशों में आयुर्वेद विज्ञान के प्रसार का मूल कारण भारतीय बौद्ध धर्म के प्रचार के द्वारा ही है। आयुर्वेद-शास्त्र को भगवान बुद्ध ने उपदेश देकर प्रख्यात किया होगा। यह भी सम्भव है कि भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को जो चिकित्सा सम्बन्धी उपदेश दिये उन उपदेशों को इनके शिष्यों ने चार तन्त्रों में विभक्त कर दिया हो, जो कि चतुस्तन्त्र के नाम से विख्यात है। स्वंगा गुदसी नामक तन्त्र को तिब्बत में सर्वोपरी मान्यता मिली है। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग ने अपने भारत यात्रा काल में यह स्पष्ट किया है कि तिब्बत में बौद्ध चिकित्सा-विज्ञान का पर्याप्त प्रसार है। उस काल में तिब्बत के अतिरिक्त चीन, वर्मा, मलेशिया, मंगोलिया, जापान, आस्ट्रेलिया आदि कतिपय देशों में भी आयुर्वेद का प्रसार हुआ है।

आज भी तिब्बत में भारतीय चिकित्सा-विज्ञान के कतिपय ग्रंथों का अनुवाद तिब्बती लिपि में है। जिसमें सिद्धं नागार्जुन, जीवसूत्र, योगशतक, वागभट्ट की अष्टांगहृदय संहिता, वैद्यकसिद्धसार, महौषधिबल, शालिहोत्रकृत अश्ववैद्यक आदि कतिपय मुख्य ग्रंथ है। तिब्बतीय भैषजों का उपयोग बुरजात, तग्युत, जांगखा, भोटिया, तग्युत, लेपचा ठोकपा आदि ने किया एवं हिमालय की उपत्यकाओं में बसने वाली जनता ने किया। जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान जुलियन जोली 1901 के अनुसार तिब्बतीय चिकित्सा शास्त्र अधिकतर भारतीय चिकित्सा विज्ञान पर आधारित है ऐसा उल्लेख किया है। इनका विश्वास है कि प्रायः संस्कृत सूत्रों का अनुवाद तिब्बतीय लिपि में किया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सम्पूर्ण लद्दाख में पारम्परिक तिब्बती चिकित्सा का विशेष प्रचलन है। यह चिकित्सा तिब्बतीय चिकित्सा प्रणाली पर आधारित है। लेह-लद्दाख में इस चिकित्सा को करने वाले आमची 200 से भी अधिक हैं जो कि लेह, क्यारी, नुब्रा, जन्सकार, तारु मंग, कोरजोंग, शेगु, हुनडर, तिमिशांग, हेमिस, सावुफे, लिकर, खरनक, रिकशे आदि ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा करते हैं। मुख्य आमची गरूमित नभग्याल, रिपजिन, सोनमदोजी, पदमदोजी, सोन नमग्याल, उरग्यानचोस्पल, सोनम, रिगति, फुसोंग चोसपल, योगेचिनडालमा आदि कतिपय आमची पारम्परिक एवं गुरुशिष्य प्रणाली से चिकित्सा करते हैं। चिकित्सा सामग्री में आमची स्थानिक जड़ी-बुटियाँ, खनिज एवं जान्तव द्रव्यों का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त शिरोधारा, अग्निकर्म एवं रक्त-मोक्षण आदि विधियों द्वारा भी रोगोपचार करते हैं। लद्दाख में जिन विधियो द्वारा चिकित्सा की जाती हैं वे जो कि इस प्रकार से है।

1. प्राकृतिक गन्धक (सल्फर) एवं अन्य खनिज लवणों के जल स्रोतों के जल द्वारा शिरोधारा एवं स्नान
2. दहन कर्म (अग्निकर्म) विधि द्वारा चिकित्सा। (इस जनपद की यह सफल चिकित्सा विधि है)
3. रोग की अवस्था के अनुरूप रक्तमोक्षण (सिरावेध) द्वारा चिकित्सा।
4. तन्त्र-मन्त्र विधि द्वारा चिकित्सा।
5. जान्तव द्रव्यों द्वारा चिकित्सा।
6. सूचिवेध (एक्यूपंक्चर) विधि द्वारा चिकित्सा।
7. जड़ी-बूटियों एवं खनिजों द्वारा चिकित्सा।

1. प्राकृतिक खनिज एवं गन्धक (सल्फर) आदि जल-स्रोतों के पानी से चिकित्सा

समस्त लद्दाख में प्राकृतिक खनिज जल स्रोतों के पानी से अवगाहन (तालाब में बैठे रहना), स्नान एवं शिरोजलधारा का प्रचलन इस क्षेत्र में देखने को मिलता है। जलधारा का प्रयोग स्थानिक आमची पित्तविकार, शिरःशूल एवं नासाविकारों में करते हैं। शिरोधारा में रोगी को सीधा लिटाया जाता है और किसी पात्र से सीधे जल की धारा सिर के ऊपर छोड़ते हैं। इस प्रकार यह प्रयोग स्त्री-पुरूषों में सभी अवस्था में किया जाता है। इस क्रिया के करने पर शिरो गौरव एवं पित्त विकारों में लाभ होता है। लद्दाख के नुब्राघाटी, चूमाथांग एवं पूगाघाटी में गन्धक के जल स्रोतों में स्नान करने से चमड़ी के रोग, कण्डू, दद्रु (दाद) एवं रक्तविकार ठीक होते हैं। लद्दाखी लोग उदर-विकार सम्बन्धी रोगों के उपचार हेतु इन स्थानों पर प्रायः जाते हैं। जल का बाहय एवं आभ्यंतर दोनों रूप में प्रयोग किया जाता है।

प्राकृतिक खनिज जल स्रोतों के जल से शिरोधारा करते हुए

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

2. दहन कर्म (अग्निकर्म) विधि द्वारा चिकित्सा

यह देखा गया है कि अग्नि-कर्म क्रिया वैदिक काल से लेकर बौद्ध काल में अत्यधिक समुन्नत रही है। इस क्षाराग्नि कर्म को मोक्षिवंक्षण भी कहते हैं। लद्दाख में अग्नि कर्म (दाग लगाना) में स्थानिक लोगों का अधिक विश्वास है। स्थानिक आमचियों को दहनकर्म हेतु गुरु-शिष्य प्रणाली द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कर्म हेतु स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह शलाकाओं का प्रयोग किया जाता है। सन्धिशूल, शिरोरोग, यकृतविकार, उदरशूल, आमवात, पक्षाघात आदि कतिपय रोगों पर अग्निकर्म (दाग लगना) किया जाता है। दहनकर्म में जिन उपकरणों का उपयोग किया जाता है, उसमें मेरदन, तोरमें, चऊ आदि मुख्य हैं। इन उपकरणों के सहयोग से रोगग्रस्त भाग पर दाग दिया जाता है। सुश्रुत संहिता में अग्निदग्ध का विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है, जिसकी साम्यता आमची चिकित्सा के दहनकर्म से है।

जो रोग औषध-चिकित्सा से ठीक नहीं होते हैं उनमें दहन कर्म किया जाता है। अग्निकर्म करने से रोगों के पुनः पैदा होने की सम्भावना कम रहती है । हिमदग्ध (कोल्ड कार्टरी) भी कुछ अवस्थाओं में किया जाता है।

लद्दाख क्षेत्र में सुश्रुत विधि द्वारा विविध रोगों की चिकित्सा में अग्निकर्म

यदि हम गम्भीरता पूर्वक आयुर्वेदीय चिकित्साशास्त्र का अवलोकन करें तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि आयुर्वेदीय औषध, शस्त्र, क्षार, जलौका एवं अग्निकर्म आदि चिकित्सा विधियां वैदिक काल से लेकर बौद्ध काल में भी अत्यधिक उन्नत एवं विकसित रही हैं। उस काल में भी विश्व के वैज्ञानिक भारत में आकर भारतीय चिकित्सकों द्वारा इन विधियों में विशेषज्ञता प्राप्त कर संसार में भारतीय चिकित्सा पद्धति की उज्जवलकीर्ति का यशोगान एवं चिकित्सा चमत्कार करते थे। आज इस तथ्य को विशेषकर "विश्व स्वास्थ्य संगठन" (W.H.O.) भी यह स्वीकार करने लगा है कि भारतीय वैज्ञानिक आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति मात्र परम्परागत नहीं है बल्कि हजारों वर्षों की प्रयोगात्मक योजनाओं का सारभूत विज्ञान है। आचार्य सुश्रुत ने शस्त्र, क्षाराग्नि कर्मों द्वारा चिकित्सा करने वाले विशेषज्ञों को धन्वन्तरि सम्प्रदाय से जोड़ा है। सुश्रुतकाल में भी दहन कर्म (अग्निकर्म) एवं क्षार कर्म क्रियाओं में क्षारकर्म की अपेक्षा अग्निदग्ध को उत्तम माना गया है। क्योंकि अग्निकर्म द्वारा ठीक किये गये रोगों की फिर से उत्पत्ति नहीं होती है। जो रोग औषध, शल्य (सर्जरी) एवं क्षार कर्म से ठीक नहीं होते, वे भी अग्निकर्म द्वारा ठीक हो जाते हैं क्योंकि अग्निकर्म द्वारा व्रणों में पाक (सैप्टिक) का भय नहीं रहता है एवं जीवाणुओं के संक्रमण का भी भय नहीं रहता है। यथा :

अग्नितप्तेन शस्त्रेण छिन्द्यात्, अन्यथा अग्नितप्त शस्त्र छेदने बिना पाक भयं स्यात्। *(सुश्रुतः)*

अग्निकर्म करने से स्थानिक सिराओं का संकोच हो जाने से रक्तस्राव नहीं होता है तथा व्रण का रोहण शीघ्र हो जाता है। यथा :

दाह संकोचयेत् शिराः। *(सुश्रुतः)*

आधुनिक चिकित्सा में यह क्रिया विद्युतप्रवाह एवं विद्युतदहन द्वारा की जाती है। प्राचीन काल में अग्निकर्म चिकित्सा स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह, गोदन्त एवं जड़ी-बूटियों द्वारा की जाती थी, जिसका उपयोग आज भी लेह लद्दाख के सीमान्त तथा ग्रामीण आदिवासी क्षेत्रों में किया जाता है। लेखक ने लद्दाख क्षेत्र में कार्यरत

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परम्परागत आमचियों (वैद्यों) से इस विषय में कतिपय महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त की हैं तथा यह देखा गया है कि बौद्ध धर्मावलम्बियों एवं लद्दाखी जनता में इस चिकित्सा पद्धति के प्रति गहरी निष्ठा है। स्थानिक परम्परागत चिकित्सक हिमदग्ध (बर्फ) द्वारा भी रोगों का उपचार करते है जिसे कोल्ड कार्टरी कहते हैं।

विविध रोगों में अग्निकर्म

यह देखा गया है कि निम्न रोगो में अग्निकर्म चिकित्सा काफी कारगर है, जिनके नाम इस प्रकार से हैं। मूढगर्भ, भगन्दर, अर्श, दुष्टव्रण (अर्थात जिन व्रणों का मांस उभर गया हो, कठोर एवं लुप्त हो गया हो), ग्रन्थी, अर्बुद, अपची, चर्मकील, आन्त्रबृद्धि, नाड़ीव्रण, अश्मरी, वातनाड़ीजन्यवेदना, पक्षाघात, वातव्याधि, नेत्रविकार, उदर एवं यकृतशूल, मुख के रोगों आदि विकारों में अग्निकर्म चिकित्सा उपयोगी है। नेत्र रोगों मे भी ललाट और शंखप्रदेश में दहन कर्म क्रियायें लाभदायक हैं।

अग्निकर्म में उपयोगी उपकरण

1. धातु :- स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह आदि धातुओं से निर्मित शलाका।

2. जान्तव एवं वानस्पत्य द्रव्य :- गोदन्त, घृत, स्नेह-पदार्थ, मधु, बकरी की सींगिया, वत्सनाभ आदि औषध द्रव्य

अग्निदग्ध के प्रकार

सुश्रुत विधि द्वारा निम्न प्रकार के भेदों से दोष संचय वाले स्थानों में दहन कर्म किया जाता है ।

1. कंकण के समान गोल :- ○○○○○
2. बिन्दु सदृश :- • • • • •
3. विलेखा :- \/\/\/\/
4. प्रतिसारण :- ═══
5. अर्धचन्द्र एवं स्वास्तिक :- ◡ ◡ 卐 卐

कुछ ग्रंथकारों ने अर्धचन्द्र, स्वास्तिक एवं अष्ठापद भेद से दग्ध के प्रकारों का उल्लेख किया है

"तत्र विलय बिन्दु विलेखा प्रतिसारणानीति दहन विशेषा" *(सु. सू. अध्याय 12)*

अग्निदग्ध चिकित्सा में उपयोग स्थानिक उपकरण

दहनकर्म विधि

स्थानिक आमची भिन्न-भिन्न रोगों में स्थान भेद से दहन कर्म (दाग देना) करते हैं। इस विधि का प्रचलन गुरु-शिष्य प्रणाली से आज भी यहां पर प्रचलित है। इस कर्म हेतु स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह आदि शलाकाओं का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम रोगी को उत्तम प्रकाश में पूर्व की दिशा में मुंह कर बिठाते हैं या रोग के आधार पर लिटा देते हैं। धातुओं से निर्मित भिन्न-भिन्न

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आकार की शलाका को अग्नि में रक्तवर्ण की शलाका तैयार कर दाग दिया जाता है। इन शलाकाओं एवं यन्त्रों को मेरदन, तोरमें कहते हैं। रोगों के आधार पर शरीर में भिन्न-भिन्न आकार के दाग लगाये जाते हैं। जिनमें बलय, बिन्दु एवं अर्धचन्द्र सदृष्य आकार के दाग मुख्य हैं। दाग लगाते समय त्वचा के जलने पर गन्ध एवं चट-चट की आवाज आती है। दाग वाले स्थान पर कोई फफोला नहीं पड़ता है और ना ही दाग वाले भाग में किसी किस्म की मवाद ही पड़ती है। शिरोरोग, नेत्ररोग में भी ये लोग ललाट एवं कनपटी में दाग देते हैं। सन्धिवात, पक्षाघात आदि वातिक विकारों में घृत को आग में बर्तन के ऊपर खौलाकर उसमें वत्सनाभ (मीठा विष) डाल देते हैं और इसे चिमटी से पकड़ कर समुचित स्थान को दग्ध किया जाता है। इसी प्रकार तूत, रेशम, कौशेय, घृत, स्नेह, गोदन्त आदि द्रव्यों द्वारा स्थान, रोगी के देश, काल एवं बल के अनुसार दहन कर्म किया जाता है।

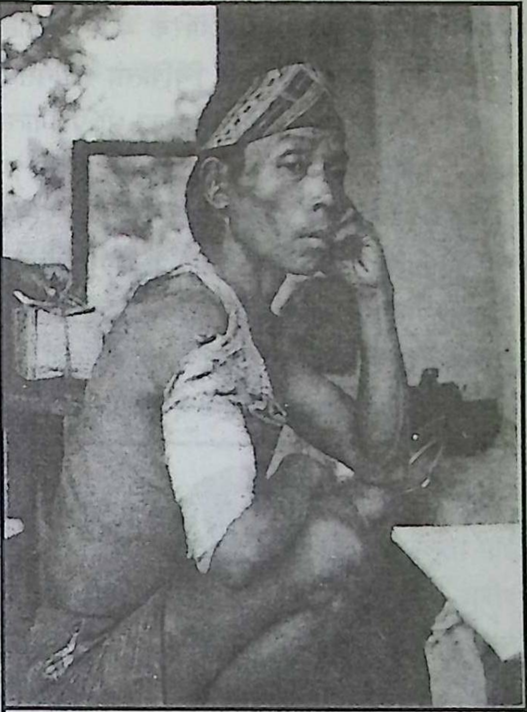
आमची द्वारा दहनकर्म चिकित्सा

त्वग् दग्ध के लक्षण

चड़-चड़ शब्द का होगा, वेदना का कम होना, त्वचा में संकोच का होना, पीड़ा का ना होना समदग्ध समझना चाहिए। यथा:

"शब्द प्रादुर्भावों दुर्गन्धिता, त्वक् संकोश्च" *(सुश्रुतः)*

मांसदग्ध होने पर त्वचा का कपोत वर्ण का होना, शोथ होना, वेदना का होना एवं व्रण का संकुचित होना मांसदग्ध समझना चाहिये। सम्यग् दग्ध होने पर दग्ध वाले स्थान पर घृत एवं मधु मिलाकर लेप लगाना चाहिये। इसके साथ ही सम्यग् दग्ध की अवस्था में वंशलोचन, गूलर की छाल, लाल चंदन, सोनागेरु, गिलोय आदि द्रव्यों को महीन पीस कर घृत के साथ लेप करने से दाह की शान्ति होती है। मांसदग्ध होने पर जात्यादि घृत या घोड़ा, वाराह, कच्छप आदि का मांस पीसकर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

निषेध

पित्त प्रकृति वाले व्यक्ति, रक्तपित्ती, अतिसार, बालक, वृद्ध, डरपोक, गर्भिणी आदि के शिरा, स्नायु एवं अस्थियों में दहन कर्म नहीं करना चाहिये।

लेखक के विचार से अग्निदग्ध चिकित्सा के लिये क्रियात्मक अनुसंधान कार्य विशेषज्ञों द्वारा चिकित्सालयों में किया जाना चाहिये। **इस चिकित्सा विधि के विकसित करने पर कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी पर भी सफलता प्राप्त की जा सकती है।** जीर्णार्बुद, मांसार्बुद, कर्कटार्बुद (सारकोमा) एवं व्रणों की ग्रेंगीन की अवस्था में अग्निकर्म से सफलता मिलने की अधिक सम्भावना है। शल्य-कक्ष में क्षार चिकित्सा के साथ-साथ अग्नि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर्म चिकित्सा विधि को व्यावहारिक बनाना चाहिए।

3. शिरा-मोक्षण विधि द्वारा चिकित्सा (बिनिसेक्शन)

शिरामोक्षण (बिनिसेक्शन) का भी प्रयोगात्मक प्रचलन लद्दाख में देखा गया है। रक्तदोष, चर्मविकार, भगन्दर, सन्धिवात, वातरक्त आदि रोगों में (श्रृंग) चऊ आदि उपकरणों द्वारा सिरावेघ कर दूषित रक्त निकाला जाता है। लद्दाख में सर्पदंश एवं पागल कुत्ते के काटने पर सिरावेघ कर रक्तमोक्षण किया जाता है। इस विधि की विस्तृत प्रयोगविधि स्थानिक आमचियों के माध्यम से जानी जा सकती है। यह चिकित्सा भी सुश्रुत में वर्णित शिरामोक्षण के समान है। यहां पर आज भी इसका व्यावहारिक प्रयोग है।

4. तंत्र-मंत्र विधि द्वारा चिकित्सा

लद्दाख में ज्योतिषी एवं देवताओं का विशेष महत्व है। ज्योतिषी को लद्दाखी में ओनपो कहते हैं एवं

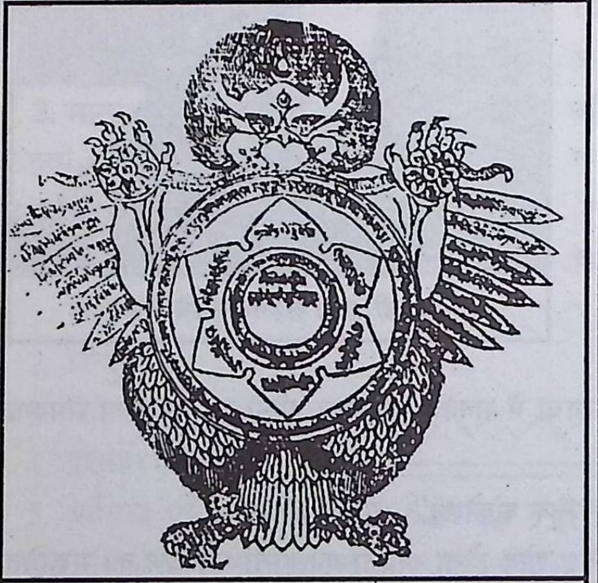

लद्दाख में प्रचलित तांत्रिक यंत्र

लद्दाख में प्रचलित तांत्रिक यंत्र

भविष्य बताने वाले को ल्हवा कहते हैं। आमची के समान ग्रामीण लोग ओनपो का भी सम्मान करते हैं। ये लोग तन्त्र-मन्त्र विधि द्वारा भी रोगों की चिकित्सा करते हैं। देवता (ल्हवा) अपनी मन्त्र शक्ति द्वारा रोगों को बाहर निकाल देता है। ग्रहबाधा एवं भूतबाधा हर कई मन्त्रों का ताबीज बनाया जाता है। इसे धारण करने के लिए या जल में घोंल कर ओनपो पीने को देते हैं। मारण एवं वशीकरण मन्त्रों का प्रचलन लद्दाख में देखने को मिलता है। विविध रंगों के धागों से या हस्तलिखित मंत्र को वेष्ठित कर ओनपो रोगी को देते हैं। यह दैविक चिकित्सा कहलाती है।

5. जान्तव द्रव्यों द्वारा चिकित्सा

स्थानिक आमची शेर, भालू का पित्त, गोरोचन, कस्तूरी, मृगश्रृंग, सूअर की चर्बी, खरगोस, स्नोलैपड, सर्पमांस एवं पक्षियों तथा मानव-पित्त, यकृत, हृदय आदि अवयवों का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। गठियावात (आमवात) में सर्प माँस के शोधन व भावना द्वारा भस्म तैयार करते हैं। यह भस्म पुट पाक विधि द्वारा तैयार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

की जाती है। इस प्रकार कतिपय जान्तव द्रव्यों का तिब्बती चिकित्सा प्रणाली में उपयोग किया जाता है। लद्दाख में प्रचलित कुछ मुख्य योगो जिनमें जानत्व द्रव्यों का समावेश होता है। उनका अगले पृष्ठों में विवरण दिया जा रहा है।

6. एक्यूपंक्चर विधि (सूची वेध) द्वारा चिकित्सा

लद्दाख क्षेत्र के कुछ भागों में योग्य आमची (एक्यूपंक्चर) सूची-वेध करते हैं। यह चिकित्सा विधि चीन में दो हजार वर्ष पूर्व से ही चली आ रही है। इस विधि द्वारा छोटी-छोटी सूईयों को शरीर के विभिन्न हिस्सो में चुभाने वाला इलाज है जो कि कई किस्मों की बीमारियों को ठीक करता है। इन सूइयों को आध इंच से लेकर दो इंच तक लम्बा रखा जाता है। ये सुईयाँ (निडिल) अंग्रेजी वर्ण माला के अक्षर नौ के आकार की बनी होती हैं। यही कारण है कि आज भी अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस जैसे विकसित देशों मे भी इस चिकित्सा पद्धति को अपनाया जा रहा है।

आधुनिक शल्य चिकित्सा में भी मरीज को बेहोश करने हेतु भिन्न-भिन्न स्थानों पर सूची वेध कर संज्ञानाश किया जाता है। पथरी, लकवा, एपैन्डिक्स एवं आंत सम्बधी रोगों में एक्यूपंक्चर द्वारा सफलता पाई गई है। चीन में इस पद्धति का उपयोग परिवार नियोजन में भी किया जाने लगा है। सूचीवेध हेतु मानव शरीर को दांये और बांये दो भागों में विभक्त किया जाता है। इन दोनों हिस्सों में 12-12 यानी कुल 24 मार्ग (चैनल) (जैसे हृदय मार्ग एवं जिगर (यकृत) मार्ग) होते है जिनमें मानव शरीर को गतिमान रखने वाली महत्वपूर्ण ऊर्जा नियमित रूप से पूरे शरीर में प्रवाहित होती रहती है। रोग की अवस्था में इसी ऊर्जा का प्रवाह किसी मार्ग पर कम या अधिक हो जाता है। मानव शरीर में एक हजार से ज्यादा एक्यूपंक्चर बिन्दू हैं। इन्हीं खास बिन्दुओं पर सुईयां चुभाई जाती हैं। अभी तक शरीर के तीन सौ एक्यूपंक्चर बिन्दुओं का पता लगाने में सफलता मिली है। लद्दाख में इस प्रणाली का प्रचलन काफी समय से है। परन्तु यहां पर राज्याश्रय समुचित न होने से इस प्रणाली का यहां पर दिनोदिन ह्रास होता जा रहा है। भारत में भी इस विधि का विकास पिछले दशकों में अधिक हुआ है। संहिता-ग्रंथों में सूचीवेध चिकित्सा का उल्लेख उपलब्ध है। भारत में दमा, खांसी, एक्ज़ीमा सम्बंधी रोगों के उपचार हेतु एक्यूपंक्चर विधि अपनाई जा रही है। जिसके चिकित्सा-परिणाम काफी उत्साहजनक हैं। देश में इस विधि को लोकप्रिय बनाने में रायपुर (म.प्र.) के डाक्टर ए.एल. अग्रवाल को बहुत श्रेय है। उन्होंने इस पद्धति को न केवल आम आदमी तक पहुंचाया बल्कि कई लोगों को इसकी शिक्षा भी दी है। जहां आधुनिक चिकित्सा काफी मंहगी है, उसकी अपेक्षा एक्यूपंक्चर विधि काफी सस्ती है।

"एक्यूपंक्चर" चीन की सुई का कमाल

दो हजार वर्ष से भी पहले चीन में एक चिकित्सा पद्धति पनपी जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की सफलता के बावजूद अपनी जगह बरकरार है। एक्यूपंक्चर नामक यह चिकित्सा पद्धति चीन के रेशम की तरह आज सारी दुनिया में फैल गई है।

छोटी-छोटी सुईयों को शरीर के विभिन्न हिस्सों में चुभोकर किया जाने वाला यह इलाज लगभग तीन सौ तेरह तरह की विभिन्न बीमारियों में काम आता है। लेकिन लगभग सौ बीमारियों में इसकी सफलता असंदिग्ध है। यही कारण है कि आज अमेरिका इंगलैंड और फ्रांस जैसे विकसित देशों में इस चिकित्सा पद्धति

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पर शोध कार्य चल रहे हैं और भारत में भी यह काफी लोकप्रिय हो रही है।

शुरू में चीन में एक्यूपंक्चर काफी पुरानी बीमारियों में सफलतापूर्वक काम आता रहा। सिर दर्द जैसी बीमारियों का यह शर्तिया इलाज माना जाता रहा है। लेकिन धीरे-धीरे इस विधि का एक और लाभ उठाया जाने लगा। आधुनिक शल्य क्रिया में मरीज को बेहोश करना हमेशा से एक समस्या रही है। परन्तु इस पद्धति द्वारा मनुष्य को इच्छित स्थान पर संज्ञा शून्य किया जा सकता है।

पथरी, लकवा, एपैन्डिक्स, आंत संबंधी रोगों में भी एक्यूपंक्चर पद्धति द्वारा सफलता पायी गई है। दमा तथा फेफड़ो की अन्य बीमारियों में एक्यूपंक्चर द्वारा ईलाज तो अब सर्वमान्य है। चीन में इस पद्धति का न केवल प्रसव में बल्कि परिवार नियोजन में भी इस्तेमाल किया जाने लगा है। चीन में इस विधि की सफलता का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि यहां आज ढाई लाख से भी ज्यादा डॉक्टर इस पद्धति में इलाज कर रहे हैं।

एक्यूपंक्चर पद्धति में यह मान कर चला जाता है कि मानव शरीर मुख्य रूप से दो हिस्सों दांये और बांये में बंटा हुआ है। इन दोनों हिस्सों में 12-12 यानी कुल 24 मार्ग (चैनल) होते है। जिनमें मानव शरीर को गतिमान रखने वाली महत्वपूर्ण ऊर्जा का निरन्तर प्रवाह होता रहता है। स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में ऊर्जा नियमित रूप से प्रवाहित होती रहती है। इसी ऊर्जा का प्रवाह किसी मार्ग पर कम या अधिक हो जाता है तो वह रोग का कारण होता है। यह माना जाता है कि मानव शरीर में एक हजार से भी ज्यादा एक्यूपंक्चर बिन्दू हैं। इन्हीं खास बिन्दुओं में सुइयाँ चुभोई जा सकती हैं और तभी इसका लाभ हो सकता है। लेकिन अब तक के तमाम प्रयासों के बाद भी सिर्फ तीन सौ बिन्दुओं का ही पता चल पाया है। एक्यूपंक्चर विधि इन्हीं बिन्दुओं और मार्गो पर निर्भर करती है। किस बिन्दु पर सुई चुभाने से कौन से भाग में ऊर्जा का प्रवाह घटेगा या बढेगा या फिर कितनी सुई चुभाई जाएं ओर कितनी दूर तक यही इस विधि का रूप है। लेकिन कहने सुनने में जितना यह आसान है व्यवहार में उतना ही कठिन है। इस पर दक्षता पाने में वर्षो लग जाते हैं उसके बाद भी गुंजाइस बनी रहती है। पहले पत्थरो को तराशकर सुईयों का आकार दिया जाता था और इनके मुख्यत: तीन प्रकार होते थे वियान शी, चीन शी और फैंन शी। लेकिन यह कला लुप्त हो गई और पत्थरों की बजाय इस्पात की सुईयां बनने लगी।

भारत में इस विधि का प्रचलन और विकास पिछले एक दशक से ही हुआ है। हालांकि इसके पूर्व छिटपुट रूप में यह पद्धति काम में लाई जाती रही। भारत में इसे लोकप्रिय बनाने में रायपुर मध्य प्रदेश के डॉ. ए.एल. अग्रवाल का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

दिल्ली में पिछले वर्षो में इस चिकित्सा ने उल्लेखनीय प्रगति की है। यहां अब यह चिकित्सा पद्धति काफी लोकप्रिय हो गई है। दिल्ली के कई डाक्टरों ने विदेशों में प्रशिक्षण पाने के बाद यहां सफलतापूर्वक मरीजों का इलाज किया है। दिल्ली और इसके आसपास के इलाकों में सौ के करीब एक्यूपंक्चर चिकित्सा केन्द्र खुल गए हैं। दिल्ली में तो एक्यूपंक्चर संस्थान भी हैं लेकिन सरकार की ओर से इसे कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं है।

भारतीय डाक्टरों ने एक्यूपंक्चर के माध्यम से काफी पुराने मरीजों का भी उपचार किया है। कई ऐसी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खबरें मिली है। जिसके अनुसार बचपन से ही रोग ग्रस्त मरीजों को काफी उम्र के बाद इस पद्धति से रोग मुक्त किया गया। दमा आदि जैसे सांस संबंधी रोग, एक्ज़िमा जैसे चर्म रोगों में इस पद्धति से आश्चर्यजनक सफलता पाई गई है।

भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले देश में जहां आम आदमी की आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था तक पहुंच कठिन है एक्यूपंक्चर चिकित्सा पद्धति के उपयोग एवं विकास की काफी गुंजाइश है। इससे भी बड़ी बात यह है कि जहां आधुनिक चिकित्सा विधि काफी महंगी है वहीं एक्यूपंक्चर विधि काफी सस्ती है।

7. जड़ी-बूटी एवं खनिजों द्वारा चिकित्सा

औषध चिकित्सा में चूर्ण, क्वाथ, बटी का प्रचलन लद्दाख क्षेत्र में मिलता है। कतिपय औषध उपयोग की जड़ी-बूटियां एवं खनिज सिक्किम, दार्जिलिंग, भूटान में भी पाये जाते है। भारत के मैदानी भागों में भी पैदा होने वाली वनस्पतियां *त्रिफला, त्रिकटु, पंचकोल, पंचलवण, दशमूल* आदि कतिपय द्रव्यों का उपयोग लद्दाखी आमची अपनी चिकित्सा में करते हैं। इस क्षेत्र की स्थानिक वनस्पतियों में *होंगलेंग, थरम, नरम, द्रोमा, अटूंग, पौंकर, पयश्चवा, फोलोलिंग, चेच्छा, सोलोकारपो, सोलोमारपो, शुक्पा, स्पांचीतवो, डियांकू, तौंगजील, पशाका, खुरचीत, पर्पता, तिक्ता, बौगमर, मानो, रैसकुन, लुगरु मारंपो, लुगरुसरपो, सदनक, कीचे* आदि कतिपय वनस्पतियां औषध उपयोग की हैं।

खनिजों में फौसील्स आदि कतिपय स्थानिक खनिजों का उपयोग आमची करते हैं, जिनमें *शिलाजीत, गन्धक (मुंजी), टंकण (पुल), यप्पाखरा (सोडियम सल्फेट), मेंलचे (जहरमोहरा), दोआछोलो, चोंगी, दोजो, दोरंगिस, फोचूंग, मचूंग* आदि खनिज लद्दाख में उपलब्ध है। जिनका चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इन खनिजों की पहिचान एवं शास्त्रीय नामकरणों की दिशा में अन्वेषण होना अपेक्षित है।

लद्दाख में दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थ एवं आयुर्वेदिक सम्मेलन

स्थानिक आमचियों एवं बौद्धमठों के प्रारम्भिक सर्वेक्षणों से पता चला है कि आज भी कतिपय दुर्लभ हस्तनिर्मित पत्रों पर भोट एवं तिब्बतियन लिपि में कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन दुर्लभ ग्रन्थो का अनुवाद कर इनका प्रकाशन हिन्दी, अंग्रेजी भाषा में केन्द्र एवं राज्य सरकारों को कराना चाहिये। जिन महत्वपूर्ण दुर्लभ ग्रन्थों की जानकारी लेखक को मिली है उसकी सूची निम्न प्रकार है।

1. लंग्थप	**2. सेग्यूत्चेग्युत**	**3. सेमेग्युत**
4. स्मंनग्युत	**5. छलक-चोग्यत**	**6. छलक चुबग्युत**
7. दुश्चीपुंजास	**8. लेकमित्**	**9. रिग्युत जी**
10. लंकथप् फन्देमिग्वो	**11. स्निंगमनपी**	
12. सनलक	**13. सावालनलक्**	

इनके अतिरिक्त चतुस्तन्त्र, महायान एवं हीनयान के कई सौ भाग इस क्षेत्र में सुरक्षित हैं। कतिपय उपयोगी आयुर्वेदिक ग्रन्थ तिब्बतियन लिपि में यहां पर है, जो कि भारत में उपलब्ध नहीं है। लेखक के विचार से वांङ्मय शोध एवं संकलन विभाग को इस पर कार्य करना चाहिये। क्योंकि तिब्बतीय औषधियां एवं चिकित्सा प्रणाली जो कि आयुर्वेद सिद्धांतों पर आधारित है वह इस संसार में अनौखी है। जिस जहर से आदमी मर जाता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वही उपचार के काम में आता है। पारद से तिब्बती चिकित्सा में कैन्सर नाशक गोली तैयार की जाती है। इस गोली में पारद के अतिरिक्त सीसा, गन्धक एवं अन्य किस्मों के खनिज तथा वनस्पतियां हैं। इस औषधि का निर्माण 13 वीं शताब्दी में एक तिब्बती विशेषज्ञ ने किया था। तिब्बती चिकित्सकों का मत है कि यह प्रणाली मूल से भारतीय है जो आठवीं शताब्दी में भारत से तिब्बत गई थी। प्राचीन चिकित्सा प्रणाली के अनुसार उच्च रक्तचाप में नमक तथा मीठी चाय हानिकारक है, तिब्बती चिकित्सा में भी यह सिद्धांत प्रतिपादित है। वात, पित्त, कफ (त्रिदोष) एवं पंच महाभूत सिद्धांत को तिब्बती चिकित्सा स्वीकार करती है। नाड़ी परीक्षा एवं हाथ की अंगुलियों को देखकर, यकृत एवं शाखागत रोगों का निदान आमची करते हैं। इन सभी का उल्लेख तिब्बती ग्रन्थों में विस्तृत रूप से मिलता है।

हिमालय की कतिपय उपत्यकाओं एवं नदी संगमों पर आयुर्वेदिक सम्मेलनों का उल्लेख वैदिक एवं संहिताकाल में उपलब्ध है। वर्तमान-काल से पांच हजार तीन सौ वर्ष पूर्व कैलाश के आसपास ऋषि पुनर्वसु से अग्निवेश, पाराशर, जातुकर्ण, क्षारणि, भेल एवं हारीत ने आयुर्वेद का अध्ययन किया एवं क्रमश: इन ऋषियों ने अग्निवेश संहिता, पाराशर संहिता, जातुकर्ण संहिता, भेलसंहिता, हारीतसंहिता आदि संहिताओं का निर्माण किया। उसी युग में ऋषि पुनर्वसु आत्तेय की अध्यक्षता में कई आयुर्वेदिक शास्त्रचर्चा-परिषदें हुई। इन परिषदों में गम्भीरतापूर्वक आयुर्वेद के मौलिक सिद्धांतों पर विचार किया गया तथा कतिपय महत्वपूर्ण खोजों की उपलब्धि की जाती रही है। इसी आधार पर केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद (भारत सरकार) नई दिल्ली ने इस क्षेत्र में पैदा होने वाली जड़ी-बूटियों एवं खनिजों के पता लगाने हेतु वर्ष 1974 में विशेष सर्वेक्षण योजना प्रारम्भ की है। लेखक को इस दल में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर इन सीमान्त प्रदेशों की वनसम्पदा का पता लगाने में सफलता मिली है। लेखक इस सहयोग हेतु परिषद का हृदय से आभार प्रकट करता है।

जुलाई 1974 में भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होमियोपैथी की केन्द्रीय अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) के वनौषधि सर्वेक्षण दल को इस क्षेत्र की वन संपदा के सर्वेक्षण हेतु नियुक्त किया गया, जिसने कि सफलतापूर्वक इस क्षेत्र में उपलब्ध जड़ी-बूटियों, खनिजों एवं स्थानिक आमचियों से सम्पर्क स्थापित करने से यह निष्कर्ष निकाला कि इन भोट लिपिविदों का अपना पृथक आयुर्वेद है जो कि प्राय: तिब्बती एवं चीन की चिकित्सा-विधि से भी मेल खाता है। यहां पर आयुर्वेद सम्बंधी सभी ग्रंथ तिब्बती (भोट) लिपि में हस्तलिखित पत्रों पर कई संख्या में विद्यमान हैं। चतुस्तन्त्र नामक इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टांग आयुर्वेद की तरह चार विशाल अंगों में विभक्त है।

लद्दाख में प्रचलित उपयोगी औषधयोग

1. शिर:शूल की दवा

सिरमैतोंग (पहाड़ी करैले के फूल), सेवे मैतोंग कारपो (सफेद गुलाब के पुष्प), अरूरा (हरड़) के छिलके इन तीनों को बारीक कपडछन चूर्ण कर पानी में घोट (मिला) कर गोल गोली तैयार करते हैं। दिन में 2 गोली दो या तीन बार देने से अदभुत लाभ होता है। वैद्यों को अपनी चिकित्सा में इस सरल एवं सुलभ योग का प्रयोग करना चाहिये। सभी द्रव्यों को समभाग लेना चाहिये। आवश्यकतानुसार शु. वत्सनाभ 1/10 भाग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मिलाने पर तुरन्त लाभ होता है।

2. कास में उपयोगी दवा

मानु (पुष्कर मूल), पशांका, गीवाङ्ग स्केरपा, चुकांग (वंशलोचन), सींगर (मंजीठ), खन्टा (आमील का घनसत्व) इन सभी को समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण तैयार करते हैं। एक मास से दो मास तक दिन में 3 बार गरम पानी (जल) से देने से कास में लाभ होता है।

3. आठ औषध द्रव्यों का योग

अगेरु (अगरू), जती (जायफल), स्डिगंजीसा (अम्बाडा), चूकांग (वंशलोचन), वुआं (अतीस), रूस्ता अरूरा (हरड़), नागकेशर (सेमल के पुष्प) उपरोक्त द्रव्यों को समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का उपयोग स्थानिक आमची मानसिक विकार, कास, गुमचोट में करते हैं।

4. सेरदोंग स्गंनपा (पांच द्रव्यों का योग)

अरूरा (हरड़) एक पाव, सिसितुंग बीज ½ पाव, इसी के पुष्प एक छटांग, सिण्डू (अनारदाना) ½ पाव, व्रागजून (शिलाजीत) एक छटांक उपरोक्त द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण उदर विकार एवं आन्त्र सम्बन्धी रोगों में उपयोगी है।

5. ठिकचे हुन्यासत (सात द्रव्यों का योग)

कम-च्छिस (वाघ का पित्त), सैरमैन्तोक (करैले के फूल), तुग् मोयूंग (इंद्रयव), वुआं (अतीस) रेलकुत इसको समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण बनाते हैं। अतिसार में दिन में तीन बार 2 से 3 ग्राम की मात्रा देने से यह औषध लाभ करती है ।

6. पालगल कुत्ते के काटने की दवा

मोंजी (खनिज), स्वीतांग (वचा), दोनसत (शु. पिण्डहरताल), स्तवन (घोड़े के पांव का मस्सा), वितींग (सुअर की चर्बी), वुआं नगपो (असीस) इन सबको पीसकर कपड़छन चूर्ण तैयार करते हैं । इस चूर्ण का नस्य पागल कुत्ते के काटे व्यक्ति को देते हैं एवं दंश स्थान पर इसका लेप देते हैं। इस विधि से लाभ होता है। ऐसा स्थानिक आमचियों का विश्वास है।

7. तक्-स्मन्-चुंआ योग

इमोङ (जलधान्यक), तली (तालीस) चोंजीभस्म, पुल (खाने का सोडा) सबको तैयार कर घड़े में डालते हैं। ऊपर से छंग डालते हैं घड़े का मुख बंद कर देते हैं कुछ समय बाद शु. वत्सनाभ, त्रिकटु (छवासुंम) एवं धनियाँ डालते हैं। साथ में जायफल एवं चारों नमक मिला देते हैं। इन लोगों का विश्वास है यह योग अम्लपित्त, उदरविकार (अग्निमांद्य) एवं अजीर्ण की उपयोगी दवा है।

8. दुरची लुरिलकर योग

बनू (दोजो की भस्म) एक पाव, गस्कया (कपूर कचरी) ½ पाव, खुरछा (काला नमक) ½ पाव, तरवू (आमील) ½ पाव पिपलिंग (पिप्पली) ½ पाव इन सभी को पीसकर बारीक कपड़छन चूर्ण तैयार कर लेते है। चूर्ण को पानी के साथ घोंटते रहें, ताकि गोली बनाने योग्य लुगदी तैयार हो जाय। इन गोलियां को सुखाकर रख लेते हैं। अग्निमांद्य, बदहजमी एवं उदरशूल में 2 गोली दिन में 3 बार देते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

9. ठकलो-कुन्सेल

स्पांगची (ब्रह्मकमल) 250 ग्राम, पलेखा (मुस्ता) 125 ग्रा., डुसुम (त्रिफला) 250 ग्रा., मानू (पुष्करमूल) 250 ग्रा., रूस्ता (कूठ) 125 ग्रा., चुकांग (वंशलोचन) 50 ग्राम., सोलोकारपो 50 ग्रा., लिटिस (गुडूची) 150 ग्रा., डिमोक (रतनजोत) 125 ग्रा., ग्यासकित (लाक्षा) 50 ग्रा., चींतांग (मंजीठ) 50 ग्रा., इन सबका कपड़छन चूर्ण तैयार कर स्थानिक आमची उरक्षत, कास, गुमचोट में इस दवा का प्रयोग करते हैं। मात्रा 3 ग्राम से 4 ग्राम दिन में 3 या 4 बार उष्ण जल या दूध से देते हैं।

10. आमवात एवं संन्धिशोथ की दवा

i. आमवात एवं संधिशोथ में स्थानिक आमची द्रम्बू छाल, मानूमूल (पुष्करमूल) इन दोनों द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ तैयार कर दिन में तीन बार 10 एम.एल. रोगी को पिलाते हैं।

ii. वातवेदना में नूरचे (बुरनक) के पत्र, व्रागजून (शिलाजीत), टीतासांजीन (आकाशवेल) आदि औषधि द्रव्यों को एक साथ मिलाकर गोली बनाकर दो गोली दिन में 3 या 4 बार प्रयोग करते हैं।

iii. जोड़ों के दर्द में डियांकू, मानू (पुष्करमूल) दोनों द्रव्यों का चूर्ण चोजी भस्म के साथ मिलाकर देते हैं। मात्रा 3 से 5 ग्राम दिन में 3 बार। डियांकू नामक बूटी लद्दाख में ही मिलती है।

iv. आमवात एवं पक्षाघात में दोरंगिस नामक फोसिल्स (पत्थरों की कण्डरा) का स्थानिक आमची अपनी चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। यह एक किस्म का पहाड़ों का अन्तसार है। दोरंगिस का शाब्दिक अर्थ है पहाड़ों की कन्ड़रा। इस द्रव्य की भस्म तैयार कर एवं व्रागजून (शिलाजीत) के साथ देने से लाभ होता है।

11. जान्तव द्रव्य द्वारा गठियावात की चिकित्सा

गठिया वात और अन्य लूंग प्रधान (वातविकार) रोगों में सर्प को मार कर एवं उससे औषध तैयार कर गठिया रोगों की चिकित्सा करते हैं। इस विधि में सर्प को मार कर उसे बीच से चीर लेते हैं तथा छंग नामक स्थानिक मादक द्रव्य में इसका शोधन करते हैं। शोधित सर्प में कुछ कस्तूरी मिलाते हैं एवं स्थानिक जड़ी-बूटियों के रसों में भावित कर इसे रेत के साथ तवे में या कढाई में गर्म कर देते हैं। इसकी भस्म तैयार कर कुछ औषध द्रव्यों को मिलाकर प्रयोग करते हैं। इन लोगों का अनुभव है कि गठिया वात जैसे रोगों में काफी उपादेय है। इस औषधयोग का प्रयोग नेत्ररोगो दृष्टिनाश पर भी करते हैं। यह योग सेग्युत नामक पुस्तक में है।

डॉ. आशुतोष मजूमदार ने आमवात (गठिया) के रोगों पर आयोजित आठवें सेमिनार में अपने शोध पत्र में बताया कि गठिया रोगों में सर्प विष चिकित्सा के संतोषजनक परिणाम मिले हैं।

11. तिब्बत की औषधीय गोली से कैंसर का इलाज

तिब्बती औषधियां तथा चिकित्सा की प्रणालियां संसार में अनोखी है। जिस जहर से आदमी मर जाता है वहीं उपचार के काम आता है। पारद (पारा) से एक आश्चर्यजनक गोली बनायी गई है जो हर रोग के लिए रामबाण बतायी जाती है। इस गोली में विशुद्ध पारे के अलावा सीसा, गंधक, 15 अन्य धातुऐं व खनिज तथा अन्य चीजें मिलायी गई हैं। इससे कैंसर से लेकर उच्च रक्तचाप, तपेदिक तथा जहर का असर तक ठीक हो जाता है। इस औषधि को सबसे पहले 13 वीं शताब्दी के एक तिब्बती चिकित्सा केन्द्र में इसे बनाया गया। इस

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agamnigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गोली को बनाने में 17 डाक्टरों की सहायता ली गई। गोली में अनेक जहरीले पदार्थ हैं इसलिए उन्होंने पहले स्वयं अपने ऊपर इसकी परीक्षा की और इसे कसौटी पर खरा कसा। इस गोली का इस्तेमाल आसान नहीं है। इसके लिए बहुत सख्त भोजन तथा परहेज करना पड़ता है।

संसार में तिब्बती चिकित्सा प्रणाली ही ऐसी प्रणाली है जिसका तारतम्य गत 2,500 वर्ष में टूटा नहीं है। यह बौद्ध चिकित्सा परम्परा पर आधारित है। इस प्रणाली को बहुत सरल बताया गया है। जिसमें मालिश, ठंडा व गरम सेक, गरम पानी के स्रोतो के जल से उपचार, स्वर्ण सुई उपचार आदि शमिल है। इसमें शल्य चिकित्सा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता।

तिब्बती कर्म सिद्धांत को मानते हैं। वे कहते हैं कि मरीज व चिकित्सा में कर्म सम्बन्ध होता है। साठ वर्षीय डॉ. तेजिन चोड्ग दलाई लामा के निजी डाक्टर हैं। वे 17 वर्ष तक एक तिब्बती जेल में रहे और 1980 में मुक्त हुए। उनका कहना है कि लोग अपने पिछले कर्मों के कारण इस जन्म में फल भोगते हैं। पिछले कर्मों और इस जन्म के कष्टों का आनुपातिक संबंध है। सत्रह वर्ष तक वे जेल में रहे, यातनाएं भुगती लेकिन उन्होंने चीनियों के प्रति कोई रोष प्रकट नहीं किया उन्होंने इसे भी पिछले कर्मों का फल माना।

उनका कहना है कि तिब्बती चिकित्सा प्रणाली मूल रूप से भारतीय है जो आठवीं शताब्दी में भारत से तिब्बत आई। संस्कृत से चिकित्सा साहित्य का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया गया। प्राचीन प्रणाली तिब्बती लोक प्रणाली से मिली और नयी चिकित्सा का जन्म हुआ। नयी प्रणाली में समूचे शरीर तथा मस्तिष्क को लिया जाता है। उचित विचारों भोजन तथा व्यवहार पर पर्याप्त बल दिया जाता है। किसी चीज की अति नहीं होनी चाहिए और सबको संतुलित जीवन बिताना चाहिए। इसके लिए शरीर व मन पर पूर्ण नियंत्रण आवश्यक है। इसके लिए वर्षों तक तपस्या करनी पड़ती है।

प्राचीन चिकित्सा प्रणाली में भी यह स्पष्ट किया गया है कि उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को नमक नहीं लेना चाहिये। उन्हें तनाव मुक्त जीवन बिताना चाहिए उनके लिए पहाड़ों पर भी जाना मना है। विश्वास के अनुसार मन इच्छाओं, राय तथा अज्ञानता से भरा होता है जो वात, पित्त व कफ के रूप में शरीर में विद्यमान रहती है।

तिब्बती प्रणाली से उपचार के लिए हिमाचल प्रदेश धर्मशाला के पास मकलोड़ गंज में केन्द्र स्थापित किया गया है। यहां की एक चिकित्सक श्रीमती लावसांग ने विभिन्न प्रकार के कैंसर रोगियों को ठीक करने का दावा किया है। उसके पास लगभग तीन हजार रोगी उपचार के लिये आयें, जिनमें से अधिकतर रोगी कैंसर से पीड़ित थे। अंग्रेजी व हिन्दी बोलने वाली डॉ. डोलमा का जड़ी-बूटियों, पशु हिड्डियो की भस्म तथा हींग के चूर्ण के उपचार में विश्वास है। उनके अनुसार एलोपैथी से रोगों में नियंत्रण होता है, जब कि तिब्बतीय प्रणाली से उनका उन्मूलन होता है। मिलावटी भोजन तथा विभिन्न प्रकार के टानिकों व रसायनों का सेवन ही कैंसर बढ़ाने के लिए जिम्मेदार है। उन्होंने ल्यूकोडर्मा (श्वित्र) के उपचार की एक औषधि तैयार की है। जो आठ जड़ी-बूटियों से बनाई गई है।

अनेक तिब्बती डाक्टर अब भी परम्परागत विधियां अपनाते हैं। ये नब्ज देखते हैं और मूत्र परीक्षण करते हैं सबके अच्छी तरह से नब्ज प्रात: काल से दस बजे तक खाली पेट देखी जाती है। मरीज ने प्रात:

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लेह जनपद के आमची नाड़ी परिक्षण करते हुए परिलक्षित

कोई कसरत वगैरह न की हो और पूर्व रात को बहुत अधिक भोजन या शराब न ली हो नब्ज से शरीर के हर महत्वपूर्ण अंग की सूचना मिलती है। उन्हें पहचानने का अभ्यास होना चाहिये। 95% रोगों की पहचान नब्ज से तथा शेष 5% की मूत्र परीक्षा से हो जाती है। आमची नाड़ी परिक्षा के साथ त्रिदोष परिक्षा वात (लुंग), पित्त (थीवा) एवं कफ (फैगिन) का निदान करके भी रोगी को औषध देते है।

तिब्बती उपचार पद्धति में कोई भी कृत्रिम रसायन इस्तेमाल नहीं होता है। बताया जाता है कि कतिपय पशुओं के सींग में उपचार के गुण होते हैं। इसी प्रकार हड्डियों, मस्तिष्क, दिल, त्वचा व मूत्र में भी ऐसे ही गुण होते हैं। तिब्बती डाक्टरों के लिए मिर्गी के दौरे कोई समस्या नहीं है। मरीज को रोग लगने के 12 वर्ष के अंदर उपचार मिलना चाहिये और वे शत प्रतिशत ठीक हो जाते है।

पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि तिब्बती चिकित्सा में औषध निर्माण विधि, पंचाविधकषाय कल्पना, चूर्ण, बटी, अवलेह, घृत, तैल आदि कल्पनाओं के सदृश्य हैं। तिब्बती भैषज्य कल्पना में क्वाथ को यंग, बटी को रिलवु चूर्ण को सेछेमा, औषधि साधित मक्खन को स्मंगमर, घनसत्व को खण्डा कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बत में आयुर्वेद का प्रसार

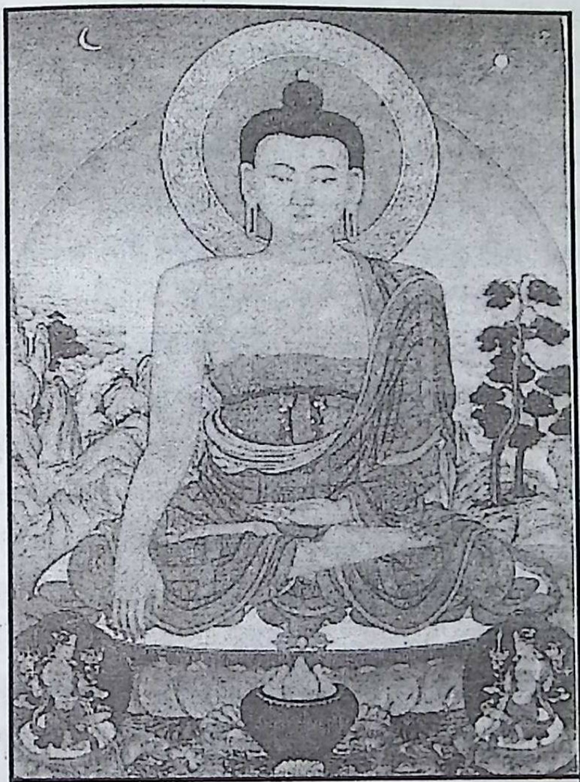

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध

भारतवर्ष में वैदिक आचार्यों ने जिस आयुर्वेदा चिकित्सा-विज्ञान की नींव डालकर उसका व्यापक सर्वांगीण विकास भी कर लिया था, वह भारत में ही नहीं अपितु सारे संसार के प्रायः अन्यान्य देशों में कालक्रम से फैलता हुआ भारतीय चिकित्सा सम्प्रदायाचार्यों का गुणगौरव बढ़ाता ही गया। तिब्बत, जो ईसवी सन् की 7वीं शताब्दी के मध्यकाल से ही भारत का सांस्कृतिक उपनिवेश हो चुका था, बौद्ध संस्कृति के साथ ही भारतीय चिकित्सा-विज्ञान को भी अपने यहां उधार ले गया। वहां बहुत से भारतीय चिकित्सा ग्रन्थ आज भी तिब्बती अनुवाद के रूप में पाये जाते हैं। सिद्ध नागार्जुन के जीवसूत्र तथा अवभेषजकल्प, योगशतक, वाग्भट की अष्ठांग-हृदय संहिता, वैद्यक सिद्धसार, महौषधिबल, आयुर्वेदसार संग्रह तथा शालिहोत्रकृत अश्ववैद्यक आदि कई एक ग्रन्थ इनमें प्रमुख कहे जायेंगे। रसायन तथा रसशात्र के भी बहुत-से ग्रन्थ तिब्बत में उपलब्ध हैं, जिनका यथार्थ स्रोत भारत ही माना जाता है। जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान् एच. लाफर ने अपने खोजपूर्ण ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

तिब्बत में 8वीं शताब्दी में आयुर्वेद के लुप्त ग्रन्थ 'चतुस्तन्त्र' का तिब्बती अनुवाद हुआ था। इसके संस्कृत मूल चतुस्तन्त्र का एक भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, वह सर्वाश में लुप्त हो चुका है और उसके लेखक आचार्यवर्य का नाम पता करना भी आज सर्वथा असम्भव हो चुका है। तभी से भारतीय आयुर्वेद विज्ञान के उत्तमोत्तम ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद होना प्रारम्भ हुआ और वह भी उतनी बड़ी संख्या में कि इन अनुवादों का पूरा-पूरा ब्योरा देना सुलभ भी नहीं और सुखसाध्य भी नहीं है। प्रोफेसर जोहान् नोबेल ने जर्मन भाषा के अपने निबन्ध में महायान बौद्ध सम्प्रदाय के संस्कृत ग्रन्थ 'सुवर्ण प्रभास सूत्र' के 16वें अध्याय "व्याधि-प्रशमन" पर विचार किया है। यह अध्याय तीसरी शताब्दी ईसवी (अनुमानतः) से बाद का नहीं है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसके तिब्बती और चीनी अनुवाद भी उपलब्ध हैं। एक चीनी अनुवाद विद्वान धर्मक्षेम का है जो 414 ई. में चीन गये हुए थे और 433 ई. तक वहां रहे थे। दूसरा अनुवाद है प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग का, जो 713 ई.में मरा था। इस अध्याय में कुल 13 श्लोक रहने पर भी आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त के अध्ययन में एक खासी विशेषता है और यह आवश्यक विषयों पर चरक और सुश्रुत की संहिताओं से मौलिक विभेद रखता है।

इस सम्बन्ध में यह भी नहीं भूलना चाहिये कि तिब्बत में बौद्ध आयुर्वेदज्ञों के ग्रन्थों के प्रचार के साथ ही भारतीय "आयुर्वेद'' की बृहत्त्रयी के आचार्य वाग्भट का तो इतना अधिक स्वागत हुआ था कि उसकी आधे दर्जन के करीब संस्कृत व्याख्याओं का भी तिब्बती अनुवाद मिलता है। यहां तक कि अष्टांगहृदय, वैदूर्यक भाष्य, पदार्थ चन्द्रिका, प्रभास नाम, अष्टांगहृदयवृत्ति और वैद्यकाष्टांग हृदय, वृत्तेर्भेषज नामसूची इन तीन व्याख्याओं का अस्तित्व भी आज केवल उनके तिब्बती अनुवाद के बल पर ही है।

अष्टांग हृदय के तिब्बत में व्यापक प्रसार के मूल में कुछ लोगों का यह विश्वास है कि वह आचार्य वाग्भट के सम्प्रदायत: बौद्ध होने के कारण ही हुआ था। परन्तु आधुनिक अध्ययन-अनुसन्धानों के बल पर यह निश्चित-सा हो चुका है कि आचार्य वाग्भट सम्प्रदायत: बौद्ध नहीं थे। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान जूलियस जौल्ली ने भी अपने ग्रन्थ 'मेडीसिन'' में जो इन्साइक्लोपीडिया आफ इन्डो-आर्यन रिसर्च, भाग 3, खण्ड-10 में कई दशाब्दियों पूर्व प्रकाशित हो चुका है यह संकेत किया है, जिसकी विस्तृत विवेचना यहाँ करना सम्भव नहीं है। जो भी हो तिब्बत में सिद्धसार (8-10 शताब्दी) तथा अमृत हृदयाष्टांग गुह्योपदेश तन्त्र (728-786 ई.) की चर्चा लुई रेनों तथा जोव फीजियोजन ने भी की है।

यह अनूदित चिकित्सा-विज्ञान का साहित्य भी इतना जनप्रिय एवं जनलाभकारी हुआ कि 13वीं शताब्दी में मंगोलिया में भी तिब्बतियों द्वारा लामावाद के प्रचार के साथ ही प्रचारित हो चला था और तभी से ये तिब्बती अनुवाद मंगोल भाषा में अनुवाद के रूप में लाये गये। इन तिब्बतीय भेषजों का उपयोग बुरजात, दसुगर, तगुत्, बोला, कत्मुक तथा लेपचा आदि हिमालयस्थ जनता ने किया। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् लिटार्ड ने "हिस्ट्रडेला मेडीसिन'' में इसका विशद विवेचन किया है।

जर्मनी विद्वान् प्रोफेसर जूलियस जौल्ली के अनुसार तिब्बती चिकित्सा विज्ञान बहुतायत से भारतीय चिकित्सा विज्ञान पर आधारित है। उदाहरणस्वरूप शरीर के 9 द्वार तथा 900 स्नायुओं का होना, शरीर से त्रिदोषवाद का सैद्धान्तिक रूप से परिग्रहण तथा दूध और मछली का संयोगज बिषक्रियाजनकत्व और वेग धारण की सदोषता, स्वस्थवृत्त से तीनों त्रिफला, नीलोफर, काली मिर्च, लहसुन, आद्रक, दालचीनी, कूठ की जड़ आदि भेषज विधान में बैल के सींग से चीरने का उपदेश तथा धान्यमुख, पक्षितुण्ड, पशुतुण्ड आदि की आकृतिवाले यन्त्रों का वर्णन शल्य विज्ञान में तथा गर्भ विज्ञान के अन्दर भ्रूण की योनि के परिचायक चिन्हों का निर्देश इसके प्रबल प्रमाण हैं। जौल्ली का यह भी कहना है कि भारतीय पशु चिकित्सा-संबंधी ग्रन्थ भी आदिकाल में ही तिब्बती भाषा में अनुवादित हुए थे।

तिब्बत में आयुर्वेद के ग्रन्थ

श्री ई. एच. सी. वाल्स भी तिब्बती चिकित्सा विज्ञान को आयुर्वेद से प्रसूत मानते हैं और इसका मौलिक रूप ग्युद्-सी नामक तिब्बती चिकित्सा ग्रन्थ आयुर्वेद से प्रतिपादित है। तिब्बती भाषा में "ग्युद्'' का अर्थ होता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है तन्त्र एवं "सी" का अर्थ होता है चार। फलत: ग्युद्सी का अर्थ भी तिब्बती भाषा में वहीं होता है जो संस्कृत में चतुस्तन्त्र का।

कहा जाता है कि उक्त तिब्बती चिकित्सा ग्रन्थ मूल संस्कृत चतुस्तन्त्र का अनुवाद है और 4 तन्त्रों के रूप में 4 भागों में विभक्त है। यह भी कहा जाता है कि यह ग्रन्थ भगवान बुद्ध द्वारा मूलत: उपादिष्ट हुआ था। यह "ग्युद्सी" नामक ग्रन्थ तिब्बती चिकित्सा विज्ञान का मूलस्रोत है। जिसके बारे में "क्लोमाडे कुरूस्" का विषय-सूची व्याख्यानुवाद पठनीय हुआ है। इस पुस्तक की दो ब्लाक-प्रिण्ट प्रतियां इंडिया आफिस के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं । जिसका नाम ऊपर में अमृत हृदययाष्टांग गुह्योपदेश दिया हुआ है। इनके प्रत्येक के चार भाग हैं। प्रथम के चार भागों में क्रमश: 8,43,210 तथा 62 पृष्ठ हैं और इस भाग की पुस्तकालय संख्या डी-1 है। द्वितीय भाग के 4 भागों में भी क्रमश: 11,43,226 तथा 62 पृष्ठ हैं और इसे डी-2 से संकेत किया गया है। एक पुस्तक ब्रिटिश म्यूजियम में भी है जो अपेक्षाकृत स्पष्ट अधिक रहते हुए भी अपूर्ण हैं। यह भी कहा जाता है कि "क्लोमाडेकूरूस" का विवरण उनके लिए एक तिब्बती लामा ने तैयार किया था।

तिब्बत में आयुर्वेदावतरण

प्रस्तुत पुस्तक "ग्युद्सी" में तिब्बत में आयुर्वेदावतरण का क्रम बतलाते हुए लिखा गया मिलता है कि खिस्त्रोंगदिहु (द्यु) त्सन के काल में (ईसा की 8-9 शताब्दी में) तिब्बती भाषान्तरकार वैरोत्सन या वैरोचन ने इसे कश्मीर में वैद्य पंडित देवनागह की सहायता से अनुवाद करके उक्त राजा को समर्पित किया। उस समय इसे प्रसिद्ध वैद्य यूथोंग तथा अन्य विद्वानों ने ग्रहण किया और तब से परम्पराया अवतरित होता हुआ वैद्य यूथोंग से 13वें वंशज यूथोंग-जिसने अपने को पृथक परिगणित कराने के लिए अपना नाम नव-यूथोंग रखा था-तक आया। इस वैद्य ने इसमें बहुत-सा संशोधन-परिवर्धन किया और इसका प्रचार किया। इस काल में 9 व्यक्ति चिकित्सा-विज्ञान के पंडित हुए थे।

कहना न होगा कि यह चिकित्सावतरण परिपाटी भी भारतीय ही है और इस प्रकार का अवतरणक्रम आचार्य चरक तथा सुश्रुत्त द्वारा निर्दिष्ट आयुर्वेदावतरण परम्परा के अनुसार ही कहा जायगा। साथ ही वृद्ध यूथोंग ने नव यूथोंग का पृथक्करण-क्रम भी वृद्ध वाग्भट, वृद्ध सुश्रुत आदि के पार्थक्येतिहास की ओर स्पष्ट संकेत कर रहा है। पुस्तक के ऊपर लिखित संस्कृत नाम "अमृत हृदयाष्टांग गुह्योपदेश" भी एक प्रकार से भारतीय "अष्टांगहृदय संहिता" की उपयुक्तता के अद्‌भुत प्रभाव का ही स्मरण कराता है।

तिब्बती शासक खिस्त्रोंग दिहु (द्यु) त्सन किंवा उसके काल के प्रधान वैद्य वृद्ध-यूथांग का काल-निर्धारण तिब्बती पुरातत्व एवं इतिहास के ज्ञाता एवं वैद्य पं. देवनांगह का काल-निर्णय कश्मीर के पुरातत्वविद् ही स्पष्ट रूप से कर सकेंगे, परन्तु प्रकृत अवतरण कथा में उद्दिष्ट वैरोचन तो अवश्य ही ध्यानिबुद्ध के साम्प्रदायिक अनुयायियों में से रहे होंगे जिस बुद्ध की चर्चा मोनिया विलियम के "बुद्धिज्म" नामक ग्रन्थ के पृष्ठ 202 में उपलब्ध मिलती है, और जिन्हें बौद्ध ग्रन्थ "ललित विस्तरा" में नीलकायिक देवताओं में परिगणित हम पा रहे हैं।

बौद्धधर्म का प्रसार ही मूल

बौद्ध साहित्य के अनुशीलकों के लिये यह बात छिपी नहीं है कि बौद्धधर्म के भारतीय प्रचारक बौद्ध

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सिद्धान्तों के साथ ही बौद्ध संप्रदायानुमत भारतीय चिकित्सा विज्ञान के सुन्दर सिद्धान्तों का भी प्रचार किया करते थे। फलत: उनके द्वारा प्रचारित आयुर्वेद विज्ञान को भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट कह कर प्रख्यात किया गया होना भी कुछ आश्चर्यजनक नहीं है।

यह भी सम्भव है कि भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को जो चिकित्सा विज्ञान-संबंधी उपदेश दिये थे उन्हें उनके शिष्यों ने चार तन्त्रों में विभक्त कर दिया हों, और उसी चतुस्तन्त्र के अनुवाद के रूप में "ग्युद्सी" को तिब्बत में सर्वोपरि मान्यता मिली हो।

भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट एक चिकित्सा सूत्र से सुप्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग (671-695 ई.) ने उद्धरण देकर हमें यह मानने को भी बाध्य कर रखा है कि उसके भारत भ्रमण काल में बौद्ध चिकित्सा विज्ञान का पर्याप्त प्रसार था। भगवान बुद्ध द्वारा चिकित्सा औषधि विज्ञान का उपेदश किये जाने का प्रमाण पूर्वी तुकिस्तानान्तर्गत तूंगहांग में स्टाइन महाशय द्वारा प्राप्त जिस प्राचीन चिकित्सा पुस्तक की चर्चा डाक्टर हार्नले ने की थी, उसमें प्राचीन ईरानी भाषानुवाद के साथ मूल संस्कृत लेख भी उपलब्ध है और उसमें जीवक को सम्बोधित कर औषधोपदेश की चर्चा है। यद्यपि प्रकृत जीवक के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत स्थिर नहीं हो सका है फिर भी इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि यह जीवक भगवान बुद्ध के सम-सामयिक वैद्य या बौद्ध मतावलम्बी व्यक्ति थे और जिन्हें भगवान् बुद्ध से वार्तालाप का अंवसर भी प्राप्त हुआ था।

बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध को भैषज्य गुरु की संज्ञा दिया जाना भी पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व रखता है भले ही वह निर्वाण-प्राप्ति के सरलतम उपाय प्रदर्शन करने के कारण ही उन्हें दी गई हो।

इस पुस्तक के चार भागों में से प्रथम दो भागों में क्रमश: रोगाधिष्ठान और रोगापतन पर मीमांसा हुई है और शेष दो भागों में यथा क्रम भेषज चिकित्सा तथा शल्यकर्म का विधान है। इस पुस्तक की टीकाएं भी तिब्बती भाषा में हुई थी जिनमें संगससग्याद-ग्या-त्सो की लिखी 'वैदूर्यपोंगपो' नाम की व्याख्या चिकित्सा विज्ञान का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाले छात्र ही पढ़ा करते हैं। इस टीका की एक ब्लाक प्रिंट कापी इंडिया आफिस पुस्तकालय में संरक्षित है जिसके 54 खण्डों में क्रमश : 40,282, 562 और 250 पुष्ठ हैं और मुद्रण भी सुस्पष्ट है। इसके अलावा भी 'तंग्युर' तथा 'कंग्युर' में भी आयुर्वेदिक पुस्तकें बिखरी हुई मिलती है।

तिब्बती चिकित्सा एवं आयुर्वेद की समानता

तिब्बती चिकित्सा-विज्ञान का मूलाधार भारतीय आयुर्वेद विज्ञान ही माना जाता है। फलत: उस चिकित्सा विज्ञान की भारतीय चिकित्सा विज्ञान से सर्वविध समानताएं उपलब्ध होना स्वाभाविक ही माना जायगा, फिर भी पाठकों के अवलोकनार्थ यहां भी समानता के थोड़े-से उदाहरणस्थल लिखना आवश्यक है।

1. भारतीय आयुर्वेद के अनुसार शरीर के 7 मौलिक तत्व यथाक्रम रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा और शुक्र हैं जिन्हें एक शब्द में धातु कहा जाता है। आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदस्, मेदस से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति मानी गई है। तिब्बती मूल चिकित्सा ग्रन्थ ग्युद्सी में भी रस, रक्त, मांस, मेदस, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात शरीर-धारक तत्व कहे गये हैं जिन पर जीवन आधारित बताया गया है।

2. भारतीय परम्परा के अनुसार वात, पित्त और कफ का शरीर में स्थान यथाक्रम पक्वाशय, आमाशय

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और छाती माना गया है। आचार्य चरक ने भी सूत्रस्थान महारोगाध्याय (20) में लिखा है कि वस्ति, मूत्राशय, पुरीषाशय, कटि, जानु, पाँव और हड्डियाँ वायु के आश्रय स्थान हैं। इनमें पक्वाशय वायु का प्रधान आश्रयस्थान है। स्वेद, रस, लसीका, रक्त और आमाशय यें पित्त के आश्रय-स्थान हैं। इनमें आमाशय पित्त का प्रधान स्थान है। छाती, मस्तक, ग्रीवा, पर्व समूह, आमाशय और मेदस् ये कफ के आश्रय स्थान है। इनमें भी छाती प्रधानतः कफ का स्थान है।

तिब्बती चिकित्सा-सिद्धान्त के अनुसार भी कफ का स्थान शरीर का ऊपरी भाग, पित्त का मध्य भाग तथा वायु का निम्न भाग माना जाता है। "ग्युदसी" के अनुसार कफ का आश्रय-स्थान छाती, जबड़े, रसना, मस्तक और सन्धि स्थान हैं, पित्त का आश्रय-स्थान पेट-पक्वाशय और आमाशय के बीच में है। और वात का आश्रय-स्थान प्रंचप्राण सिद्धान्तानुसार मस्तक, छाती, हृदय तथा काय का निचला भाग है। यही नहीं, भारतीय आयुर्वद के सिद्धान्त के समान ही तिब्बती आयुर्वेद ग्रन्थों में भी वायु का प्रकोप वृद्धावस्था वालों को, पित्त का प्रकोप जवानों को और कफ का प्रकोप बच्चों को बाहुल्येन होना बतलाया गया है।

3. इसी प्रकार गर्भ में बच्चों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तिब्बती चिकित्सकों का मत भी भारतीय विचारधारा से बिल्कुल मिलता है। तिब्बतियों का मत है कि शरीर का निर्माण माता के रज, पिता के शुक्र और चैतन्य इन तीनों के संयोग से ही होता है। इसमें भी यदि शुक्र की बहुलता हो तो पुत्र तथा रज की बहुलता हो तो पुत्री का जन्म होता है। यदि शुक्र और शोणित दोनों समान ही रहे तो नपुंसक की पैदायश होती है। यदि शुक्र दो भागों में बंट ज़ाय तो यमज (जुड़वाँ) बच्चा पैदा होता है।

भारतीय आयुर्वेद में तो यह मत अधिक प्रचलित है तथा इसकी चर्चा चरक से लेकर भावमिश्र तक ने अपनी संहिताओं एवं ग्रन्थों में विशदरूप से की है।

इस प्रकरण में यह भी कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि तिब्बतीय आयुर्वेद का गर्भ-सृजन में शुक्रशोणित एवं आत्म (चैतन्य) से उत्पन्न अंग-प्रत्यंगों का वर्णन भी भारतीय आयुर्वेद के उस सम्बन्ध के मत से सर्वथा मिलते-जुलते हैं। तिब्बतियों का यह मत है कि शुक्र से हड्डियाँ, मस्तिष्क और कंकाल बनते हैं, शोणित से मांस, रक्त, हृदय, फेफड़ा, यकृत, प्लीहा और वृक्क-ये प्रमुख अंग और शिराएँ उत्पन्न होती हैं। आत्मा से चैतन्य होता है। आचार्य चरक का भी रूपान्तर से इसी प्रकार का मत प्रकट होता है। वस्तुतः चरक के इस मत के बल पर यह मुक्तकण्ठ से कहा जायगा कि तिब्बती आयुर्वेद भारतीय आयुर्वेद का सर्वथा अनुगामी रहा है।

इसी प्रकार के अन्य भी बहुत से समानता के उदाहरण तिब्बती आयुर्वेद के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। जिनका निर्देश विस्तार के भय से नहीं किया जा रहा है।

शरीर विज्ञान का विशेष ज्ञान

तिब्बत में चांगपोरी बिहार तथा उससे सम्बद्ध अन्य बिहारों में श्री ई० एच० सी० वाल्स को शरीर विज्ञान का एक विशेष ज्ञानोपाय प्रकार का प्रदर्शक चित्र भी मिला था जिससे तिब्बती शारीर विज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश मिलता है कहा जाता है कि यहाँ के प्रत्येक चिकित्सक को यह चित्र पढ़ना पड़ता है। यह तिब्बत मिशन के प्रधान मेडिकल अफसर-कर्नल वेडेल आई०एम०एस० ने प्राप्त किया था। श्री एल आस्टिन वेडेल ने अपने ग्रन्थ "लासा एण्ड इट्स मिस्ट्रीज" में अपने यात्रा-प्रसंग का सुन्दर वर्णन किया है। उक्त चांगपोरी बिहार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तथा उससे सम्बद्ध मेडिकल स्कूल यद्यपि पंचम दलाई लामा के प्रधानमंत्री संग्यस ग्यात्सो (1640-80ई.) के बनवाये हुए हैं ऐसा कहा जाता है, परन्तु परम्परा अनुश्रुति यही है कि उक्त प्रधानमंत्री ने नव-निर्माण नहीं किया था अपितु 650 ई. के लगभग तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के समय ही राजा स्त्रोंगत्सन गम्बो द्वारा इस बिहार की नींव डाली गयी थी-केवल जीर्णोद्धार ही संग्यसग्यात्सों ने करवाया था।

वाल्स को यह भी ज्ञात हुआ था प्राकृत चित्र नया नहीं, अपितु पुराने परम्परागत-प्रचलित चित्र की अनुकृति मात्र है। इसमें 121 संख्यक चिन्ह देकर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त प्रदर्शित है और मस्तक, गला, हृदय, नाभि, स्नायु, शिरा, धमनी, मांसपेशियाँ, फेफड़े, यकृत, प्लीहा, वृक्क, आमाशय, पक्वाशय, शुक्राशय, अस्थि कंकाल आदि शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग बारीकी से प्रदर्शित हैं, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि इतने प्राचीन चित्र में भी फेफड़े का इतना स्पष्ट चित्रण मिलता है जिसके बारे में कई पाश्चात्य गवेषकों की यह भ्रान्त धारण रही है कि आयुर्वेद में फेफड़े को मुख्यता नहीं दी गई है और इस धारणा की पुष्टि में वे बताते हैं कि चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेद के आर्ष ग्रन्थों में क्लोम का उल्लेख नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में यह भी कहना कि श्री जौल्ली के द्वारा भारतीय आयुर्वेद का सर्वे करते समय आयुर्वेद के 14 हजार पारिभाषिक शब्दों की सूची बनाने पर भी फेफड़े का कोई नाम नहीं मिला, सर्वथा आश्चर्यजनक है।

यहां यह नहीं भूलना चाहिए कि चेतनाधिष्ठान हृदय के बाद ही क्लोम का उल्लेख किया हुआ है जो इसकी प्रमुखता का ही प्रत्युत पोषण करता है। वहीं शरीर संख्या नाम शारीराध्याय (7) मे 15 कोष्ठांगों का निर्देश करते समय "हृदऽव क्लोमच" के रूप में फेफड़े का स्पष्ट निर्देश है।

मारीच कश्यपोक्त वृद्ध जीवकीय तन्त्र में तो हृदय के बाद ही क्लोम का निर्देश मिलता है और थोड़ा और आगे बढ़कर श्लोकों में हृदय, यकृत, प्लीहा और फुफुफस की उत्पत्ति भी बतायी गयी है।

प्रकृत शारीर चित्र में केवल फेफड़े का निर्देश हो, यही नहीं, अपितु, वाम और दक्षिण दोनों ही फेफड़े की अगली-पिछली कर्णिकाओं (लावों) का भी सुस्पष्ट चित्रण मिलता है। फिर भला कौन ऐसा विवेकशील विद्वान होगा जो इसे आँख मूंद मान लेगा कि भारतीय आर्ष आयुर्वेदज्ञों को फेफड़े का ज्ञान स्पष्ट नहीं हुआ था, किंवा उन्होंने फेफड़े की मुख्यावयवता नहीं जानी थी अथवा जानकर भी उसकी उपेक्षा की थी। यह विचारणीय प्रश्न है।

तिब्बती आयुर्वेदाचार्यों की विस्तृत परम्परा

तिब्बती आयुर्वेद के आचार्यों की भी एक लम्बी परम्परा है जिसका यथावत् व्याख्यान करना सम्भव नहीं। यह स्पष्ट हो चुका है कि ग्युद्सी के अनुसार वृद्ध यूथौंग से नव-यूथौंग की वंश परम्परा में ही 13 आचार्य हुए थे। यूथौंग काल के 9 आचार्यों की चर्चा भी पहले हो चुकी है। प्राकृत शारीर चित्र में 12 प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञों के चित्र भी उसी चित्र के ऊपर अंकित उपलब्ध हुए हैं। इसमें सर्वप्रथम तवाई वांगपो का नाम है और अन्तिम लिंगस्त्रोंग के लोजंग्यत्सो का है।

विशेषाध्ययन अपेक्षित

उक्त शारीर चित्र का जो विवरण श्री वाल्स ने अपने उपरिनिर्दिष्ट निबन्ध में दिया है वह सर्वथा अपूर्ण और सदोष है, क्योंकि जिस तिब्बती वैद्य ने इस शारीर चित्र का विवरण उन्हें बतलाया था, उसे ही चित्र के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitized by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सम्बन्ध में पूरी जानकारी नहीं थी, यह श्री वाल्स के निबन्ध से ही स्पष्ट हो जाता है। श्री वाल्स लिखते हैं कि उन्हें वैद्य ने कहा था कि चित्र में जहाँ पर उसकी संख्या दी हुई है वह एक चिकित्सा ग्रन्थ की संख्या है जिसमें उस चिन्हित अंग का पूरा विवरण दिया हुआ है, किन्तु उसे उस ग्रन्थ का नाम भी स्मरण नहीं आ रहा था। वाल्स ने यह भी लिखा है कि तिब्बती शारीर विज्ञान का मूल ग्रन्थ ग्युदसी है और उस ग्रन्थ में इस चित्र की चर्चा है। सम्भवतः श्री वाल्स को जो तिब्बती वैद्य मिला था वह चांगपोरी बिहार का स्नातक नहीं था और उसने अपनी प्रतिष्ठा के लिए यह कूट प्रचार किया होगा कि उसने अपनी प्राकृत चित्र की कापी नेपाल की सीमा पर बेच दी थी, जिसका उल्लेख वाल्स ने किया है। इसलिए जबतक भारतीय आयुर्वेदज्ञ इस क्षेत्र में जाकर तिब्बती चिकित्सा ग्रन्थों का अनुसन्धान-अनुशीलन कर इस शारीर चित्र पर प्रकाश नहीं डालें तबतक इस चित्र की प्राकृत व्याख्या सर्वथा संगत नहीं मानी जानी चाहिए।

चित्र की विशेषताएँ

यद्यपि चित्र की विशेषताएं अनेक हैं, मगर इसकी सबसे बड़ी विशेषता है हृदय को चैतन्य का अधिष्ठान मानना और इस सिद्धान्त की पुष्टि में चित्र में हृदय से 5 ज्ञानवह नाड़ियों का भी स्पष्ट निर्देश है। यहां यह भी कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आधुनिक पाश्चात्य शारीरज्ञ मस्तिष्क को इन्द्रियाधिष्ठान के रूप में मानते हैं। यह भी कोई नवीन मत नहीं है। भारतीय चिकित्सा विज्ञान के इतिहासज्ञों को यह भली-भाँति विदित है कि भारद्वाज मुनि ने सर्वप्रथम मस्तिष्क को इन्द्रियाधिष्ठान के रूप में देखा था और उसी के बूते पर शरीर में सर्वप्रथम शिर की उत्पत्ति होना बतलाया था। परन्तु चेतना धातु आत्मा के मुख्याधिष्ठान होने और सभी अंगों का मूल एवं कतिपय भावों का अधिष्ठान होने के कारण हृदय को शरीर में मुख्य अंग एवं एकमात्र चेतनाधिष्ठान के रूप में आत्रेय एवं धन्वन्तरि दोनों ही सम्प्रदाय के आचार्यों ने माना है।

तिब्बत के शल्य शास्त्रीय यन्त्र

श्री वाल्स के अनुसार 19वीं शताब्दी तक तिब्बत में शल्य चिकित्सा में चूषण, अग्निकर्म तथा रक्तस्रावण ये तीन शल्यकर्म मुख्य थे। उन्हें यह पता चला था कि 'मेपुँग' और 'मेबुंग' नामक दो यन्त्र थे जिनमें कागज का पलीता जला कर गर्म पात्र ब्लिस्टर करने के स्थान रखा जाता था। चूषण के लिए तुम्बी का, नस्तर की छुरी रक्स्त्रावण के लिए और स्वर्ण शलाका आँख के आपरेशन के लिए प्रयोग किये जाते थे।

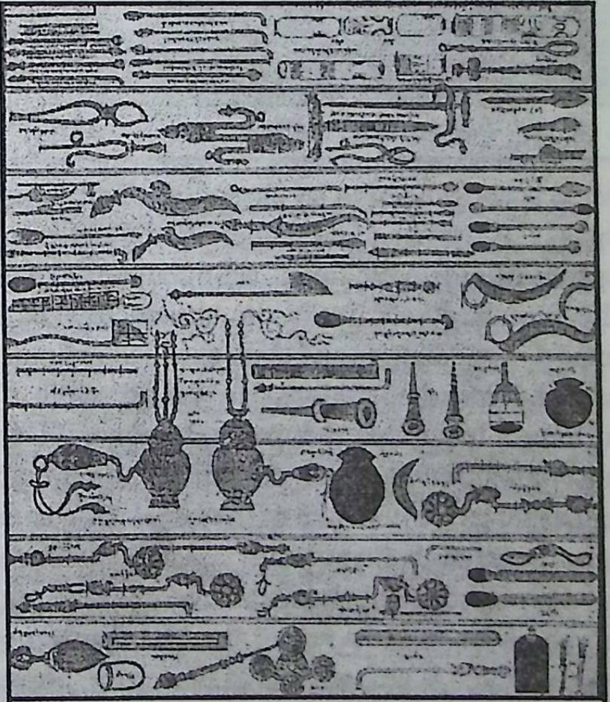

तिब्बती चिकित्सा में प्रचलित यंत्र शस्त्र

साभार: *(विश्वायुर्वेद अंक, सचित्र आयुर्वेद, मार्च 1971 पृ.सं. 113 से 118, आचार्य परमानन्द शास्त्री)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

HISTORY OF INDIAN MEDICINE ITS SPREAD IN TIBBAT
(तिब्बत में भारतीय चिकित्सा के प्रसार का इतिहास)

रस सिद्ध नार्गाजुन

Excavations on ancient Indian sites of the third millenium B.C. have brought to light several therapeutic substances like the ***silãjatu,*** a remedy for diabetes, rheumatism etc. Bones of the octopus have been exhumed from earthenware vessels. Leaves of the ***nim*** tree *(Azadirachta indica),* horns of the red deer, and skulls on which cranial surgery had been performed-all point to the high antiquity of the medical sciences in India. In the Vedic period, which has been dated from 5000 B.C. to 2000 B.C., medicine was already an established profession. Rig Veda 9.112 speaks of the healing of fractures and 10.97 is dedicated to healing herbs. The Asvins were the famed physicians and wonder-working surgeons. They were adapts in treating blindness, paralysis and rejuvenation. They replaced the lost leg of a soldier by an iron one. The atharva-Veda is considered to be the source of all Ãyurveda or the classical medicine of India. It speaks of the use of an unidentified plant *kustha* to combat *takman* or malarial fever. It speaks of prosthetic limbs, artificial eyes and newly set dentures ! During the lifetime of the Buddha lived Jivaka the 'thrice-crowned king' of physician surgeons. He was an expert in paediatrics and even excelled in brain surgery. He successfully performed intricate abdominal operations. He was a disciple of the renowned Ãtreya of Taxila, a pioneer in India's history of the medical sciences. During his reign, Emperor Asoka provided hospitals throughout his dominions and even beyond "in the lands on its frontiers....... and as far as Ceylon, and of the Greek king named Antiochus and of those kings who are neighbours of that Antiochus.....Medicinal herbs whether useful to man or to beast, have been brought and planted wherever they did not grow .... " Megasthenes, the Greek Ambassador to the court of the Mauryan Emperor (3rd cent. B.C.) speaks of the high level of India 's attainments in obstetrics, preventive medicine and dietetics.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

The oldest available medical textbook is the Samhita of Charaka, who according to tradition, was the Royal Physician to Kaniska. His work is divided into eight parts : duties of a doctor and diet, the eight chief diseases, general pathology, anatomy and embryology, diagnosis and prognosis, special therapy, and general therapy. His works enjoyed renown far and wide : it was translated into Persian at an early date, and into Arabic in the eighth century A.D.

Susruta is famous for his contributions to surgery. The Mahãbhãrata represents him as the son of Visvãmitra. The treatise of Susruta, *inter alia,* deals with pathology, anatomy, embryology, therapeutics and toxicology. Almost all the important operations are mentioned by him. He has described 121 surgical instruments. Like Charaka, he won fame beyond his motherland India : in the 9th century he was renowned in Cambodia in the east and Arabia in the west.

Bhela was another eminent medical scientist whose Samhita refers to Susrutã. Nãvanítaka is available in the oldest known medical manuscript of Sanskrit written on birch bark. It was discovered from Kashagar. Palaeographically it belongs to the 4th century A.D. The age of the manuscript itself has a unique importance for tracing the evolution of the medical science in India.

The Bhojaprabandha gives an account of the cranial operation performed by the Asvinís on King Bhoja who reigned from 1010 to 1056 A.D. Of special interest is the fact that it was performed under anaesthesia *(mohacúrna मोहचूर्ण)* to cure him of cholesteatoma which is a brightly shining pearly tumour like the *saphara* (शफर) to which it is aptly compared. It also mentions the *sañjívaní* drug to revive the patient from anaesthesia to consciousness. Medical science has yet to discover such a drug.

Indian medicine travelled to the capital of the Caliphate, where Hindu Physician were in charge of the Imperial Hospital. The great Harun al Rashid (786-808) was cured of a severe illness by the Hindu Physician Mankh. This enhaneed the reputation of Hindu medicine throughout the Saracen empire. This enhanced the reputation of Hindu medicine throughout the Saracen empire. Mankh translated a Sanskrit work on materia medica into Arabic. The treatise of Sanaq (or Chãnakya) on toxicology was done into Arabic. The Moslem scholars of the Caliphate read the standard Sanskrit texts of Charaka, Susruta and Vãgbhata. They got their knowledge of the internal administration of iron, oxides of arsenic, mercury and other metals from the Hindus. From the Sarcens, the Hindu discoveries were assimilated by Europe. The contributions of the Saracens to the European Renaissance, in their turn owe to a considerable extent to the Hindu achievements in medicine and mathematics. Greece had, even earlier, borrowed the use of several medicinal plants from India. In modern times Hindu medicine has given the plant *Rauwolfia* which is widely used for the treatment of blood pressure.

More than two thousand years ago, Indian culture and civilisation reached Indonesia. Inter alia, Indian medicine also found a congenial soil in this complex of

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

islands. To this very day, Bali has preserved a rich ayurvedic theory and practise. Over 250 medical texts are known in plamleaf manuscripts, e.g. Usada (Sanskrit *ausadha* औषध), Trinãdí (त्रिनाड़ी).

The medicine of Tibet too, is based on that of India. Several Sanskrit works were translated into Tibetan, including the 'Four Tantras' (Rgyud bzhi) whose original Sanskrit it now lost. Tibetan fastnesses, untouched by war, preserved the rich heritage of Indian medicine till the Chinese occupation. The Chakpori Medical College at Lhasa was the oldest institution of its kind. Its photograph can be seen at the exhibition . From Tibet, Indian medicine travelled to the Khalkhas, Inner Mongols and the distant Buryats of N.E. Siberia. Here I may recall my meeting with Dr. P. Cyrill von Korvin-Krasinski who has specialised in Siberian medicine. When I met him in Germany, he related how he had the privilege of having W. Badmajev as his guru in Mongolian Ãyurveda in Warsaw. He was the son of the famous Siberian Doctor N.N. Badmaev who was well known in Leningrad for his ayurvedic practice and his great success in this therapy. His patients included prominent communist leaders like Bukharin, Rykov, the author Alexei Tolstoy and on some occasions he was even summoned to visit Stalin. The People's Commissar of Health Kaminsky had such a high opinion of him that a special department was established under. Dr. Feodorov at Leningrad. Even Prof. Ilin of the Military Medical Academy was in this department. During a purge the department was abolished and the persons liquidated. The son of Badamajev fled to Poland where Dr. Krasinski met him. Dr. Krasinski related that Badmajev Jr. had given him a number of Siberian medical preparations. I requested him to show me one. He brought a bottle and spoke about its efficacy and was very sad that now he would not have it again as his Siberian guru Badmajev was no more alive. I requested Dr. Krasinski to show me a bit of his admirable drug. And lo! it was the ubiquitous *hingvastaka chúrna* हिंग्वाष्टक चूर्ण I reverted to Dr. Krasinski : "It is found in every Indian household. You can get it, certainly you can have it again." Now Dr. Krasinski was insistent on a visit to India to study at the very fountain head of the medicine of Tibet, Mongolia and Siberia.

(Exhibrition of the history of India medicine and its spread in Asia by Dr. Lokesh Chandra, Nov. 1966)

आयुर्वेद बांगमय में पंचमहाभूत के सिद्धान्त के प्रतीक को दर्शाता हुआ एक प्राचीन चित्र

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वानस्पतिक द्रव्यों की पहिचान एवं स्थानिक प्रयोग

अहिफेनकुल (PAPAVERACEAE)

द्रव्यनाम :- तिब्बतीय/लद्दाखी : उत्पल, हिमाचली : कलिहारू, अंग्रेजी : ब्लुपौपी

वानस्पतिक नाम : *Meconopsis aculeata* Royle.

स्वरूप : एकवर्षीय क्षुप, काण्ड :- 30 सें.मी. लम्बा, पत्र :- मूलोद्भव, दीर्घायत, रोमिल, पुष्प :- बैंगनी नीलवर्ण के, सुन्दर आकार के होते हैं। मूल :- कन्दिल, श्वेतवर्ण का, बहुवर्षीय।

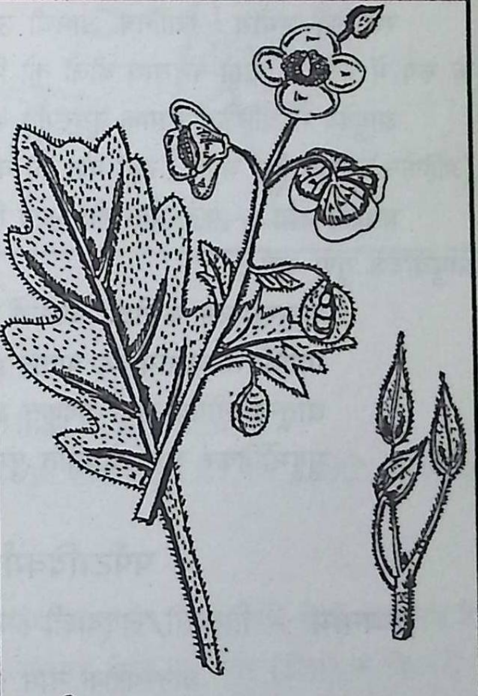

कलिहारू *(Meconopsis aculeata* Royle)

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में इस प्रजाति की किस्में बड़ालाचा, शाफीला में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त *Meconopsis* की अन्य किस्में भी सिक्किम, भूटान, उत्तराखण्ड़ हिमालय में पाई जाती है। पुष्प रंग भेद से 4 किस्मों का उत्पल के नाम से चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।

यथा : 1. उत्पल नगपों, 2. उत्पल कारपो, 3. उत्पल सरपो 4. उत्पल स्गोंन्पो। ये चारों किस्में भारत के सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड़, हिमाचल में भी उपलब्ध है। भूटान मे भी इसकी किस्में पाई जाती है। एक अन्य किस्म तिब्बत एवं चीन में पाई जाती है। जिसे छेरसुन (*Meconopsis horridula)* कहते हैं। इसका चाईना में औषधी में उपयोग करते है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग, बीज, मूल।

स्थानिक प्रयोग : लद्दाखी आमची उत्पल को एक उपयोगी वनस्पति मानते हैं। यकृत विकारों, दिल की घबराहट आदि कतिपय विकारों में इस वनस्पति का उपयोग करते हैं। हिमाचल में यह बूटी कलिहारू के नाम से जानी जाती है। ग्रामीण लोग नर एवं मादा-भेद से दो किस्म मानते हैं। आमने-सामने यदि नर और मादा पौधे किसी को मिल जायें, तो दोनों का वशीकरण, मोहन आदि तान्त्रिक कामों में इस बूटी का उपयोग करते हैं। मूल को विषैला मानते हैं। तिब्बती चिकित्सक कतिपय औषधयोगों में पुष्प एवं बीजों का प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा में स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं है। इस पर अनुसंधान की आवश्यकता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : छै रूंग्-गुन

वानस्पतिक नाम : ***Papaver nudicaule*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय क्षुप, काण्ड :- तलोत्थ, मृदु, पुष्प :- प्याले के आकार सदृश्य, श्वेताभ वर्ण के, सुन्दर होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** पुष्प, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति कम मात्रा में लद्दाख क्षेत्र के खरदुंगला पास एवं शाफीला, बड़ालाचा पास के क्षेत्रों में 4,000 मीटर की ऊँचाई पर पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची उत्पल की तरह इस बूटी का उपयोग करते है। ज्वरध्न, रोचक के रूप में कतिपय योगों के साथ बीजों को मिलाकर प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेद में अहिफेन नामक वनस्पति का उपयोग किया जाता है जिसे *Papaver somniferum* Linn (अहिफेन) कहते हैं। जोकि इसी वंश की वनस्पति है। भारत में इसकी खेती की जाती है।

प्रयोज्य अंग :- फल-पोस्तडोडा-एवं निर्यास (अफीम)

आयुर्वेदिक गुण धर्म :

स्यात्खाखस फलोद्भूतं वल्कलं शीतलं लघु :।
ग्राहितिक्तं कषायं च, वातलं कफकासहृत्।।
धातूनां शोषकं रूक्ष मदकृत् अग्निवर्धनम्।
मुहुर्मोहिकरं रूच्यं सेवनात् पुंस्त्वनाशनम्।। *(भावप्रकाश निघण्टु)*

पर्पटादिवर्ग (FUMARIACEAE)

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : तोंगजील, ग्यातुंक, मां-सरपो, हिन्दी : भूतकेशी

वानस्पतिक नाम : ***Corydalis govaniana*** Wall.

भूतकेशी *(Corydalis govaniana* **Wall)**

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- मृदु, पर्ण :- मूल : कृष्णाभ, खण्डित, पुष्प :- पीतवर्ण के गुच्छों में रोमिल।

पुष्पकाल : जुलाई-अगस्त।

प्रयोज्य अंग : मूल, पुष्प।

प्राप्ति स्थान : इसकी कई किस्में लद्दाख क्षेत्र में प्राकृतिक रूप से काफी मात्रा में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : आमची मूल का प्रयोग कतिपय औषध-योगों में करते हैं। पुष्पों का प्रयोग ज्वरध्न के रूप में करते हैं। पञ्चांग चूर्ण का प्रयोग मछली मारने के लिए करते हैं। एक अन्य किस्म तिब्बत (चीन) में पाई जाती है। जिसे योन-स्यु-चि-चिंग *Corydalis*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

chrysosphaera कहते हैं।

इस वंश की निम्न औषधोपयोगी किस्में भी लद्दाख क्षेत्र के विभिन्न ऊँचाई वाले भागों पर पाई जाती है। इन सभी किस्मों के औषधीय गुणों का अध्ययन होना चाहिये, तथा आयुर्वेद निघण्टु शास्त्र में इनका समावेश किया जाना चाहिये।

1. *Corydalis boweri* Hemsl.
2. *Corydalis tibetica* Hook. f.
3. *Corydalis stricta* Steph.
4. *Corydalis crassifolia* Royle.
5. *Corydalis flabellata* Edgew.
6. *Corydalis cornuta* Royle.

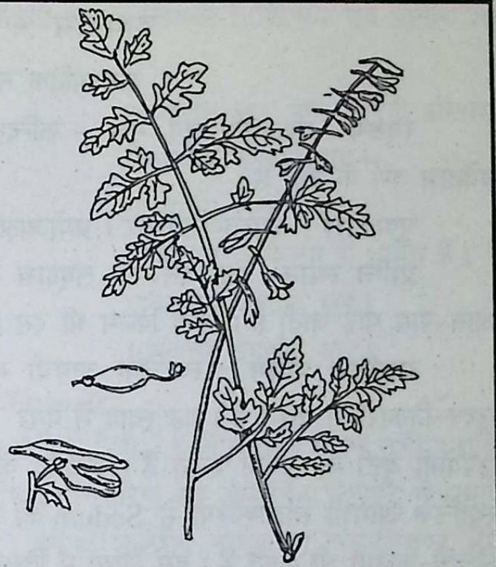
इन्द्रजटा ***(Cordalis cornuta* Royle)**

सर्षपकुल (CRUCIFERAE)

द्रव्यनाम :– तिब्बती/लद्दाखी : पर्पत

वानस्पतिक नाम : ***Arabis tibetica*** Hook. f. & Thoms.

स्वरूप : यह गेहूं के खेतों में पैदा होने वाली एकवर्षीय परिसृत शाकीय क्षुप है। पर्ण :– छोटे, पित्तपापड़ा सदृश तथा पुष्प :– गुलाबी वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति लद्दाख क्षेत्र में लेह, चुमाथांग, लाचालुंग, सांकू आदि क्षेत्रों में सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पञ्चांग का उपयोग ज्वरहर योगों एवं पित्त (ठीवा) के विकारों में करते हैं। रक्त विकारों में भी इसे उपयोगी मानते हैं। इसके अतिरिक्त इस वनस्पति का उपयोग आमाशय विकार एवं तीव्र ज्वरघ्न के रूप में किया जाता है। यह बूटी औपसर्गिक ज्वरों में भी उपयोगी है।

टिप्पणी : आयुर्वेद में पर्पट (पित्तपापड़ा) नामक वनस्पति का उपयोग तृषाशामक एवं ज्वरघ्न के रूप में किया जाता है, जिसे वनस्पति शास्त्र के आधार पर *Fumaria indica* कहते हैं ।

आयुर्वेदिक गुण धर्म :

पर्पटः शीतलस्तिक्तः पित्तश्लेष्मज्वरापहः।
रक्तदाहारूचिग्लानि मदभ्रम विनाशनः।। *(रा.नि.)*

लद्दाख क्षेत्र में पर्पटादिवर्ग (Fumariaceae) कुल की एक अन्य वनस्पति भी पाई जाती है। जिसे भी तिब्बती आमची पर्पत कहते हैं। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इस *Hypecom leptocarpum* f. कहते हैं। यह वनस्पति लद्दाख में बड़ालाचा,खरदूंगला, शाफीला में पाई जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : सोलो

वानस्पतिक नाम : ***Arabis recta*** Vall.

स्वरूप : एकवर्षायु क्षुप, मूल :- कन्दिल, श्वेताभ वर्ण का, मृदु, पर्ण :- मूलोद्भव, छोटे-छोटे, पुष्प श्वेताभ वर्ण के होते है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्यअंग** : मूल, पञ्चांग ।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति लद्दाख के खरदूंगला, खरनक, टंगलंगला आदि क्षेत्रों में हिमनदों के आस-पास पाई जाती है। अन्य किस्म भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे *A. auriculata* DC. कहते है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग फुफ्फुस (फेफड़े) की गर्मी दूर करने एवं उदर-विकारों में करते हैं। यह स्वाद में कुछ मधुर होता है। लद्दाखी आमची कतिपय औषध योगो में इस उपयोगी बूटी का प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद के मतानुसार यह मधुर, कषाय एवं शीतगुण प्रधान है। कुछ स्थानिक आमची सोलोकारपो से Sedum की किस्मों का भी उल्लेख करते हैं। कुछ आमची इस बूटी को खिलचे-कारपो भी कहते हैं। इस विषय में तिब्बतियन मेडिकल सेन्टर, धर्मशाला में योग्य तिब्बती चिकित्सकों से संदिग्धता का निवारण करना चाहिये।

द्रव्यनाम :- तिब्बती : ठक्-ढुक्पा, स्मंन-खनपा

वानस्पतिक नाम : ***Capsella thomsoni*** Hook. F.

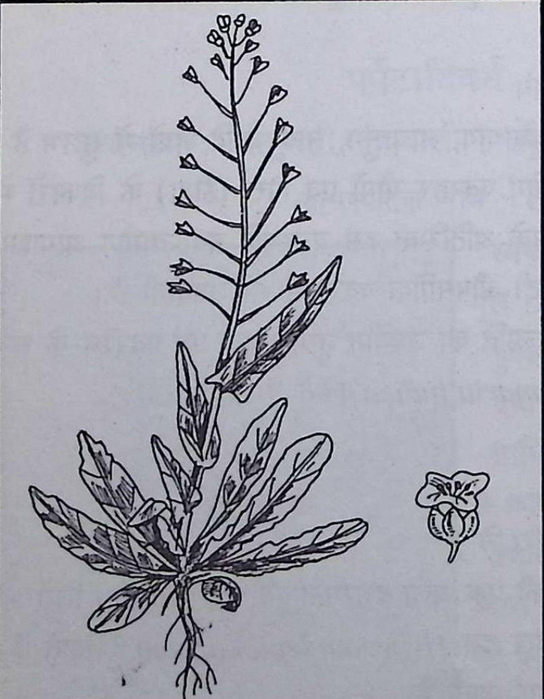

सोक्पा (*Capsella bursapastoris* L.)

स्वरूप : ये दोनों किस्में एक वर्षायु शाकीय पादप है। काण्ड :- मृदु, तलोत्थ, पुष्प :- श्वेताभ, नारंगी वर्ण के, बीज बारीक होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य किस्म भी यहाँ पायी जाती है। जिसे लद्दाखी में सोक्पा (*Capsella bursapastoris* L.) कहते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर।

प्रयोज्य अंग : बीज, पुष्प, पत्र।

प्राप्ति स्थान : सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में द्रास, करगिल, लेह, नुब्रा आदि क्षेत्रों में सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची बीजों का प्रयोग रक्तविकार में एवं शीतपित्त में रक्तशोधन हेतु वाह्य एवं आभ्यन्तरिक रूप में करते हैं। पत्तों का उपयोग शाक के रूप में करते हैं।

टिप्पणी : सर्षपकुल (*Crucifarace*) की अन्य कतिपय उपयोगी वनस्पतियां भी लद्दाख क्षेत्र के विभिन्न ऊँचाई

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वाले स्थानों पर पाई जाती है। जिनका उपयोग शाक एवं औषधि रूप में तिब्बती चिकित्सक एवं ग्रामीण लोग करते हैं। यथा :

1. च्यूल-फुक्	*Malcolmia africana* R.Br.	एकवर्षायु क्षुप, पुष्प नारंगी श्वेताभ।
2. ब्रेका	*Thlaspi arvense* Linn.	एकवर्षायु शाकीय क्षुप।
3. ब्रेका भेद	*Thlaspi alpestre* Linn.	एकवर्षायु शाकीय क्षुप।
4. ठंग्-ठुक-पा	*Lepidium apetalum* Willd.	बीजों का चिकित्सा में प्रयोग हैं।
5. स्गों-ठोग्-पा	*Erysimum odoratum* Ehrh.	एकवर्षायु शाकीय क्षुप।
6. खूबकला भेद	*Sisymbrium mollissimum.*	एकवर्षायु शाकीय क्षुप।
7. सर्षप भेद	*Brassica napus* Linn var. *chinensis*.	

यह सभी वनस्पतियाँ लद्दाख क्षेत्र में स्पीतुक, खालोटेस से शूरू वैली में पायी जाती है। इन सभी प्रजातियों के गुणधर्मों का अध्ययन कर रस, गुण, वीर्य, विपाक के आधार पर निर्धारण कर आयुर्वेदीय निघण्टु में समावेश करना विद्वानों का कार्य है तथा अनुसन्धान का विषय है। इनका शास्त्रीय नामकरण कर निघण्टु तैयार कराना अनिवार्य है।

बन्पशाकुल (VIOLACEAE)

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : तिहा-तिहिंग, यूनानी : **गुलवन्पशा**

वानस्पतिक नाम : ***Viola cinerea*** Boiss.

स्वरूप : एकवर्षीय सर्पणशील शाकीय वनस्पति, पर्ण हृदयाकार, काण्ड मृदु, पुष्प नीलवर्ण के होते हैं एक अन्य जाति भी इस क्षेत्र में पायी जाती है जिसे *V. kunawarensis* Royle. कहते है। इस जाति के पुष्प पीतवर्ण के होते हैं। दोनों किस्में औषध उपयोग की हैं।

पुष्पकाल : अगस्त, सितम्बर।

प्रयोज्य अंग : पुष्प, मूल

प्राप्ति स्थान : दोनों किस्में लद्दाख क्षेत्र के लेह, जोजीला, नमीकला, नुब्रा-घाटी एवं जन्सकार क्षेत्र में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग गले के रोगों में (क्वाथ के रूप में) करते है। शिरोविकार एवं नासागत विकारों में पुष्पों का उपयोग करते हैं।

आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा में भी वनप्शा एवं गुलवनप्शा का बहुतायत में प्रयोग होता है। आयुर्वेद में जिन जातियों का प्रयोग होता है उन्हें *Viola serpens* एवं *V. odorata* कहते हैं।

वन्पशा *(Viola serpens)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वरूणकुल (CAPPARIDACEAE)

द्रव्यनाम :- लद्दाखी : **कब्रा, आलमोसे,** संस्कृत : **हिंस्त्रा,** हिन्दी : **कबरा**

वानस्पतिक नाम : ***Capparis spinosa*** Linn.

स्वरूप : परिसृत बहुवर्षीय गुल्म, काण्ड कण्टकित, पर्ण :- अभिलट्वाकार, दीर्घायत, पुष्प श्वेतवर्ण के, फल :- गोल, पकने पर रक्तवर्ण के होते है।

पुष्पकाल : जुलाई-अगस्त। **प्रयोज्य अंग** : फल, मूल।

प्राप्ति स्थान : पथरीली शुष्क पहाड़ियों पर यह वनस्पति नमीक 'ला', लेह, लामायुरू, बुद्धखरबू आदि स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक लोग अपरिपक्व फलों को उबालकर एवं पानी से धोकर शाक के रूप में प्रयोग करते हैं। इस शाक के प्रयोग से मोटापा कम होता है एवं मूत्र शर्करा में लाभ होता है। परिपक्व फलों के चूर्ण का उपयोग कष्टार्तव में करते हैं। मूल का प्रयोग क्वाथ के रूप में कास, प्लीहावृद्धि एवं कृमिरोगों में करते हैं।

बासन्तिकुल (HYPERICACEAE)

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : **च्या-स्यांग्, वांग-छु**

वानस्पतिक नाम : ***Hypericum perforatum*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- मृदु, उर्ध्वसंश्रित, पत्र-तीक्ष्णाग्र, पुष्प पीतवर्ण के होते हैं।

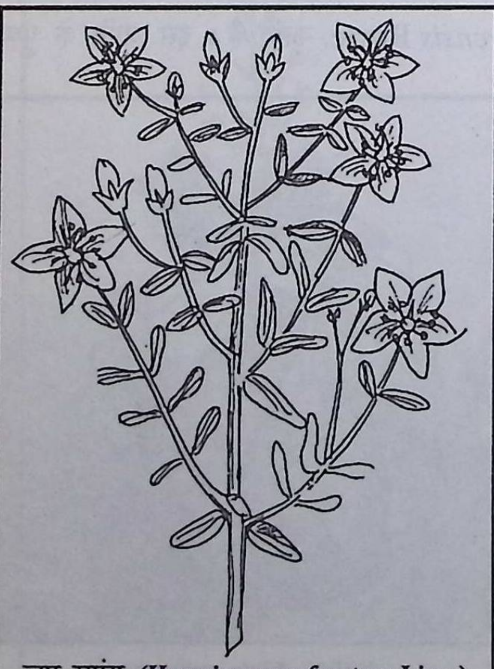

च्या-स्यांग् ***(Hypericum perforatum* Linn.)**

पुष्पकाल : जुलाई-अगस्त। **प्रयोज्य अंग** : मूल, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति शुरूघाटी, शाफीला, जन्सकार, नुब्राघाटी में पाई जाती है। इसकी अन्य किस्में भी तिब्बत क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे स्तकङ्-सरपो कहते है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पञ्चांग चूर्ण एवं क्वाथ का प्रयोग स्तनशोथ एवं विद्रधी में करते हैं। इनका विश्वास है कि इस बूटी का रतनजोत, तक्स्या के साथ प्रयोग करने से कैंसर जैसे प्राणघातक रोगों में कारगर है। लेखक के विचार से इन कैंसरनाशक औषध-द्रव्यों का आयुर्वेदीय सिद्धांतों के आधार पर शोध-कार्य एवं निघण्टु शास्त्र के आधार पर नामकरण करना चाहिये। लद्दाख में तक्स्या का आमची विशेष रूप से प्रयोग करते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CARYOPHYLLACEAE

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : थैन-यांग-लू

वानस्पतिक नाम : ***Silene himalayensis*** Me.

स्वरूप : यह एकवर्षायु तलोत्थ शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- रोमिल, पर्ण :- भालाकार, पुष्प :- हरिताभ-नीलाभ।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में विशेषकर जोजीला, द्रास, शांकू घाटी, जन्सकार, नमीकला आदि क्षेत्रों में इसकी किस्में कई पाई जाती है।

इस वंश की निम्न किस्में भी इस भू-भाग में पायी जाती है।

1. *Silene conoidea* Linn.
2. *Silene persica* Boiss.
3. *Silene vulgaris* (Moench.) Garcke.
4. *Silene moorcroftiana* Wall.
5. *Silene tenuis* Willd.

स्थानिक प्रयोग : तिब्बती चिकित्सा में इसके मूल का तथा पञ्चांग का उपयोग स्थानिक चिकित्सा में किया जाता है। चीन के आमची परम्परागत चिकित्सा में इन प्रजातियों का उपयोग करते हैं। आयुर्वेद निघण्टु शास्त्र में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं।

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : रेल चक्पा

वानस्पतिक नाम : ***Stellaria decumbens*** Edgrw.

स्वरूप : यह एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। यह वनौषधि तलोत्थ, 6 से.मी. लम्बी, पर्ण :- संयुक्त, छोटे-छोटे, पुष्प :- हरिताभ वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोगज्य अंग** : पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : यह प्रजाति एवं इस वंश की अन्य कई किस्में भी बारालाचा, जन्सकार, जोजीला, नमीकला आदि स्थानों में पाई जाती है। इनमें औषध-उपयोग की निम्न किस्में मुख्य है।

1. Stellaria longissima Wall.
2. Stellaria crispata Wall.
3. Stellaria media Linn.

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमचियों का कहना है कि इन किस्मों का प्रयोग चाईना में परम्परागत चिकित्सा में किया जाता है।

उपरोक्त जातियाँ आयुर्वेद निघण्टु शास्त्रों में वर्णित नहीं है परन्तु इनका औषधीय उपयोग इन क्षेत्रों में होता रहा है। अत: इन पादपों की औषधीय कार्मुकता का पता लगाना चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : च-ओ-टु-ओ.

वानस्पतिक नाम : ***Arenaria musciformis*** Wall.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड तलोत्थ, उर्ध्वसंश्रित एवं रोमिल होता है। पुष्प नीलाभ वर्ण के छोटे-छोटे होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग, मूल।

प्राप्ति स्थान : इस वंश की कई जातियाँ लद्दाख क्षेत्र में सापी 'ला' एवं लाचालंग में पाई जाती है। जो निम्न है।

1. *Arenaria foliosa* Royle.
2. *A. holosteoides* Edgew.

स्थानिक प्रयोग : आमची मूल का उपयोग चिकित्सा में करते हैं। स्थानिक आमचियों का कहना है कि तिब्बती चिकित्सा में भी इन किस्मों का इसकी उपयोग किया जाता है।

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : लुक्-सुक्

वानस्पतिक नाम : ***Vaccaria pyramidata.***

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- रोमिल, पुष्प :- घण्टाकार, नारंगी रंग के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची का कहना है कि तिब्बत एवं चाईना में इस वनस्पति का औषध में उपयोग किया जाता है।

कार्पासकुल (MALVACEAE)

द्रव्यनाम :- लद्दाखी : चम्पा, वालती : सोची-लिंग, यूनानी : खुब्बाजी

वानस्पतिक नाम : ***Malva verticillata*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु, तलोत्थ शाकीय पादप है। काण्ड :- मृदु रोमिल, पत्र :- वर्तुल, तट-दन्तुर, पुष्प :- गुच्छों में गुलाबी रंग के। इसके अतिरिक्त इस वंश की अन्य औषध उपयोग की किस्में भी लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है। जो निम्न हैं।

1. *Malva rercillata.*
2. *Malva rotundifolia* Linn.

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पुष्प, बीज।

प्राप्ति स्थान : यह किस्में लद्दाख क्षेत्र के लेह, करगिल, द्रास, मूलबेग, सांकू-घाटी में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची बीजों का उपयोग कास एवं फुफ्फुस विकारों में करते हैं। पैतिक विकारों में चम्पा पुष्पों का प्रयोग किया जाता है। युनानी हकीम इसे खुब्बाजी कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लालजड़ी कुल (GERANIACEAE)

द्रव्यनाम :- तिब्बती/लद्दाखी : **मिक्-स्मान्**, हिन्दी : **लालजड़ी**

वानस्पतिक नाम : ***Geranium nepalense*** Sweet.

स्वरूप : बहुवर्षीय रोमिल, शाकीय वनस्पति है। मूल :- ग्रन्थिल, रक्तवर्ण का, पर्ण :- वर्तुल, हस्ताकार, दन्तुर, अनुपर्ण-दीर्घायत, पुष्प :- नीले-गुलाबी रंग के। इसके अतिरिक्त इस वंश की निम्न जातियाँ भी लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है।

1. *Geranium pratense* Linn. :- खरबू, हिमिस में पायी जाती है।

2. *Geranium grandiflorum* Edgew. :- काँगी में पायी जाती है।

प्राप्तिस्थान : ये सभी किस्में सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में विषेशकर जोजी 'ला', बारालाचा पास, लेह, करगिल, द्रासघाटी के ढलानों पर पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग ब्रणरोपक एवं रक्तशोधक के रूप में बाह्य तथा आभ्यन्तरिक प्रयोग करते हैं। तिब्बती चिकित्सा में भी प्रयोग होता है।

टिप्पणी : जिरेनियेसी कुल की अन्य कतिपय उपयोगी वनस्पतियाँ लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है, जिनका उपयोग चीन की परम्परागत चिकित्सा में किया जाता है। जो कि निम्न प्रकार है।

1. *Erodium stephanianum* Willd. :- मिक्-स्मान्-छुरिंग

2. *Erodium tibetanum* Edgew.

इन प्रजातियों का उपयोग तिब्बती एवं चाईना चिकित्सा पद्धतियों में किया जाता है। इन के गुणधर्मो पर शोध किया जाना चाहिए।

विदारीकुल LEGUMINOSEAE (FABACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **रूदन्ती, रूद्रवन्ती**, तिब्बती/लद्दाखी : **सतकर, सदनक**

वानस्पतिक नाम : ***Astragalus munroi*** Benth.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय परिसृत वनस्पति है। काण्ड :- रोमिल, मखमली, श्वेताभवर्ण के एवं पुष्प :- पीत वर्ण के होते हैं। फलियाँ कोषीय होती है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूल, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में नमीक 'ला', साफी 'ला', मूलवेग, हैमिस, सोपको आदि स्थानों पर पायी जाती है। इसके अतिरिक्त औषध उपयोग की अन्य किस्में भी पाई जाती है। यथा :-

1. चिन्-सन् कारपो — *Astragalus tibetanus* Benth.
2. चिन-सन्-कांग् चवा — *Astragalus membranacus* Beg.
3. सातकर — *Astragalus yunnanensis* Fr.
4. सतसिर — *Astragalus floridus* Benth.
5. *Astragalus candolleanus* Royle

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

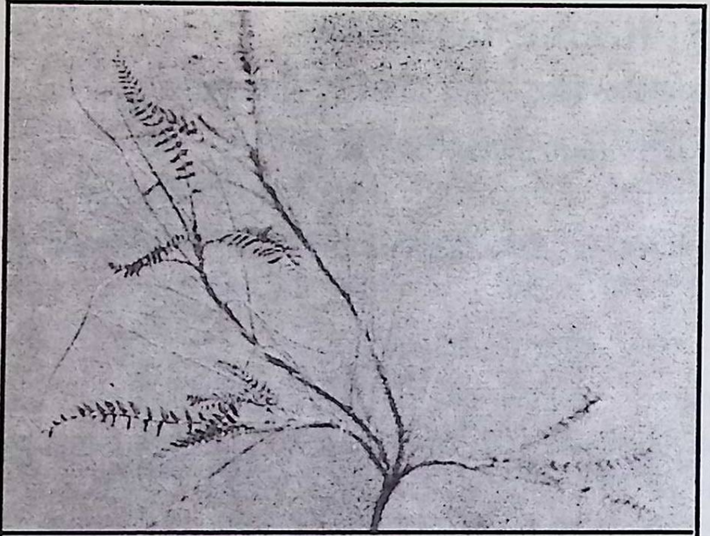

रूद्रवन्ती **(*Astragalus munroi* Benth.)**

उपरोक्त कतिपय किस्में लद्दाख के ऊँचाई वाले सभी स्थानों पर पाई जाती है ।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची सदनक, सतकर, सतसिर आदि किस्मों का उपयोग अपनी दैनिक चिकित्सा में करते हैं। पञ्चांग क्वाथ का उपयोग शोथ, जलोदर, निंद्रानाश एवं जीर्णकास में करते हैं। चाईना के परम्परागत चिकित्सक भी *Astragalus* की किस्मों का उपयोग अपनी चिकित्सा में करते हैं।

लद्दाख क्षेत्र में *Astragalus* के झाड़ीदार एवं कांटेदार गुल्मक भी पाये जाते हैं। जिसे स्थानिक भाषा में चिछरमों कहते हैं। इसकी मूल का उपयोग स्थानिक कागज बनाने के काम आता है। स्थानिक कागज तैयार करने हेतु मूल की लुगदी का उपयोग बहुत उपादेय है। पंचांग का उपयोग जलाने की लकड़ी के रूप में किया जाता है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : रूद्रवन्ती, लद्दाखी : ठक्-चुत्-कर, बालती : सरीगामो, मरमुखणी

वानस्पतिक नाम : ***Cicer songaricum*** Staph.

स्वरूप : एकवर्षायु परिसृत शाकीय वनस्पति है। पर्ण :- चणपत्र सदृश एवं स्वाद में अम्ल लवण। ग्रामीण लोग पुष्पित पुष्पों एवं फलियों की सब्जी बनाकर खाते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** पत्र, पुष्प, फल।

प्राप्तिस्थान : लद्दाख में इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक लोग पुष्पों एवं फलियों का उपयोग भोजन सामग्री की तरह करते हैं। लेखक विचार से यह शास्त्रीय रूदन्ती हो सकती है।

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

"चणपत्र समं पत्रं क्षुपंञ्चैव तथाम्लकम्।"
शिशिरे जलबिन्दुनां स्त्रवन्ति रूदन्तिकाम् ।।(*ध. नि.*)

वक्तव्य : निघण्टु ग्रन्थों में वर्णित शास्त्रीय रूदन्ती *Astragalus* की किस्में एवं *Cicer* की किस्मों में से हो सकती है। इस संदर्भ में लेखक ने अपना लेख 'धन्वन्तरि' पत्रिका, अप्रैल 1965 में प्रकाशित किया है। गवेषक विस्तृत जानकारी के लिये देख सकते हैं । रूदन्ती एवं रूद्रवन्ती दोनों द्रव्यों को कुछ विद्वानों ने भिन्न भिन्न माना है। सभी का उल्लेख धन्वतरि पत्रिका अप्रैल 1965 में प्रकाशित लेखं में किया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम :- संस्कृत : अश्वबला, बालती : हिस्पित

वानस्पतिक नाम : ***Medicago sativa*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति, पर्ण :- त्रिपत्रक, मेथी सदृश्य, पुष्प :- नीलाभवर्ण के होते हैं। यह प्राय: खेतों में चारा के रूप में उगाया जाता है। *Medicago* की जंगली किस्में भी यहां पर पाई जाती है। जो निम्न है।

1. *Medicago lupulina* Linn.
2. *Medicago falcata* Linn.

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : समस्त लद्दाख क्षेत्र में ये किस्में पाई जाती है। स्थानिक लोग मवेशियों के लिये चारा के रूप में इन किस्मों का उपयोग करते हैं। यह घोड़े के लिए सबसे अच्छा चारा माना जाता है। संहिताग्रन्थों के लक्षणों के आधार पर इसे शास्त्रीय अश्वबला माना जा सकता है।

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

वात पित्त हरा तिक्ता, लघ्वी श्लेष्मादिरोधिनी।।
मेथिका तत्समं किंञ्चिद्, हिस्फित्थं पुष्टिदं गुरू:।। *(सु.सू. 46-256)*

वक्तव्य : अश्वबला का उल्लेख "सुश्रुत सूत्रस्थान"- 46 वें अध्याय के शाकवर्ग में है। सुश्रुत के टीका कार ड़ल्हण ने अश्वबला के सन्दर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुये कहा है कि **''अश्वबला मेथिका इत्यन्ये''**, **"अश्वबला तुरूष्कदेशे वृहत्पत्रमेथिका भेद एवं हिस्फितथा इति लोके।"** सुश्रुत के अर्श चिकित्सा प्रकरण में, "अश्वबला हिस्फित्थो मेथिका भेद:" यह अर्थ किया है। अश्वबला तुरूष्कदेशीय मेथी के आकार प्रकार के हिस्फित नामक पौधे को कहा है। लद्दाख में बालती एवं दरदी मुसलमान हिस्फित के नाम से इस पौधे का उपयोग करते हैं। हिस्फित यह पर्सियन शब्द है।

अश्वबला घोड़ों के लिये अत्यंत पुष्टिकारक द्रव्य है। रक्षा-सेनाओं को अश्वबला का उपयोग घोड़ों के चारे के रूप में करना चाहिये। इस वनस्पति को भारत सरकार के कृषि विभाग द्वारा चारा के रूप में घोषित करना उपादेय है। पत्रशाक के रूप में भी अश्वबला का उपयोग किया जाना चाहिये, क्योंकि इसमें कैल्सियम की काफी मात्रा विद्यमान है। अन्य कतिपय खनिज भी इसमें पाये जाते हैं। प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट एवं स्नेह उचित मात्रा में इसके पत्तों में पाया जाता है। मेथी एवं अश्वबला में काफी समानता देखी गई है। अश्वबला एवं मेथी दोनों विदेशी शाक है। खाद्यदृष्टि से अश्वबला में विटामिन ए, सी, के और आई, ई अच्छी मात्रा में उपलब्ध है। सुश्रुत में भी अश्वबला के गुणों का उल्लेख है। बीजों का उपयोग चाय के रूप में किया जाता है।

द्रव्यनाम :- तिब्बती : जरद्त-कारपो

वानस्पतिक नाम : ***Thermopsis alpina.***

स्वरूप : यह एक मीटर तक लम्बा ऊर्ध्वसंश्रित पौधा है। पत्र :- कोणीय, मृसण, मृदु, एकान्तर क्रम में होते हैं। पुष्प :- गुच्छों में पीत रंग वाले होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्यअंग** :- पुष्प, पत्र।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में सांकू घाटी, जन्सकार, शाफी 'ला' आदि स्थानों पर पाया जाता है। इसकी दूसरी प्रजाति भी इस क्षेत्र में तथा रूसी 'ला' में पाई जाती है। जिसे *Thermopsis inflata* Cambess. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग : तिब्बत एवं चाईना में इसके पुष्पों एवं पत्तों का उपयोग परम्परागत चिकित्सा में किया जाता है।

लद्दाख हिमालय में इस कुल की अन्य कतिपय औषध उपयोगी वनस्पतियां पाई जाती है। जिनके स्थानिक नाम एवं वानस्पतिक नाम नाम यहां पर दिये जा रहे हैं। इन वनस्पतियों का उपयोग तिब्बती चिकित्सा प्रणाली में किया जाता है। इनके बीजों का बल्य के रूप में उपयोग होता है।

1. जस्द्त-ग्याजबुक् — *Thermopsis barbata.* पुष्प बैंगनी रंग के होते है।
2. स्कीवा — *Sophora moorcroftana* Benth.
3. ख-ऊ-सिन — *Sophora flavescans* Ait.
4. थलका-दुरजे- यन्पा — *Piptanthus concolor* Har.
5. ड्रामासिंग — *Caragana franchetiana.*
6. घिस्तुंग-जामों-सिंग — *Caragana tibetica* Hane.
7. मेथिका भेद — *Trigonella emodi* Benth.
8. *Lotus corniculatus* Linn.
9. तस्क्या, अजश्रृंगी — *Caragana cuneata* Baker.

इस कुल की उपरोक्त औषध उपयोगी प्रजातियां लद्दाख में नैसर्गिक रूप से उपलब्ध है। इनके औषधीय गुण-कर्मो का पता लगाना आवश्यक है।

तरूणीकुल (ROSACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **सेवती**, लद्दाखी : **सेवेमेतुक्-कारपो**, वालती : **छरमंग, स्तरगा**

वानस्पतिक नाम : ***Rosa webbiana*** Wall.

स्वरूप : बहुशाखीय झाड़ीदार गुल्म, पत्र :- मसृण, तट दन्तुर, शाखा कण्टकित, पुष्प गुलाबी होते है। पुष्पभेद से श्वेत, रक्त गुलाबी पीत तीनों किस्में लद्दाख में पाई जाती हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पुष्प, पत्र।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र के निचले भागों में करगिल, मूलवेग, सांकू, चुमांथांग आदि क्षेत्रों में इसकी किस्में पाई जाती है। अन्य किस्में भी लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है। जिनका उपयोग स्थानिक आमची अपनी चिकित्सा में करते हैं। वे निम्न प्रकार है।

1. ग्यासल *Rosa chinensis* Jaeq. syn. *R. indica* इसकी खेती की जाती है। पुष्प पीत।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

2. सेवा *Rosa sericea* Lindl.
3. रौंगसल *Rosa macrophylla* Lindl.
4. संगील *Rosa eglanteria* Linn. मटायन, खरबू, हिमिसगुम्पा में, फूल दो के जोड़ो में।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पुष्पों का उपयोग शिर शूल एवं पैत्तिक विकार में करते हैं। पीले फूल वाले गुलाब के पुष्पों को सुखाकर चूर्ण बनाते हैं, तथा खमीरे की रोटी में इस चूर्ण का उपयोग करते हैं। तिब्बती चिकित्सा में भी पुष्पों का उपयोग कतिपय रोगों पर किया जाता है।

द्रव्यनाम :- तिब्बती : स्पे-लोमा-घु-ओं

वानस्पतिक नाम : ***Chaenomeles Lagenaria***

स्वरूप : मध्यम आकार का गुल्मक, शाखा-कण्टकित, पुष्प नारंगी वर्ण के होते हैं। लद्दाख क्षेत्र में कहीं-कहीं इसकी झाड़ियां पाई जाती हैं। तिब्बती चिकित्सा में छाल एवं मूल का उपयोग किया है।

इसके अतिरिक्त इस कुल की निम्न औषधोपयोगी वनस्पतियाँ भी लद्दाख में पाई जाती हैं, जिनका कि उपयोग स्थानिक आमची अपनी चिकित्सा में करते हैं।

1. दुम्बु-ठक्-चुत्	*Agrimonia pilosa* Linn.	
2. दुम्बु-ठक्-चुत्	*Agrimonia eupatoria* Linn.	मूल का बल्य के रूप में उपयोग
3. सिंगेजिरपा	*Potentilla fulgens.*	पञ्चांग चूर्ण का चाय के रूप में।
4. पिनजंग	*Potentilla fruticosa* Linn.	पत्ते चाय के रूप में प्रयोग किये जाते है।
4. थूओ-यूंची	*Cotonester aculifolium.*	
5. टकपा-सींग	*Pyrus pashia.*	
6. ए-ख़म्बू (खुमानी)	*Prunus mira* Linn.	करगिल में खेती की जाती है।
7. टोमा	*Potentilla anserina.*	
8. कण्टेकारी	*Rubus ellipticus.*	
9.	*Rubus saxatilis* Linn.	

ये उपयोगी किस्में लद्दाख हिमालय में पाई जाती है। जिनका तिब्बतीय चिकित्सा प्रणाली में उपयोग किया जाता है।

पाषाणभेदकुल (SAXIFRAGACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत/तिब्बती : सुमंतिक

वानस्पतिक नाम : ***Saxifraga sibirica*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पत्र :- मसृण, एकान्तर, पुष्प :- गुलाबी वर्ण के, गुच्छों वाले। अन्य किस्म भी यहाँ पायी जाती हैं। जिसे *S. pasumensi* Marg. कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र की सभी घाटियों में ऊंचे स्थानों पर, विशेषकर फोटू-'ला', मटयान, जन्सकार आदि क्षेत्रों में ये किस्में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग : तिब्बती चिकित्सा-प्रणाली में इनके पञ्चांग का उपयोग किया जाता है।

द्रव्यनाम : तिब्बती : सेरगुत् छेरमा-मैन्तोक्

वानस्पतिक नाम : ***Ribes emodens*** **Reh.**

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है । काण्ड :- मृदु, पत्र :- एकान्तर, पुष्प :- श्वेताभ गुलाबी रंग के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में इसकी कई किस्में पायी जाती हैं।

1. *Ribes orientale* Desf. असकुटर
2. *R. grossulalaria* Linn.

स्थानिक प्रयोग : आचमी उदर विकार, शिरशूल में पंचाग का उपयोग करते हैं।

व्यक्तव्य : पाषाणभेद कुल की कई अन्य औषधोपयोगी वनस्पतियां भी इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानो पर पाई जाती है। इसके वानस्पतिक नाम इस प्रकार है :

1. पाषाणभेद *Bergenia stracheyi* Engl
2. पाषाणभेद *Saxifraga ligulata* Wall.
3. *Parnassia ovata* Leded.

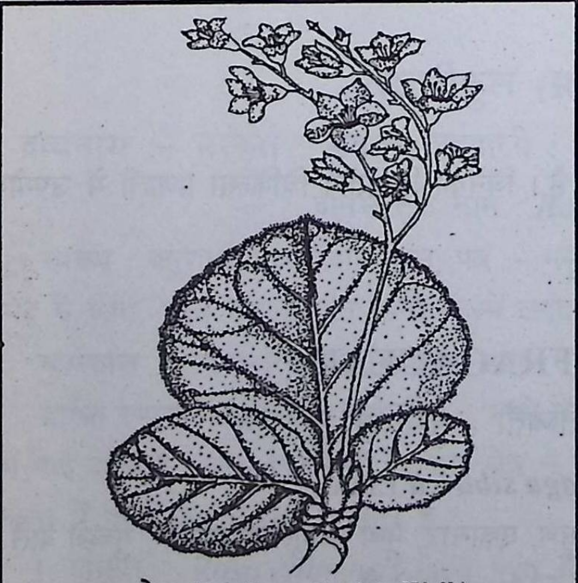
पाषाण भेद (*Saxifraga ligulata* **Wall.**)

पाषाण भेद (***Bergenia stracheyi*** **Engl.**)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

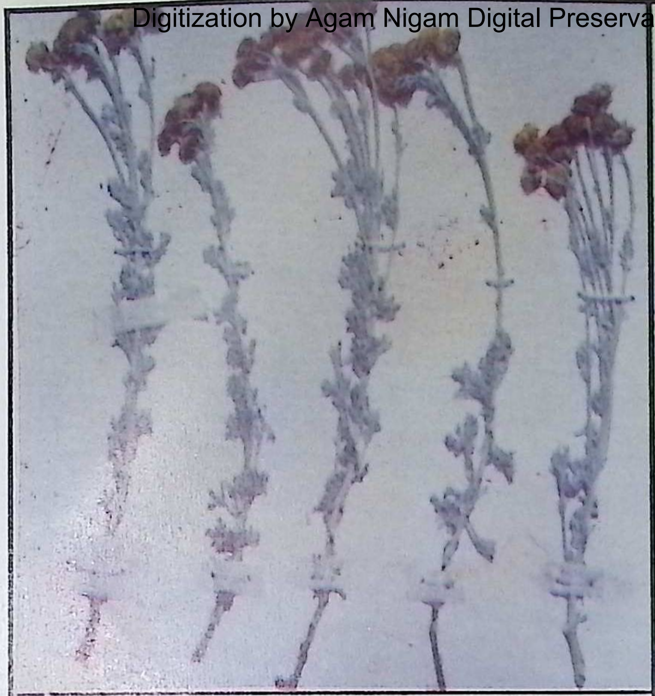

चठी *Cremanthodium decoisnei*

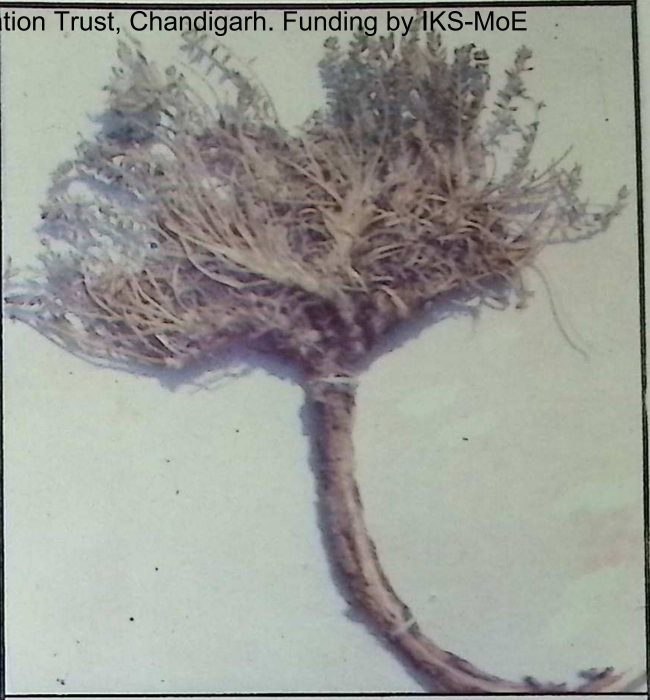

रुद्रवन्ती *Astragalus tibetanus.*

भूतकेश *Carydalis govaniana.*

पांगची *Saussurea glacialis.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

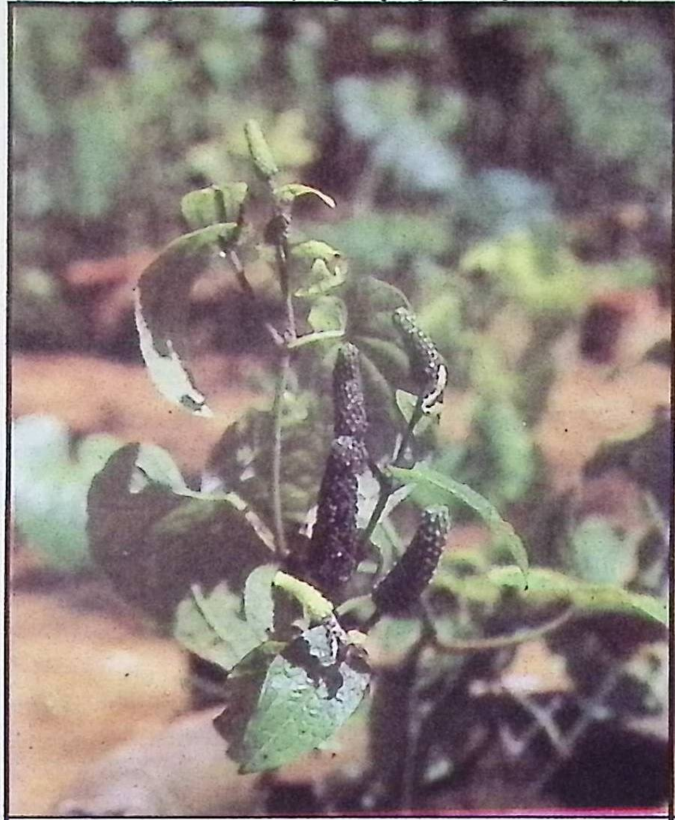

पिप्पली *Piper longum.*

अश्वगन्धा *Withania somnifera*

काकड़ासिंगी *Pistacia integerrima*

श्योनाक *Oroxylum indicum.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रतनजोत *Arnebia euchroma.*

चिरायता *Swertia purpurasens.*

आमील *Hippophae rhamnoides.*

मंजीष्ठा *Rubia cordifolia.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

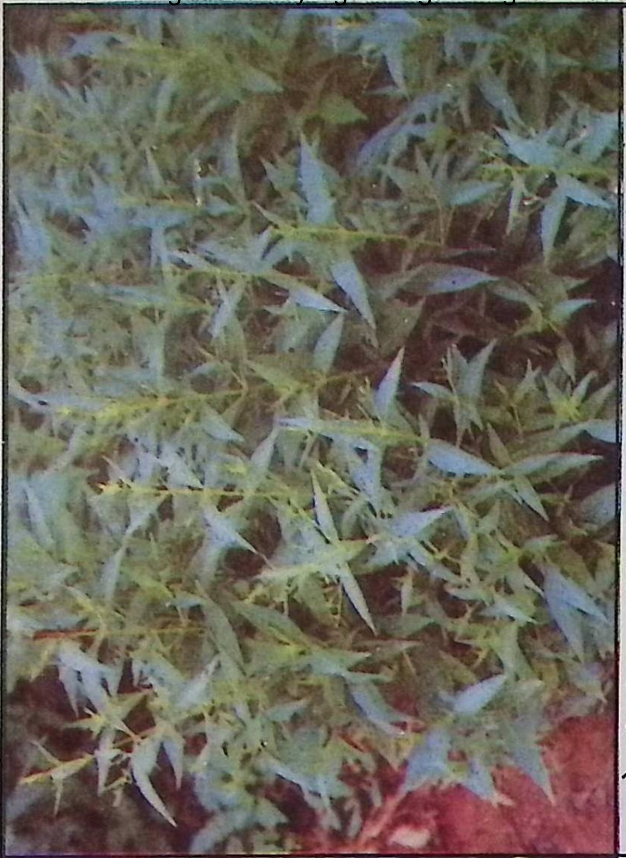

कालमेघ *Andrographis paniculata.*

कमल *Nymphaea stellata.*

सनाय *Cassia angustifolia.*

सफेद चन्दन *Santalum album.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CRASSULACEAE

द्रव्यनाम :- तिब्बती : छन्-उची, लद्दाखी : लुगमिक्

वानस्पतिक नाम : ***Sedum tibeticum stracheyi*** Hook.F. & Thoms.

स्वरूप : एकवर्षायु काण्ड, मूल बहुवर्षायु, पर्ण : क्रमानुसार, मृदु, मांसल, काण्ड भंगुर, मूल रक्ताभ वर्ण, पुष्प :- श्वेत-रक्त वर्ण के होते हैं। कतिपय आमची इसे सोलो कारपो भी कहते है।

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग :** मूल, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : समस्त लद्दाख क्षेत्र में रूपसू, सूरू एवं ऊँचाई वाले स्थानों पर इसकी कई प्रजातियां पथरीले स्थानों पर पाई जाती है। आमची पुष्पभेद से कारपो, मरपो, सरपो तीन किस्में मानते हैं।

1. *Sedum multicaule* Wall.
2. *Sedum asiaticum* Spreng. - सोलो-मारपो
3. *S. trifidum* Wall.

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पत्तों का चूर्ण लस्सी में डालकर सेवन करते हैं। पञ्चांग का उपयोग शाक के रूप में करते हैं। मूल का उपयोग वामक एवं कफघ्न के रूप में किया जाता है।

व्यक्तव्य : आयुर्वेदिक संहिताओं में इन उपरोक्त प्रजातियों का उल्लेख नहीं हैं। इन द्रव्यों के आयुर्वेदिक नाम रूप परिचय के सन्दर्भ में विद्वानों को विचार करना चाहिये।

कोषातकीकुल (CUCURBITACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : कारवेल्लक, हिन्दी : करैला, लद्दाखी : सेरमे-मैन्तोक

वानस्पतिक नाम : ***Momordica charantia*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु, आरोही, लता जाति की वनस्पति है। इसकी शाक हेतु खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची करैले के पुष्पों का उपयोग हरड़(हड़), बुआं (अतीस),पलेका, रेस्कुन आदि कतिपय द्रव्यों का समभाग चूर्ण शिरशूल में प्रयोग करते हैं। इन लोगों का मानना है कि यह तीव्र वेदनाशामक औषधि है।

ONAGRACEAE

द्रव्यनाम :- लद्दाखी/तिब्बती : जरपन-घुरची

वानस्पतिक नाम : ***Epilobium angustifolium*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। कांड ऊर्ध्वसंश्रित। पर्ण :- एकान्तर, पुष्प :- पीतवर्ण के, ऊर्ध्व, काण्डसंश्रित।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** पुष्प।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र के ग्रामीण भागों के आसपास यह वनस्पति पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : तिब्बती चिकित्सा में पुष्पों का उपयोग शिरःशूल एवं उदररोगों में किया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CAMPANULACEAE

द्रव्यनाम :- तिब्बती : जरदूत-दोर्जे

वानस्पतिक नाम : ***Codonopsis nervosa.***

स्वरूप : यह शाकीय वनस्पति है। स्थानिक आमची इसका भी प्रयोग औषध के रूप में करते है। इसके अतिरिक्त *Codonpsis ovata* Benth. भी शुरू घाटी में पाई जाती है।

इस कुल अन्य औषधोपयोगी वनस्पतियाँ भी लद्दाख क्षेत्र में पायी जाती है। जो निम्न है

1. *Campanula latifolia* Linn.

वत्सनाभ कुल (RANUNCULACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **अतिविषा,** हिन्दी : **अतीस,** तिब्बती : **बुआं,** लद्दाखी : **पौंकर**

वानस्पतिक नाम : ***Aconitum heterophyllum*** Wall.

स्वरूप : काण्ड :- मृदु, एकवर्षायु, मूलकन्द :- द्विवर्षायु, मूल :- स्वाद में कड़वा (तिक्त), भंगुर, तोडने पर श्वेत वर्ण का, पत्र :- विभिन्न आकारों में, ताम्बूलाकार या लट्वाकार, पत्रतट :- दन्तुर, पुष्प :- हरित-नीलाभ वर्ण के, फनाकार, फल :- पंचकोषीय, बीज :- संख्या में 20 तक, चपटे, पकने पर कृष्ण वर्ण के।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूलकन्द।

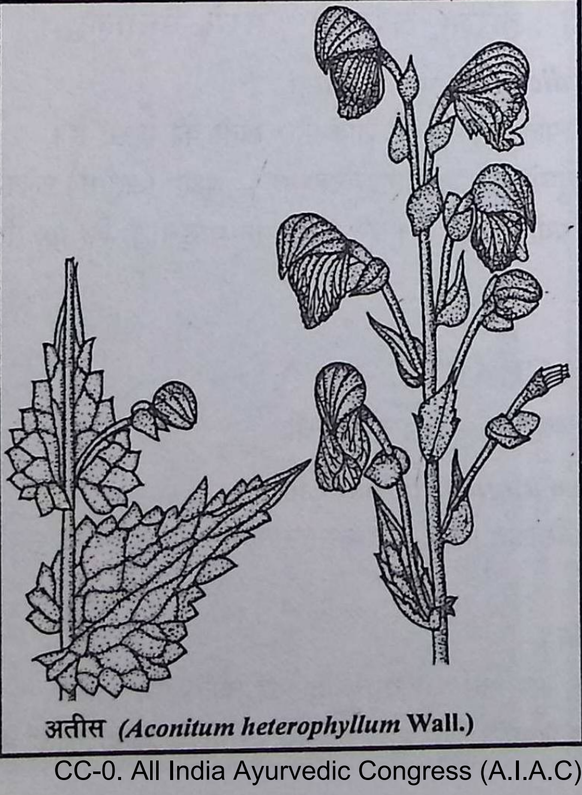

अतीस (*Aconitum heterophyllum* **Wall.**)

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति लेह जनपद के जोजीला, द्रास, शापी 'ला', जन्सकार, शुरूघाटी, कारजा, मूलवेग, बुधखरबू आदि में घास वाले ढलानों पर 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई पर सुलभ है।

लेह जनपद में अन्य निर्विष प्रजाति भी 3,000 मीटर की ऊँचाई पर पाई जाती है। जिसे स्थानिक आमची पौंगभर या वौगसर कहते है। जिसे वनस्पति शास्त्र के आधार पर *Aconitum violaceum* Jacq. कहते हैं। यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसके मूलकन्द भी निर्विष होते हैं। आयुर्वेदिक निघण्टुकारों ने इसे प्रतिविषा कहा है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूलकन्द का उपयोग उदरविकार, अतिसार एवं ज्वरों में करते हैं। अर्श (बवासीर) में मूलकन्द त्रिफला के साथ प्रयोग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

करते हैं। बच्चों के अग्निमांद्य एवं हरे-पीले दस्त एवं उल्टी आने पर मूलकन्द चूर्ण का मधु के साथ प्रयोग करते हैं।

वक्तव्य : लद्दाखी आमची श्वेत, कृष्ण एवं रक्तवर्ण भेद से तीन किस्म का अतिविषा (पौंकर) मानते हैं। ये लोग श्वेतवर्ण के अतीस को पौंकर एवं रक्तवर्ण के अतीस को वौंगसर एवं कृष्णवर्ण के अतीस को पौंगभर कहते हैं। राजनिघण्टुकार ने भी श्वेत, कृष्ण एवं अरूण (रक्त) भेद से तीन किस्मों का उल्लेख किया है।

आयुर्वेदीय गुण-धर्म

अतिविषा श्वेतकन्दा, विश्वाश्रृंगी च भंगुरा।
विरूपाश्याम कन्दा च, विश्वरूपा महौषधि।।
वीरा प्रतिविषा चान्द्री विषाश्वेतबचास्मृता।
अरूणोपविषा चैव, ज्ञेया सप्तदशाह्वय।। *(राजनिघण्टुः)*
कटूष्णाऽतिविषातिक्ता, कफपित्त ज्वरापहा।
आमातिसार कासघ्नी, विषच्छद्रि विनाशनी।। *(धन्वन्तरि नि०)*

टिप्पणी : आज हिमालय में यह प्रजातियाँ अनैतिक विदोहन के कारण लुप्त होती जा रही है। अतः इसकी खेती एवं प्राकृतिक नैसर्गिक रूप से बीजारोपण की दिशा में कार्य करना अत्यन्त आवश्यक है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **श्रृंगीविष**, हिन्दी : **वत्सनाभ**, तिब्बती/लद्दाखी : **चैन्दुक, बुआं नगपो**

वानस्पतिक नाम : ***Aconitum balfourii*** Stapf.

वानस्पतिक स्वरूप : काण्ड :- मृदु, तलोत्थ, 30 से.मी. लम्बा, एकवर्षायु, मूल :- कन्दिल, श्रृंग सदृश, विषैला, द्विवर्षायु, पर्ण :- खण्डित, हस्ततलाकार, एकान्तर, पुष्प :- फणाकार, नीलाभवर्ण के। फल-पंचकोषीय, बीज :- चपटे 10 से 12 की संख्या में होते हैं। कन्द विषैला होता है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग :** मूलकन्द, पुष्प।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति कम मात्रा में सापी 'ला', शुरूघाटी, कारजा, जन्सकार आदि क्षेत्रों में 3,300 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक पाई जाती है।

विशेष : लद्दाख क्षेत्र में इस वंश की अन्य प्रजातियाँ भी कम मात्रा में पाई जाती है। जो निम्न है।

1. *Aconitum naviculare* Stapf.
2. *Aconitum rotundifolium* Kar.
3. *Aconitum napellus* Linn.
4. *Aconitum chasmanthum* Staph.

इसके अतिरिक्त चाईना में *Aconitum kusezoffii* पाई जाती है। जिसका भी तिब्बती चिकित्सा में उपयोग होता है।

आमची आकृति भेद से पांच प्रकार का वत्सनाभ (विख) मानते हैं। जो कि इस प्रकार से हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

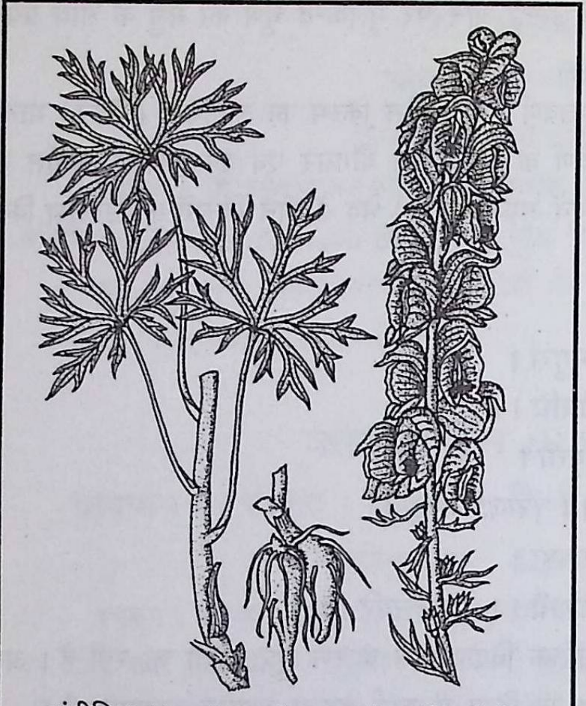

श्रृंगीविष (*Aconitum chasmanthum* Staph.)

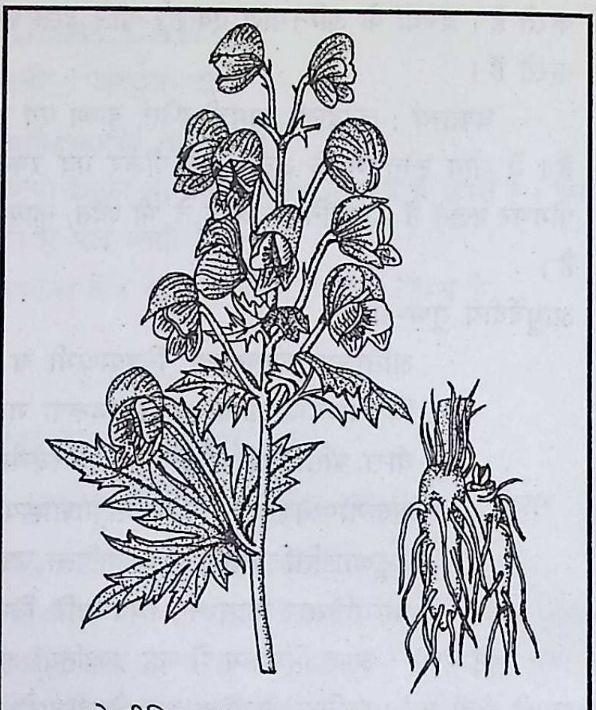

मोहरीविष (*Aconitum balfourii* Stapf.)

1. चैन्दुक, 2. दुचीलोमा, 3. हाला 4. जिन्वा, 5. रतुक (श्वेताभपुष्प)

तिब्बती में इन्हें स्याच्छिन, वौंगनक्, मेंन्ताक एवं सरपों कहते हैं। यह सभी तीव्रमारक विष है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची सविष मूलकन्दो का शोधन कर कतिपय ज्वरहर योगों में चूर्ण, वटी के रूप में प्रयोग करते हैं। यह औषधि वातवेदनाशामक, वेदनाहर एवं स्थानिक संज्ञाहरण के रूप में उपयोगी है। पुष्पों का भी उपयोग ज्वरहर योगों में करते हैं।

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

विषं प्राणहरं प्रोक्तं, व्यवायि च विकासि च।
आग्नेयं वातकफहृत्, योगवाहि मदापहम्।। *(भा०प्र०नि०)*
कालकूटं वत्सनाभ, श्रृंगकश्च प्रदीपनः।
हालाहलो ब्रहमपुत्र हारिद्र सक्तुकस्तथा।।
सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता, विषभेदा अमीनव।। *(धन्वन्तरि नि०)*

सुश्रुत कल्प-2 में वत्सनाभ का उल्लेख करते हुये आचार्य ने कहा है कि वत्सनाभ विष चार प्रकार के, मुस्तक विष दो प्रकार के और सर्षपविष 6 प्रकार के होते हैं। यथा :

चत्वारि वत्सनाभानि, मुस्तकै द्वे प्रकीर्तिते।
षडश्चैव सर्षपाण्याहुः, शेषाण्येवैत्भवेत्।। *(सु.क.अ. 2/6)*

लेखक के विचार से वत्सनाभ, श्रृंगीविष, हालाहल, हारिद्र, सक्तुक, कालकूट सभी किस्में विषैली है। इन पर अनुसंधान एवं पहचान की आवश्यकता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitized by Agamnigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **पीतमूला, चक्षुष्या,** लद्दाखी : **चारव्यू**

वानस्पतिक नाम : ***Thalictrum alpinum*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु, तलोत्थ, उर्ध्वसंश्रित कांड, मूल-बहुवर्षायु, पर्ण :- पक्षाकार, संयुक्त, पत्रक गोलाई लिये हुये, गोल, तट दन्तुर होते हैं। पुष्प छोटे और श्वेताभ होते हैं। मूल स्तम्भ गांठदार पीतवर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूल।

प्राप्ति स्थान : लेह-लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति द्रास, जोजी 'ला', सापी 'ला', रूपसू, कारजा आदि स्थानों में पाई जाती है। इस वंश की अन्य किस्में भी लद्दाख में पायी जाती है। यथा :

1. *Thalictrum minus* Linn. मतायन में
2. स्पोंस्पीन *Thalictrum rutaefolium* Hook. f. & Thoms. नुब्रा क्षेत्र में
3. ममीरा *Thalictrum foliolosum* DC.

स्थानिक प्रयोग : मूल चूर्ण का उपयोग उदर रोगों में किया जाता है। नेत्र रोगों एवं विषमज्वर में भी मूल का उपयोग करते हैं। देहरादून, अमृतसर के बाजार में पियारांगा एवं ममीरी के नाम से *Thalictrum foliolosum* के मूल मिलते हैं। कुछ चिकित्सक त्रायमाण के नाम से मूल का उपयोग करते हैं।

द्रव्यनाम :- लद्दाखी/तिब्बती : **इमोंग, ठओ-कारपो,** बालती : **खूटा**

वानस्पतिक नाम : ***Clematis montana*** Buch-Ham.

स्वरूप : आरोही लता जाति की वनस्पति है। पर्ण :- विपरीत, संयुक्त, पत्रनोक लम्बी, सूत्रसदृश, पुष्प :- श्वेताभ, गुलाबी वर्ण के होते हैं।

यहाँ एक अन्य औषधोपयोगी प्रजाति भी पायी जाती है। जिसे *Clematis orientalis* Linn. कहते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर।

प्रयोज्य अंग : पञ्चांग, मूल।

प्राप्तिस्थान : लद्दाख में यह दोनो वनस्पतियाँ सिन्धु (इन्ड़स) घाटी में 4,500 फीट से 7,000 फीट तक की ऊँचाई पर छायादार स्थानों में पायी जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग चर्म रोग में करते हैं। मूल में विषैला प्रभाव देखा गया है।

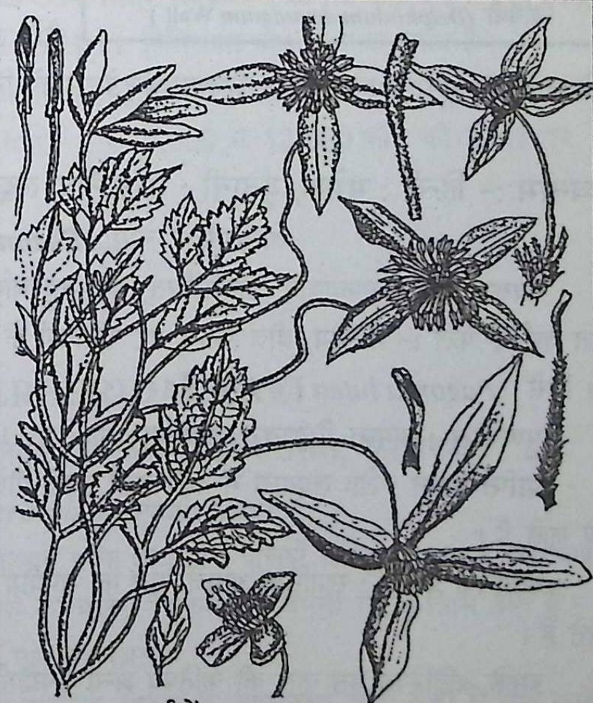

ईमोंग (*Clematis montana* Buch Ham.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम :- लद्दाख/तिब्बती : चारगोस्पास, लदारमैन्तोक

वानस्पतिक नाम : ***Delphinium brunonianum*** Royle.

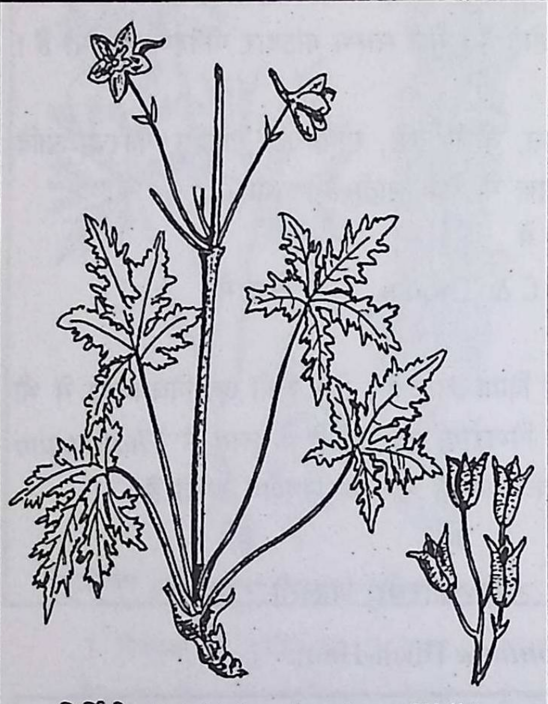

निर्विषी *(**Delphinium denudatum** **Wall**)*

स्वरूप : एकवर्षायु उर्ध्वसंश्रित कांड, पर्ण रोमिल, एकान्तर, सवृन्त, पुष्प-फणाकार, गुच्छों में नील वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पुष्प।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति जोजी 'ला', द्रास, शुरूघाटी, करगिल, खालसी, रूपसु, आदि स्थानों पर पाई जाती है। इसके अतिरिक्त इस वंश की अन्य किस्में भी इस क्षेत्र में पाई जाती है। यथा:

1. *Delphinium cashmirianum* Royle.
2. *Delphinium altissimum* Wall .
3. *Delphinium denudatum* Wall . निर्विषी (जदवार)

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पुष्पों का उपयोग शिरोव्याधि, अनिद्रा, उदरविकारों में करते हैं। पञ्चांग विषैला होता है। मवेशियों के लिये यह पौधा मारक है। ये पौधे शुरू घाटी, बुद्धखरबू, लेह आदि सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। यूनानी हकीम *डेलफीनियम डेनुड़ेटम* को निर्विषी मानते है।

द्रव्यनाम :- हिन्दी : ममेक, यूनानी : उदसलीव, लद्दाखी/तिब्बती : पद्मा-सरपो, पद्मा-मारपो

वानस्पतिक नाम : ***Paeonia emodi*** Wall.

स्वरूप : कांड एकवर्षायु, ऊर्ध्वसंश्रित, मूल-बहुवर्षायु, कन्दिल, पर्ण :- खंडित, पुष्प :- कमल सदृश, श्वेत वर्ण के फल :- कोषीय, बीज पकने पर रक्तवर्ण के होते हैं। इसकी अन्य प्रजाति भी यहां पायी जाती है। जिसे *Paeonia lutea* Fr. कहते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्ति स्थान : लेह लद्दाख में कहीं-कहीं इसके पौधे पाये जाते हैं। जम्मू-कश्मीर में इसके पौधे सर्वत्र पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग निद्रानाश, मानसिक विकार एवं रजोदोष में प्रयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस कुल की कतिपय अन्य उपयोगी वनस्पतियाँ भी इस क्षेत्र में पाई जाती है, जो कि प्राय: विषैली होती है। स्थानिक आमची इन वनौषधियों का उपयोग बाहय और आभयन्तरिक रूप में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agamnigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

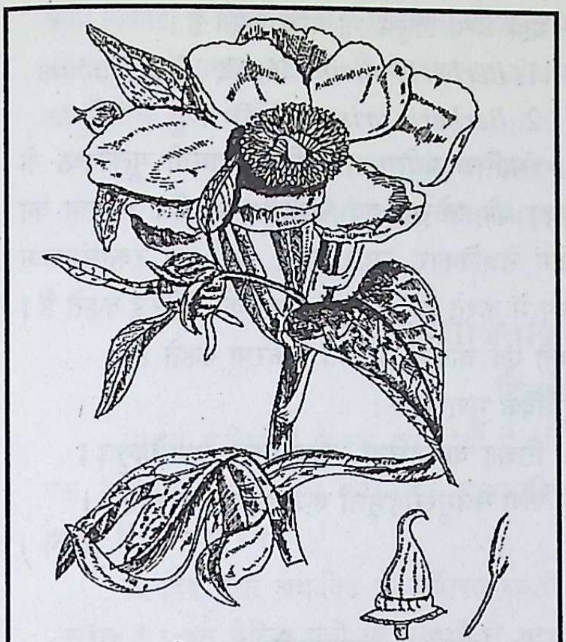

उदसलीव (*Paeonia emodi* Wall.)

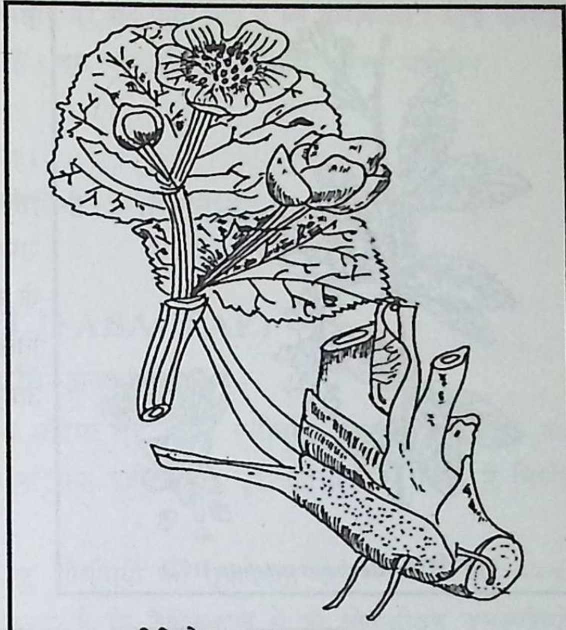

ममीरी भेद (*Caltha palustris* Linn.)

1. चेच्छा	*Ranunculus hirtellus* Royle.	यह लद्दाख में सर्वत्र पाया जाता है।
2. काण्डीर भेद	*Ranunculus affinis* R.Br.	यह खरबू में पाया जाता है।
3.	*Ranunculus pulchellus* C.A. Mey.	लद्दाख में ऊँचाई वाले स्थान में सर्वत्र।
4. स्गों-सुर-पका	*Anemone rivularis* Buch-Ham.	तिमिसगम क्षेत्र में पाया जाता है।
5. शुक्का (अगेली)	*Anemone rupicola* Combess.	रूसी 'ला' एवं जोजी 'ला' से मतायन तक
6. ग्यारूची तुगलो	*Cimicifuga foetida* Linn.	7,000 से 12,000 फीट की ऊँचाई पर
7. ममीरी भेद	*Caltha palustris* Linn.	
8.	*Ranunculus cymbalaria* Linn.	

दारूहरिद्राकुल (BERBERIDACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : दारूहरिद्रा, लद्दाखी/तिब्बती : किरसिंग, खिचरमा

वानस्पतिक नाम : ***Berberis vulgaris*** Linn.

स्वरूप : कण्टकित गुल्मक, मूल से अनेक शाखायें वाला होता है। पत्तियाँ अतिमुख, पत्रतट कांटेदार होते हैं। काण्ड एवं मूल पीतवर्ण का, पुष्प :- पीतवर्ण के, फल :- पकने पर बैंगनी एवं रक्ताभ होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूल, मूलछाल।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में इसके गुल्मक करगिल, शुरूघाटी, जन्सकार आदि क्षेत्रों में पाये जाते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दारूहरिद्रा ***(Berberis aristata* DC.)**

है। यहाँ अन्य किस्मे भी पायी जाती है।

1. *Berberis ulicina* Hook . f. & Thoms
2. *Berberis aristata* DC.

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूलकाष्ठ के घनसत्व को स्केरपा एवं खण्टा कहते हैं। स्केरपा का उपयोग नेत्रविकार, उदरविकार, अर्श एवं रक्तसंग्राहक के रूप में करते हैं। पके हुये फलों को स्कीरडू कहते हैं। तिब्बती एवं चाइना में संगी स्किरपा कहते हैं।

आयुर्वेदिक गुण धर्म :

तिक्ता दारूहरिद्रा स्याद्रूक्षोष्णा व्रणमेहनुत्।
कर्ण नेत्रमुखोद्भूतां रूजं कण्डूंञ्चनाश्येत्।।
(घ.नि.)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **वन्यकर्कटी,** हिन्दी : **वनककड़ी**

लद्दाख/तिब्बती : **डेमेकुशु, ओल मोसे-लोमा छुआ, वालती-रदांणी**

वानस्पतिक नाम : ***Podopyllum hexandrum*** Royle.

syn. ***P. emodi*** Wall. ex Hook. f. & Th.

स्वरूप : एकवर्षायु तलोत्थ वनस्पति है। मूल बहुवर्षायु, भौमिककांड गांठदार, लम्बी मूलों वाला, अजीब किस्म की गंध वाला, पीताभ वर्ण का होता है। पर्ण :- खंडित, हस्ततलाकार, मसृण, पुष्प :- श्वेत वर्ण के होते हैं। फल :- मांसल, 10-12 बीज वाले, पकने पर रक्तवर्ण के, स्वाद एवं गंध में ककड़ी सदृश होता है। इसके कारण इसे वनककड़ी भी कहते हैं। तिब्बती में इसको ओल-मोसे लोमा-छुआ कहते हैं।

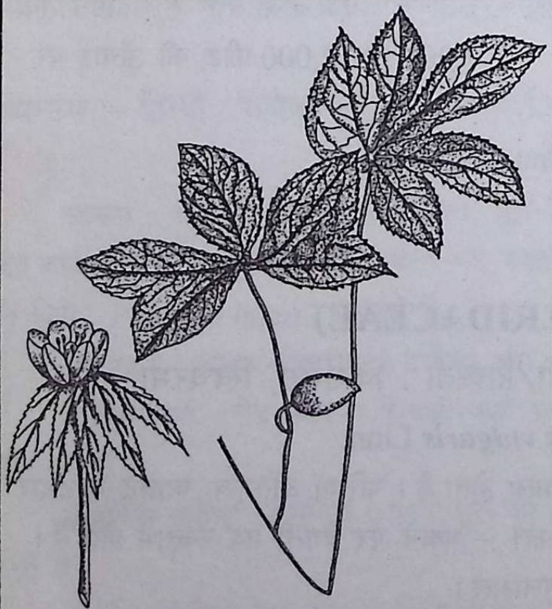

वन्यकर्कटी ***(Podopyllum hexandrum* Royle.)**

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर।

प्रयोज्य अंग : मूलगांठ, फल।

फलकाल : पुष्पकाल के बाद।

प्राप्तिस्थान : यह लद्दाख क्षेत्र में करगिल, शुरूघाटी, रूपसू, शांकू, शापीला आदि स्थानों पर पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक लोग पके हुये फलों को खाते हैं। फलों का उपयोग छंग में भी करते हैं। मूल का उपयोग तिब्बती आमची पित्तविकार, विरेचक एवं विद्रधि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आदि विकारों में भी करते हैं। आधुनिक खोजों के आधार पर यह पाया गया है कि वन्यकर्कटी आंत्र कैन्सरजन्य कीटाणुओ के प्रसार को रोकने में कारगर औषध है। इस पर अग्रिम शोधकार्य करना चाहिये।

आयुर्वेदिक गुण धर्म :

वन पुष्पिकातिक्ता, कटूष्णपित्तरेचनी।
रक्तार्बुदकृमीन् हन्ति, कीलज्वरक्तशोधिनी।। *(प्रियनिघण्टु)*

अपराजिताकुल (FABACEAE)

दिव्यौषधि-अजश्रृंगी

प्रस्तुत आलेख में लेखक द्वारा वेदों में वर्णित संदिग्ध एवं अज्ञात वनौषधि अजश्रृंगी का वैदिक कालीन पक्ष, संहिताओं में उपलब्ध संदर्भस्थल, वानस्पतिक परिचय, प्राप्तिस्थान एवं पहिचान की दिशा में निर्णय का प्रयास किया गया है।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के कतिपय स्थलों पर औषधियों की उपादेयता के सन्दर्भ में कई मन्त्रों का उल्लेख है। इन वैदिक ग्रंथों के सन्दर्भों से पता चलता है कि वैदिककाल से ही लोकजीवन वनस्पतियों पर आश्रित रहा है जिसके कारण मनुष्य अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति वनौषधियों द्वारा करता रहा है। वस्त्र, अंगराग, स्नान, अनुलेपन तैल, आच्छादन, श्रृंगारसाधन की सामग्री एवं काष्ठकला आदि कतिपय दैनिक जीवन की आवश्यक सामग्री की पूर्ति इन्हीं वानस्पतिक द्रव्यों के माध्यम से करता रहा है। यही कारण था कि वैदिक काल में औषधियों की उपादेयता एवं रक्षा हेतु अनेकों मन्त्रों का उल्लेख है। औषधि द्रव्यों के वर्गीकरण में भी प्राचीनों ने पत्र-पुष्प, फल, काण्ड, शुन्ग, प्ररोह आदि अवयवों के गुण-धर्मों का अध्ययन करके वनस्पति-वानस्पत्य, वीरूध अवयव भेद से एवं अपुष्प-सपुष्प, अफला-फलनी क्रम से औषधियों का विभाजन किया है। पर्ण एवं फलों की विशिष्ठ रचना एवं आकृति पर भी प्राचीनों ने विशेष ध्यान दिया है, यही कारण है कि श्रृंगाकार सदृश तीक्ष्ण गन्ध वाले द्रव्यों का नाम तीक्ष्णश्रृन्गी या अजश्रृंगी आदि पर्याय विशेषज्ञों ने दिया। अथर्ववेद में अजश्रृंगी का उल्लेख आया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा जी ने द्रव्यगुण विज्ञान चतुर्थ भाग में वैदिक औद्भिज द्रव्यों के सन्दर्भ में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं जो कि अज्ञात एवं संदिग्ध द्रव्यों की खोज की दिशा में नवीन प्रयास है। श्री शर्मा जी ने उक्त पुस्तक में लिखा है कि वेदों की भाषा दुरूह होने के कारण उसका सही अर्थ करना कठिन है क्योंकि वेदोक्त मन्त्रों में संकेत रूप से औषधियों का उल्लेख मिलता है। वैदिक शब्द अनेकार्थबोधक होने से विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ करने के कारण वनस्पति द्रव्यों की पहिचान जटिल हो गयी है। जिसमें अजश्रृंगी नामक वनौषधि भी है।

अजश्रृंगी का अथर्ववेद के चतुर्थकाण्ड के 39 वें सूक्त एवं आठवे काण्ड के सातवें सुक्त में अजश्रृंगी, तीक्ष्णश्रृंगी का उल्लेख है। इन शब्दों के साथ एक ही मन्त्र में अराटकी का भी निर्देश किया है। जो कि अजश्रृंगी का विशेषण प्रतीत होता है। वेदोक्त-मन्त्रों के आधार पर यदि अजश्रृंगी को औषधि बोधक द्रव्य मान लिया जाय तो यह वीरूध जाति की उग्रगन्ध युक्त वनस्पति हो सकती है। वीरूध द्रव्यों में क्षुप (शाकीय द्रव्य) एवं लता सदृश द्रव्यों का समावेश होता है। अजश्रृंगी प्रसरक्षुप विशेष वीर्यवती अपनी तीक्ष्ण गन्ध से अप्सराओं,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गन्धर्वो एवं राक्षसों को मुग्ध करने वाली (जीवाणुनाशक) कही गयी है। यथा : **''अजश्रृंगी अत्युत्कटगन्धतया एवं तीक्ष्ण गन्ध विशेषतया अजश्रृंगी कथ्यते''** एवं **''अजस्यछागस्य श्रृंगमिवफलं यस्य सा अजश्रृंगी''** अर्थात् जिसके फल अज श्रृंग के आकार सदृश हों उसे अजश्रृंगी कहते हैं । श्रृंगाकार तीक्ष्ण गन्ध होने से तीक्ष्णश्रृंगी भी कहते हैं। **''तीक्ष्णे उग्रगन्धे श्रृंन्गा कृति फले यस्या''** । रक्षोध्न होने के कारण इसे अराटकी भी कहते हैं, यथा :- **''अराः हिंसकःताम् आट्टयती उच्चाटयति इति''** । वेदों में जलीय स्थानों पर मिलने वाली औषधि, विशेषकर संकेत अजश्रृंगी के लिये उदकात्मान दिया है। सम्भवतः यह जलीय स्थानों, नमदार स्थानों पर मिलने वाली वनस्पति है जैसा कि पूर्व प्रसंग में दिया गया निर्देश कि वेदोक्त मन्त्रों के शब्दार्थ दुरूह होने के कारण अनेकार्थ होते हैं, जिसे संदर्भो के आधार पर विद्वानों को निर्णय करना है, यदि अजश्रृंगी का शाब्दिक अर्थ जीवात्मा का दुख काटने वाला, 'तीक्ष्णश्रृंगी' बड़ी तेज वाली शक्ति या रोग को काटने वाला या तीक्ष्णश्रृंगी बड़ी तेजवाली शक्ति परमेश्वर है, ऐसा अर्थ किया जाय तो यह परमेश्वर बोधक विशेषण है। औषधि प्रकरण में अजश्रृंगी का उल्लेख होने से लेखक के विचार से यह द्रव्य बोधक है। वेदों में मणि-मन्त्र एवं औषध का जो विधान है उसका मुख्य प्रयोजन वनौषध द्रव्यों से ही है ऐसे कतिपय मंत्रों का उल्लेख वेदों में मिलता है इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि वेदोक्त अजश्रृंगी हिमालय के देवलोक (तिब्बत के सीमांत क्षेत्रों) में उपलब्ध है। तीक्ष्णगन्ध विशेष शाकीय, प्रसर पौधा एवं फलियां अजश्रृंगी सदृश होती है, वह अजश्रृंगी है। मुझे वनौषधि सर्वेक्षण कार्यकाल में हिमाचल प्रदेश के लाहुलस्पीती, लेह-लद्दाख के सीमान्त क्षेत्रों, हिमनदों, शिखरों पर ऐसी उपयोगी वनौषधि का पता लगा है। जो कि वेदोक्त अजश्रृंगी हो सकती है। तिब्बती एवं भोट भाषा में इस बूटी को तस्क्या, तास्कया कहते हैं। यह वनस्पति उग्र सुगन्धित एवं प्रसर जाति की है। और तिब्बती चिकित्सा में इसका प्रयोग होता है।

अजश्रृंगी का संहितोक्त पक्ष

चरक संहिता - विमान स्थान-अ. 8/144, चिकित्सा स्थान 1/4,6,30/290, कल्पस्थान 11/12, 12/11,36, सुश्रुत संहिता सू.-36/6, 12, 38/72, 44/11, चि.-17/14 अष्टांग हृदय चि.-8/57, 17/37, अष्टांग संग्रह सू. 8/77, 12/61, 14/4, 18/23, चि. 17/29, 19/18, कल्प-2/48, उ.-1/68, 28/41, 30/36

चरक ने मूलिनी औषधीयों के साथ अजश्रृंगी का उल्लेख किया है एवं श्यामादिगण के विरेचनद्रव्यों तथा द्रोणी-प्रावेशिक रसायन द्रव्यों के साथ अजश्रृंगी का उल्लेख है। सुश्रुत ने वरूणादिगण में अजश्रृंगी एवं मेषश्रृंगी का एक साथ उल्लेख किया है। अष्टांग संग्रहकार ने भी वल्ली (पंचमूल) द्रव्यों, विषघ्न द्रव्यों एवं व्रणप्रतिषेध चिकित्सा में अजश्रृंगी का उल्लेख किया है। इन संहिताग्रन्थों के टीकाकारों चक्रपाणि, डल्हण, गयदास, इन्दु आदि विद्वानों ने अजश्रृंगी से भिन्न-भिन्न अर्थ किया है, यथा :

"अजश्रृंगी-विषाणिका"
"अजश्रृंगी-मेटिक कर्कटश्रृंगी इत्येपरे"
"अजश्रृंगी कर्कटश्रृंगी उत्मारिणी इत्यऽन्ये"
"अजश्रुंगी कर्कटश्रृंगी अजमेठिका इतिलोके"

धन्वन्तरि निघण्टुकार ने अजश्रृंगी को वामावर्ता एवं मेंषश्रृंगी को दक्षिणावर्ता लता विशेष लिखा है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपर्युक्त वैदिक कालीन एवं संहिता कालीन संदर्भ स्थलों के अवलोकन करने पर निम्न शंकायें उत्पन्न होती हैं। यहाँ शंकाओं का भी समाधान करने का प्रयास किया गया है।

शंकायें : 1. क्या वैदिक अजश्रृंगी संहितोक्त अजश्रृंगी है?

2. अजश्रृंगी, मेषश्रृंगी एवं कर्कटश्रृंगी एक ही द्रव्य हैं या भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं?

समाधान

लेखक के विचार से अजश्रृंगी के बारे में निर्णय करने से पूर्व यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या अथर्ववेद में वर्णित अजश्रृंगी संहितोक्त अजश्रृंगी है। अथर्ववेद में मंत्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक अजश्रृंगी एक तीक्ष्ण उग्रसुगंधी विशेष तीक्ष्णफली वाली शाकीय वनस्पति है जब कि संहितोक्त अजश्रृंगी बल्ली (पन्चमूल) की मूलिनी एवं क्षीरिणी लता विशेष द्रव्य होना चाहिये। वैदिक अजश्रृंगी के प्राप्ति स्थान के सन्दर्भ में भी यह संकेत मिलता है कि यह वनस्पति देवलोक हिमालय के सीमान्त क्षेत्रों में मिलने वाली कोई उग्रसुगन्धित द्रव्य है जब कि संहिताग्रन्थों में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता है। लेखक के विचार से तिब्बती चिकित्सा में उपयोगी बूटी 'तस्कया' शास्त्रीय अजश्रृंगी है। सम्भवत: संहिताग्रन्थों के टीकाकारों में मतैक्य न होने से वैदिक अजश्रृंगी भिन्न-भिन्न वनस्पति रही है। परन्तु लेखक के विचार से अजश्रृंगी एक ही वनस्पति को ग्रहण करना शास्त्रसंगत है। ऐसा भी सम्भव है कि अजश्रृंगी हिमालय की विशष ऊँचाई पर और दुर्गम स्थलों पर मिलने के कारण वैदिक अजश्रृंगी का संहिताकारों ने भिन्न भिन्न अर्थ किया हो और किसी अन्य वनस्पति को अजश्रृंगी मान लिया हो, अत: इस पर विद्वानों को विचार करना है।

दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि संहितोक्त अजश्रृंगी, मेषश्रृंगी एवं कर्कटश्रृंगी एक ही द्रव्य है या भिन्न-भिन्न द्रव्य है। मेरे विचार से उपर्युक्त तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्य है। क्योंकि सुश्रुत ने वरूणादिगण में अजश्रृंगी एवं मेषश्रृंगी का एक साथ पाठ किया है। अष्टांग संग्रहकार ने बल्ली (पंञ्चमूल) में अजश्रृंगी, मेषश्रृंगी का पाठ किया है। जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अजश्रृंगी, कर्कटश्रृंगी एवं मेषश्रृंगी तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं। संहिताग्रन्थों के टीकाकारों में मतैक्य न होने से "अजश्रृंगी विषाणी स्यात्, "अजश्रृंगी कर्कटश्रृंगी अजमेठिका इति लोके" आदि कतिपय अनेकार्थ किया है। आधुनिक वनस्पति शास्त्रियो ने मेषश्रृंगी को अजश्रृंगी माना है तथा कर्कटश्रृंगी से कांकड़ासींगी का ग्रहण किया है। ठा. बलवन्त सिंह जी ने *Dolichandrone falcata* Seem की फलियों को अजश्रृंगी माना है। आधुनिक वनस्पति शास्त्रियों ने भी अजश्रृंगी से *Gynandropsis gynandra* (Linn.) Briguet. *syn G. pentaphylla* (Capparidaceae) हुलहुल को, मेषश्रृंगी से *Gymnema sylvestre* R.Br.(Asclepiadaceae) गुड़मार को एवं कर्कटश्रृंगी से *Pistacia integerrima* आदि वनौषधि द्रव्यों का प्रयोग करने का उल्लेख किया है। लेखक के विचार से *Gynandropsis* (हुलहुल) नामक वनस्पति शास्त्रीय अजश्रृंगी नहीं हो सकती है। हुलहुल की प्रजातियों को कुछ विद्वानों ने सुवर्चला (सूर्यभक्ता), अजगन्धा (तिलपर्णी) आदि माना है। केवल अजासदृश्य गन्ध विशेष द्रव्य होने से लोगों की धारणा एवं विचार इस दिशा में गया है। कुछ विद्यानों ने 'अजश्रृंगी' उत्तमारिणी *Pergularia extensa.* N.E. Br. (Asdepiadaceae) को माना है, जब कि शास्त्रीय अजश्रृंगी तीक्ष्ण उग्रसुगन्धी विशेष एवं रक्षोध्न द्रव्य होना चाहिये जो कि हिमालय के क्षेत्रों में पाया जाता है। कपिय हिमालय के सीमान्त क्षेत्रों लेह-लद्दाख

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एवं हिमाचल प्रदेश के लाहुलस्पीति वन क्षेत्रों के सर्वेक्षणों से पता चलता है कि शास्त्रीय अजश्रृंगी *Caragana cuneata* Baker है जिसे स्थानिक भोटिया लोग तस्क्या कहते हैं। तिब्बती चिकित्सा में यह परम्परागत उपयोग की महत्वपूर्ण औषधि है जिसका वानस्पतिक परिचय, प्राप्तिस्थान एवं स्थानिक प्रयोग निम्न प्रकार से है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **अजश्रृंगी, तीक्ष्णश्रृंगी,** स्थानिक/तिब्बती/लद्दाखी : **तस्क्या**

वानस्पतिक नाम : ***Caragana cuneata*** Baker.

अपराजिताकुल (Fabaceae)

वानस्पतिक स्वरूप : बहुवर्षायुमूल, काण्ड एकवर्षायु एवं प्रसर, शाकीय गुल्म है। काण्ड :- मृदु, बहुशाखीय, प्रसर एवं 6 इंच तक ऊँचा होता है। पर्ण :- चना पत्र सदृश्य, हरित वर्ण के मृदुरोमिल, उग्रसुगन्धी वाले होते हैं। पुष्प :- मञ्जरी में, काण्ड संसक्त, गुलाबी रंग के, सुगन्धित, फलियां :- संयुक्त, तीक्ष्ण, श्रृंग सदृश्य, मूल :- बहुवर्षायु एवं उपमूल सुगन्धित होता है। तस्क्या का शाब्दिक अर्थ है हिंसक जन्तु अपने क्षत हुये व्रण पर इसके पत्रों का घर्षण करते हैं, इसी कारण इसे तस्कया कहते हैं।

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग :** मूल, काण्ड, पत्र।

प्राप्ति स्थान : जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया है कि हिमालय की पर्वतमालायें विभिन्न प्रकार की वनसम्पदा के लिये विश्वविख्यात हैं। इसी हिमालय को हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने देवलोक (सुरलोक) कहा है जो कि तिब्बत वाला क्षेत्र है। तिब्बत को अमरकोषकार ने त्रिविष्ठप कहा है। यह त्रिविष्ठप तिब्बत का ही अपभ्रंश हैं। इसी देवलोक में ऋषि भारद्वाज, भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, पुलस्त्य, वामदेव, गौतम आदि महर्षि इन्द्र से आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने हेतु गये थे। यह हिमालय अनेक प्रकार की सौम्यगुण प्रधान दिव्यौषधियों हेतु प्रसिद्ध हैं। इसका यही कारण है कि इस हिमालय में गन्धर्व, किन्नर एवं देवता लोग निवास करते हैं। यहाँ कैलाश, सुमेरू, अलकापुरी, मानसरोवर, गन्धमादन आदि कतिपय सुरम्य स्थल है। केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) के वनौषधि सर्वेक्षण अभियान कार्यकाल में लेखक को लेह-लद्दाख के सीमान्त क्षेत्रों खरदूंगला, नुब्रा, चुमाथांग, छोकरलेख एवं हिमाचल प्रदेश के बरालाचपास, लाहौलस्पिती आदि क्षेत्रों में 4,800 मीटर की ऊँचाई वाली पर्वतश्रेणियों का सर्वेक्षण करने का सुयोग मिला, जहां पर कई किस्मों की दिव्यौषधियां पाई जाती है, उनमें अजश्रृंगी भी है। यह बूटी सितम्बर मास से लेकर 15 अक्टूबर तक ही पायी जाती है। बाद में इन स्थानों पर हिमपात प्रारम्भ हो जाता है। अगस्त में बर्फ पिघलने के बाद पौधों की नई कोंपलें आनी शुरू होती हैं।

स्थानिक प्रयोग : तिब्बती चिकित्सा में तस्क्या का प्रयोग एक मूलिका एवं कई योगों के साथ मिलाकर करते हैं। स्थानिक आमची पत्र एवं पुष्पों का उपयोग चूर्ण के रूप में गले की जलन एवं उल्टी में करते हैं। रक्त-विकार, फोड़े-फुन्सियों के जहर को दूर करने हेतु पञ्चांग का प्रयोग किया जाता है। फुफ्फुस विकार, नाड़ी ब्रणहर (विसर्प), विषघ्न एवं व्रण आदि विकारों में विशेष उपयोगी मानते हैं। पुराने विकृतवर्णों (आर्बुद) आदि में आमची लोग तस्क्या का बाह्यलेप भी करते हैं। स्थानिक लोगों की आमधारणा है कि यह बूटी ब्रणरोपक है इसी कारण इसे तस्क्या कहते हैं, जिसका शब्दिक अर्थ है कि शिकारी की चोट से क्षत शेरनी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agamnigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ब्रणरोपण हेतु इस बूटी का प्रयोग करती है, ऐसी धारणा आदिवासियों की है। मेरे विचार से इन द्रव्यों का आमयिक परीक्षण होना आवश्यक है। यह कैन्सररोधी औषधि भी हो सकती है।

निष्कर्ष : अत: वेदोक्त एवं संहितोक्त अजश्रृंगी की पहचान के सन्दर्भ में लेखक ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, एवं स्थानिक परम्परागत प्रयोगों एवं स्वरूप के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि शास्त्रीय अजश्रृंगी (तस्क्या) *Caragana cuneata* है जो कि हिमालय के ऊँचाई वाले क्षेत्रों विशेष रूप से लद्दाख के सीमान्त क्षेत्रों में उपलब्ध हैं।

शतपुष्पा कुल UMBELLIFERAE (Apiaceae)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **शतपुष्पा,** हिन्दी : **सोया,** लद्दाखी : **गांयो,**

वानस्पतिक नाम : ***Anethum sowa*** Kurz.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पर्ण :- सौंफ पत्र सदृश्य, खंड़ित, पुष्प :- श्वेतवर्ण के, छत्राकार, बीज :- श्यामवर्ण के, सुगन्धित।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : बीज।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र के लेह, करगिल आदि ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची बीजों का उपयोग स्वेदल, वातनाशक, अजीर्ण, मूत्राघात एवं वेदनाशामक के रूप में करते हैं।

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृत्दीपनीकटु: ।
अग्निमांद्य हरीहृद्या, वद्धबिट्र कृमिशुक्रहृत् ।। *(भा. नि.)*

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **कृष्णजीरक, अजाजी,** हिन्दी : **काला जीरा,**
लद्दाखी : **कोसगिंत्,** बालती : **थायों**

वानस्पतिक नाम : ***Carum bulbocastanum*** Koch.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय क्षुप। कांड :- मृदु, 15 से.मी. ऊँचा होता है। पुष्प :- श्वेताभ, छत्राकार, बीज :- जीरकसदृश्य, पकने पर कृष्णवर्ण के, सुगन्धित, मूल कन्दिल होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : बीज।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति विशेषकर द्रास, करगिल, हरदास आदि क्षेत्रों में पाई जाती है। मुख्यरूप से खेतों के आस-पास पायी जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक लोग बीजों का उपयोग मशालों के रूप में करते हैं। व्यापारिक रूप से भी इसका संग्रह किया जाता है। हिमाचल प्रदेश के किनौर, लाहुलस्पीती जनपद में इसकी खेती की जाती है। एक वनस्पति भी स्वयंजात पायी जाती है। जिसे जंगली काला जीरा *Bunium persicum* कहते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

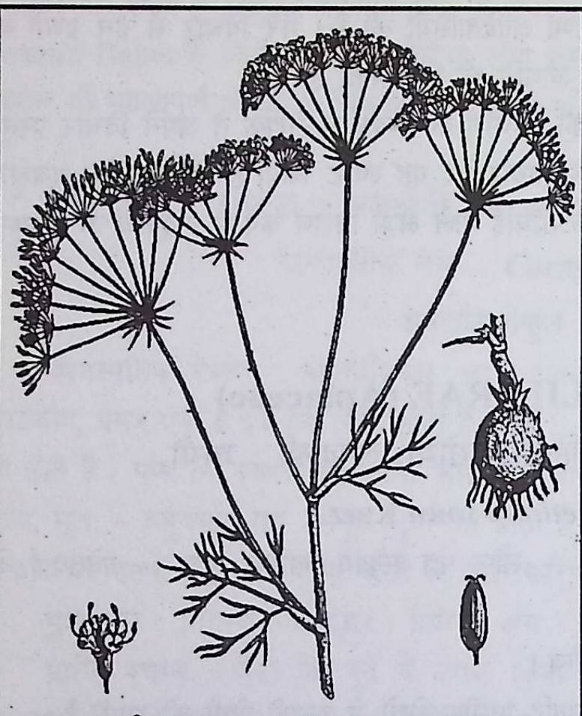

कालाजीरा ***(Carum bulbocastanum* Koch)**

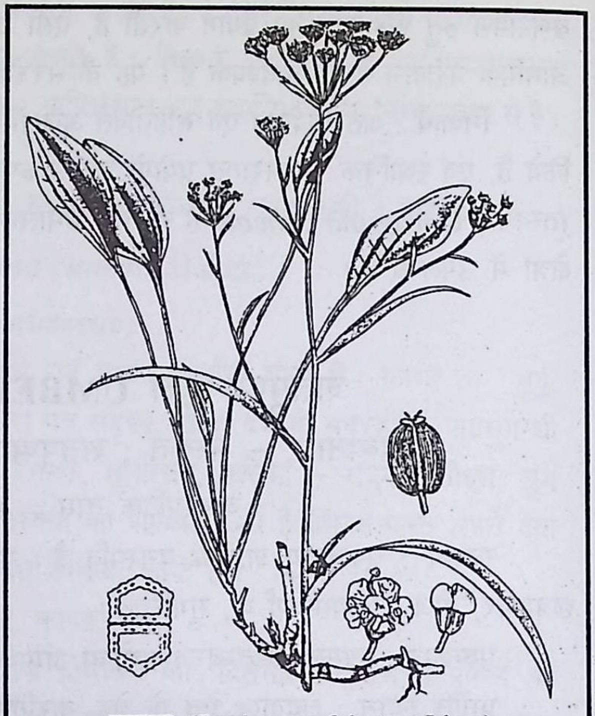

कुम्बुक ***(Bupleurum falcatum* Linn.)**

द्रव्यनाम :– संस्कृत : कृष्णजीरक, लद्दाखी : कोसगिंत, कुम्बुक

वानस्पतिक नाम : ***Carum carvi*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु परिसृत शाकीय वनस्पति है। पत्र धान्यक पत्र सदृश्य, सुगन्धित, पुष्प :– श्वेतवर्ण के छत्राकार, बीज–नारंगी वर्ण के , पकने पर कृष्णाभ रंग के एवं उग्रसुगंधित होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **फलकाल** : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग** : बीज।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति करगिल, बुद्धखरबू, लेह, चुमाथांग, जन्सकार आदि समस्त घाटियों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : बीजों का उपयोग स्थानिक आमची उदर-रोगों में करते हैं। काफी मात्रा में यह वनस्पति यहाँ पाई जाती है। व्यापारिक रूप से इसके बीजों का उपयोग किया जाता है। हमारे देश द्वारा इसके बीज विदेशों से आयातित किये जाते है। लेखक के विचार से सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में इसकी विस्तृत रूप से खेती करनी चाहिये, जिससे विदेशी मुद्रा बचाई जा सकती है।

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

जीरकत्रितयं रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघुः।
संग्राही पित्तलंमेध्यं गर्भाशय विशुद्धिकृत्।
ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रूच्यं कफापहम्।। *(भा. नि.)*

वक्तव्य : जीरक बीज सदृश्य अन्य उपयोगी वनस्पतियाँ भी इस घाटी में पाई जाती है जो निम्न हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agamnigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

1. जीरा-सरपो *Bupleurum gracilimum* (वादियान)
2. *Bupleurum chinense* DC
3. जीरा कार्पो *Bupleurum dongicaule* (साह्-कुचलस) प्राकृतिक रूप से सर्वत्र
4. कोसगित, कुम्बुक *Bupleurum falcatum* Linn.
5. जंगली काला जीरा *Bunium persicum*
6. *Chaerophyllum reflexum*

कालाजीरें के नाम से बाजार में इन वनस्पतियों के बीजों की मिलावट व्यापारी करते हैं। *Chearophuyllum reflexum*. के मूलकन्दों का उपयोग बाजार में मीठाअतीस के नाम से करते है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : हिंगुभेद, कश्मीरी : कैंडूल

वानस्पतिक नाम : ***Ferula jaesckkeana*** Vatke.

स्वरूप : कांड एकवर्षीयु, उर्ध्वसंश्रित, मूल :- बहुवर्षायु, कंदिल, सुगंधित, पर्ण :- दन्तुर, खण्डित, चौड़े, लट्टवाकार, आयताकार, पुष्प श्वेतवर्ण के छत्राकार, गुच्छों में, बीज :- चपटे एवं सुगंधित होते हैं ।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति जोजी 'ला', द्रास, मटयान आदि कतिपय क्षेत्रों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : बकरवाल इसकी पत्तियों को बकरियों को खिलाते हैं। मूल का उपयोग स्थानिक आमची उदरशूल एवं वातिक वेदना में करते हैं। लद्दाखी हींग इसकी मूल से तैयार की जाती है ऐसा स्थानिक लोगों का कहना है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : छत्रा, कश्मीरी : कैंडूल, बालती : होट्रंग-प्रसोस, तिब्बती : स्बू-कर, स्बू-कारपो

वानस्पतिक नाम : ***Heracleum candicans*** Wall.

स्वरूप : कांड एकवर्षायु, मूल :- बहुवर्षायु, कंदिल, सुगंधित, पर्ण :- खण्डित, द्विपत्रक, मृदु, रोमिल, पुष्प :- छत्राकार, श्वेतवर्ण के, बीज :- चपटे एवं सुगंधित होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल, बीज।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में करगिल, द्रास ब्लाक, लामायुरू, सांकूघाटी, शुरूघाटी, शाफीला आदि कतिपय क्षेत्रों में पाया जाता है इस वंश की औषध-उपयोग की अन्य जातियाँ भी इन क्षेत्रों में पाई जाती है।

1. मलांण, फूलों, सम्फेरो *Heracleum pinnatum* C.B. Clarke
2. उम्बो *Heracleum thomsoni* C.B. Clarke

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग कांड का उपयोग मवेशियों के लिये चारे के रूप में करते हैं। इनका कहना है कि फूल विषैला होता है। फूल में जन्थोटौक्सीन नामक तत्व पाया जाता है। बीजों का उपयोग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मशालों के रूप में किया जाता है। तिब्बती चिकित्सा-प्रणाली में इन किस्मों का औषध में उपयोग किया जाता है।

द्रव्यनाम :- बालती : प्रेंगोस

वानस्पतिक नाम : ***Prangos pabularia*** Lindl.

स्वरूप : एकवर्षायु, कांड :- उर्ध्वसंश्रित, मूल :- बहुवर्षायु, पर्ण :- खण्डित, द्विपत्रक, पुष्प :- श्वेत वर्ण के, छत्राकार होते है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : बीज, मूल।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति करगिल, रेऊ, द्रास ब्लाक, मूलवेग आदि क्षेत्रों में काफी मात्रा में सुलभ है। इस घाटी में मवेशियों के चारे में यह विशेष उपयोगी माना जाता है। स्थानिक लोग चारा हेतु शीतकाल के लिये इसे काट कर सुखाकर रख लेते हैं। एवं बर्फ पड़ जाने के बाद अपने मवेशियों को खिलाते हैं।

स्थानिक प्रयोग : बीजों का उपयोग स्थानिक आमची उदरशूल एवं मूत्रल के रूप में करते हैं। मूल का उपयोग अतिसार में किया जाता है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : धान्यक, हिन्दी : धनियाँ, लद्दाखी : बुसू

वानस्पतिक नाम : ***Coriandrum sativum*** Linn.

स्थानिक प्रयोग : करगिल, साँकू, लेह में इसकी खेती की जाती है। लद्दाखी बीज एवं पत्तियों का उपयोग चिकित्सा में करते हैं ।

आयुर्वेदिय गुणधर्म :

धान्यकं तुवरं स्निग्धं वृष्यं मूत्रलंलघुः ।
तिक्तं कटूष्णावीर्य च दीपनंपाचनंस्मृतम्।।*(भा. प्र. नि.)*

द्रव्यनाम :- संस्कृत : चोरक, हिन्दी : चोरा, लद्दाखी : चवा

वानस्पतिक नाम : ***Angelica archangelica*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु काण्ड, मूल बहुवर्षायु, काण्ड :- मृदु, ग्रन्थिल, सुगन्धित, पत्र-खण्डित, द्विपत्रक पुष्प :- छत्राकार, गुच्छों में श्वेताभ वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **फलकाल** : पुष्पकाल के बाद। **प्रयोज्य अंग** : मूल, बीज।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति लद्दाख के साँकू घाटी एवं जन्सकार क्षेत्र में 3,300 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,900 मीटर की ऊँचाई तक पाई जाती है। उत्तराखण्ड हिमालय, हिमाचल प्रदेश आदि स्थानों पर भी यह पाया जाता है। इसी वंश की अन्य प्रजाति भी हिमालय क्षेत्र में पाई जाती है। जिसे चोरक (चोरा) *A. glauca Edgw.* कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

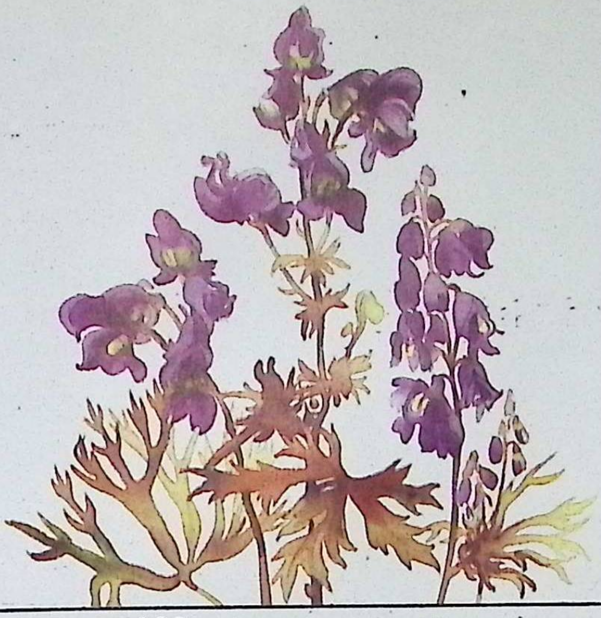

श्रृंगीबिष ***Aconitum napellus.***

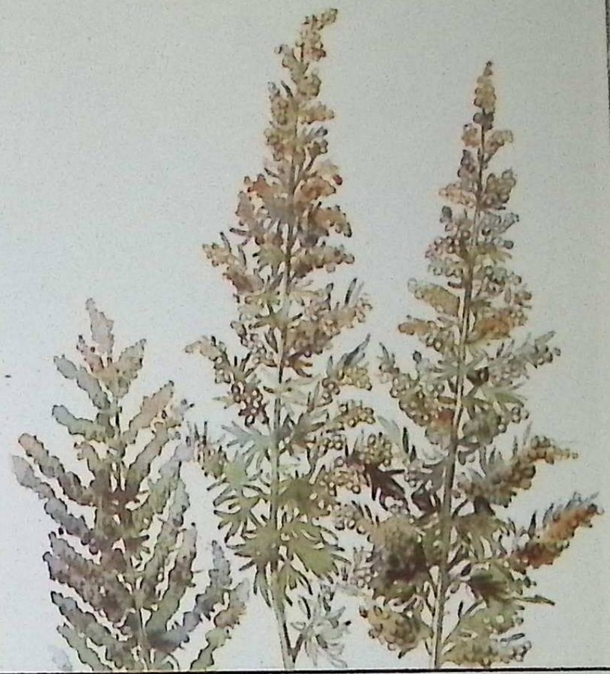

कीटमारी ***Artemisia* sp.**

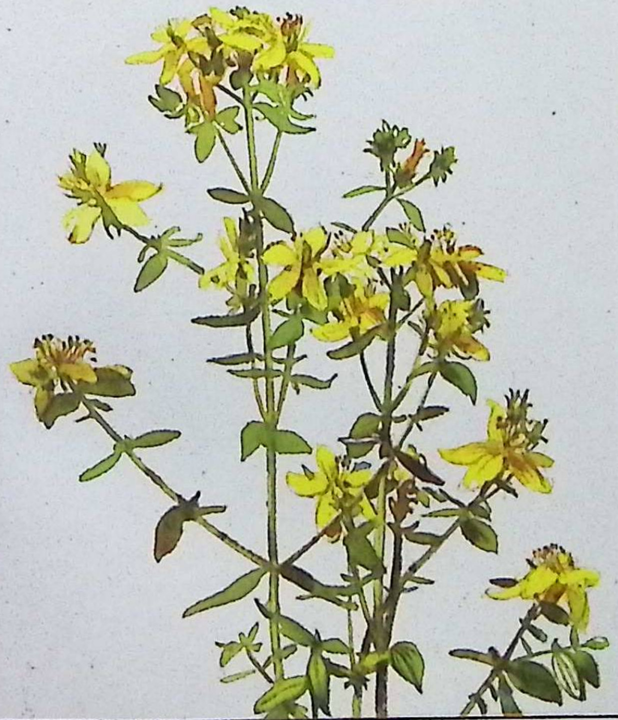

बासंती ***Hypericum perforatum.***

वन्यकर्कटी ***Podophyllum peltatum.***

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

काकड़ासींगी *Pistacia integerrima*

बुरांस *Rhododendron arboraum*

कलिहारू *Meconopsis aculeata*

बह्मकमल *Saussurea obvallata*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जोगीपादशाह (योगेश्वर) *Saussurea simpsoniana*

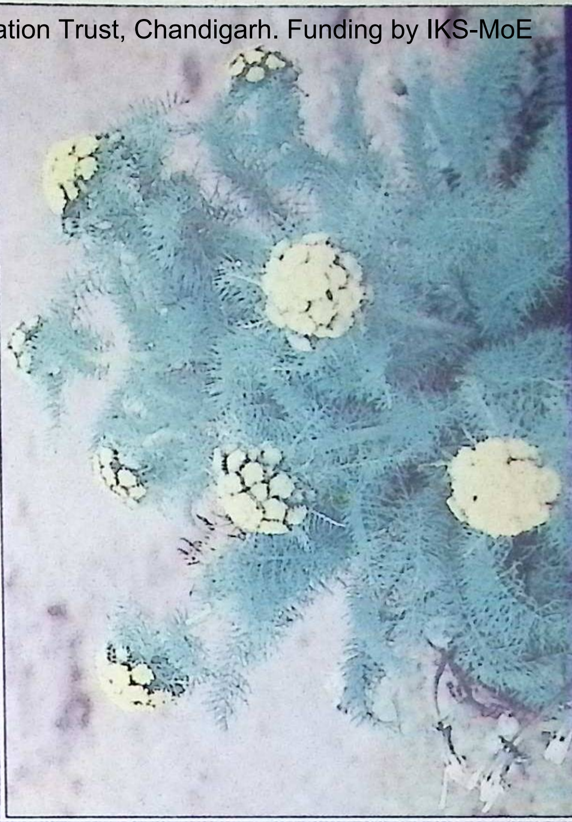

गुग्गल *Tanacetum logifolium*

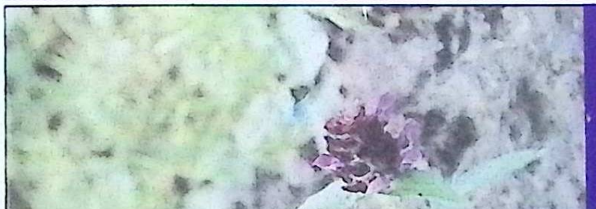

उस्तखद्दूस *Prunella vulgaris*

केदार कड़वी (कुटकी) *Picrorhiza scrophulariflora*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

केशर *Crocus stivus.*

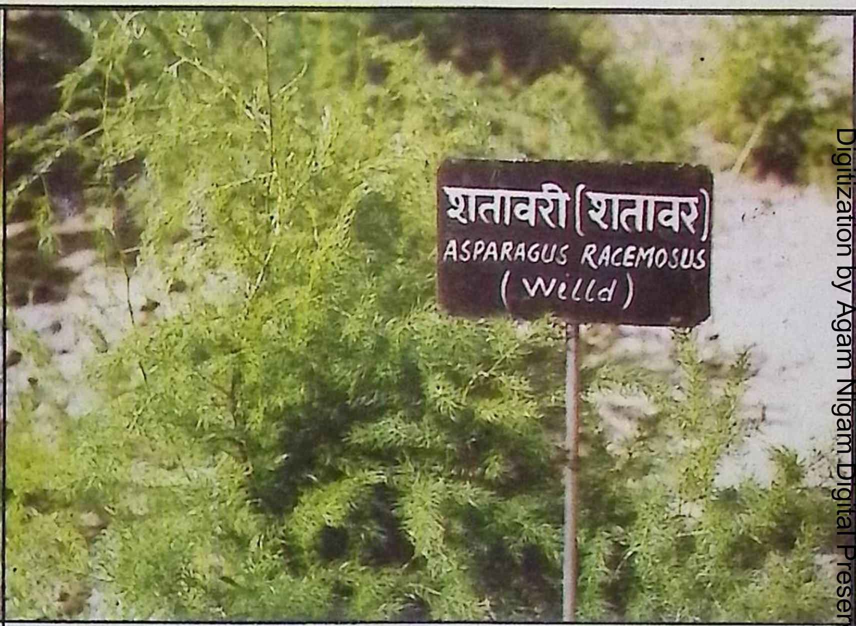

शतावरी *Asparagus racemosus.*

कुटकी *Picrorhiza kurroa*

अदरक *Zingiber officinale.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची उदरशूल, प्रतिश्याय, शिरशूल एवं दन्तशूल में मूलचूर्ण का उपयोग करते हैं। अर्श, भगन्दर आदि रोगों में भी मूलचूर्ण का प्रयोग करते है। मूल उग्रसुगन्धित, कन्दिल होता है।

मात्रा : मूलचूर्ण 3 से 5 ग्राम तक।

टिप्पणी : भोटिया लोग इसके मूल को चोरा एवं गन्धायण के नाम से बेचते हैं। संहिताग्रन्थों में चण्डा एवं चोरक के नाम से इस वनस्पति का उल्लेख मिलता है। उत्तराखंड हिमालय में ग्रामीण लोग मूल का उपयोग मशालों के रूप में करते हैं। तिब्बत एवं लद्दाख में उपरोक्त प्रजातियों का उग्र सुगन्धित धूपन सामग्री के रूप में भी उपयोग किया जाता है।

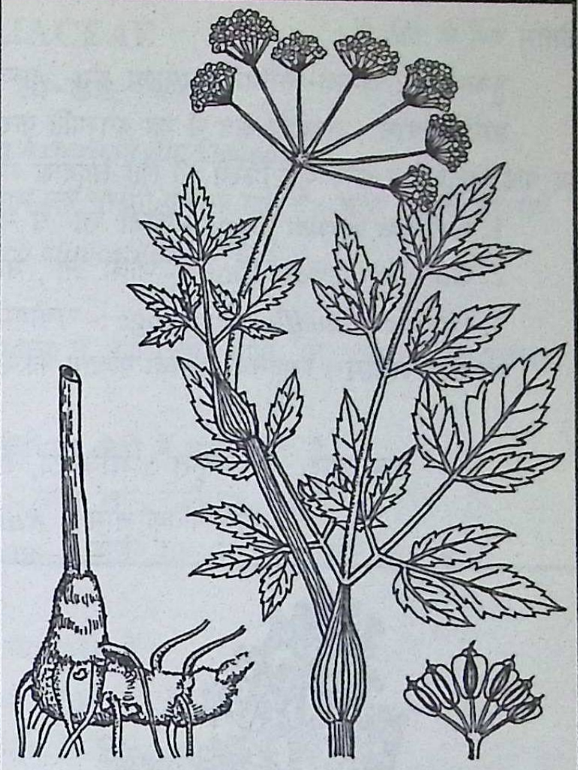
चोरक (*Angelica archangelica* Linn.)

शतपुष्पाकुल की कई अन्य उपयोगी वनस्पतियां भी लद्दाख में पाई जाती है। जिनका उपयोग आमची एवं तिब्बती चिकित्सा प्रणाली में किया जाता है। यथा:-

1. चांग्यो — *Peducedanum terelinthaceum*
2. — *Peducedanum hookeri thomsoni*
3. बुसु, हांग-डुंग-योत्मा — *Hydrocotyle nepalensis* Hook (ब्राह्मीभेद)
4. जीरा-कारपो — *Foeniculum vulgare* Mill. (देशी सौंफ) लेह-लद्दाख में खेती होती है।
5. स्यात्-गोत् — *Pleurospermum hookeri thomsoni* C.B. Clarke. (औक्षगन्ध)
6. जीरक भेद — *Pimpinella saxifraga* Linn. var. *disectifolia* C.B. Clarke.
7. चवां, सुगुबा — *Changium smyrniodes* Wellf.
8. चोरक — *Angelica glauca* Edgw.

मंजिष्ठाकुल (RUBIACEAE)

द्रव्यनाम :- तिब्बती : जांगची-कारपो

वानस्पतिक नाम : ***Galium aparine*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति, कांड :- मृदु, परिसृत, कभी-कभी उर्ध्वसंश्रित, पुष्प :- छोटे,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पीताभ वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग :** पञ्जांग।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति करगिल, द्रास, जोजी 'ला', सापी 'ला' आदि सभी स्थानों पर पाई जाती है। अन्य कई किस्में भी लेह-लद्दाख में पाई जाती है। ज़ो निम्न है।

1. *Galium verum* Linn. :- जोजी 'ला' से मतायन तक एवं द्रास, बारसो घाटी में।
2. *Galium boreale* Linn. :- जोजी 'ला', मटायन, सापी 'ला', वारसो घाटी, स्पीतुक में।
3. *Galium pauciflorum* Bunge :- राचोगया में।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पञ्चांग का उपयोग रक्त-विकार एवं फोड़े-फुंसियों पर करते हैं ।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **मंजिष्ठा**, हिन्दी : **मंजीठ**, स्थानिक : **चोत**

वानस्पतिक नाम : ***Rubia tibetica*** Hook.

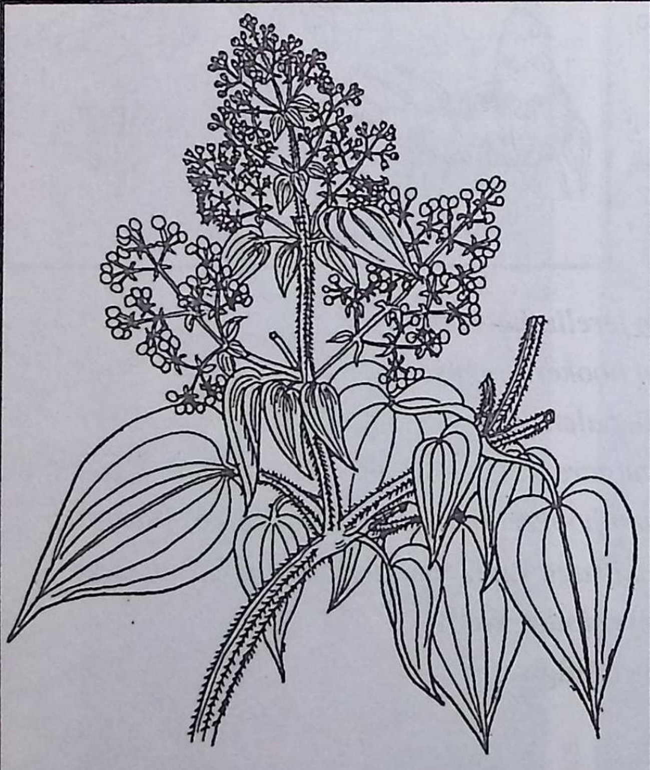

मंजिष्ठा (*Rubia cordifolia* Linn.)

स्वरूप : आरोही लता जाति की वनस्पति है। कांड :- मृदु रोमिल, चिपचिपा, पर्ण :- एकान्तर, भालाकार, पुष्प :- छोटे-छोटे पीतवर्ण के, फल :- मांसल, पकने पर बैंगनी काले रंग के होते हैं। मूल रक्त वर्ण का होता है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर।

प्रयोज्य अंग : मूल।

प्राप्ति स्थान : लेह-लद्दाख के द्रास, फोटू 'ला', सापी 'ला' राचोगया एवं जन्सकार घाटी में यह वनस्पति पाई जाती है।

इस वंश की एक अन्य जाति भी यहाँ निचली घाटीयों में पायी जाती हैं जो शास्त्रीय मंजीष्ठा *Rubia cordifolia* Linn. है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग रक्तविकार, पैतिक विकार, रक्तप्रदर, अर्श आदि रोगों पर करते हैं।

आयुर्वेदिय गुण धर्म :

मज्जिष्ठा मधुरातिक्ता कषाया स्वरवर्णकृत् ।
गुरुरुष्णा विषंश्लेष्म योन्यक्षिकर्ण रूक् ।
रक्तातिसार कुष्ठास्त्र वीसर्प व्रणमेहनुत् ।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CAPRIFOLIACEAE

द्रव्यनाम :- तिब्बती : लो-छंग, चिन-हा

वानस्पतिक नाम : ***Lonicera heterophylla*** Decne.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पुष्प पीताभ एवं नारंगी वर्ण के होते हैं। अन्य प्रजाति भी यहाँ पायी जाती हैं। जिसे तिब्बती में चिन्-हिन्-हा *Lonicera clancealata* कहते है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर।

प्राप्ति स्थान : उपरोक्त दोनो जातियाँ लेह-लद्दाख में प्रायः लेह, सापी 'ला', लाचूंग, जन्सकार, खालसी, सांकू आदि सभी स्थानों में पाई जाती है।

इस वंश की निम्न जातियाँ भी लेह-लद्दाख के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाती है।

1. *Lonicera glauca* Hook. F. & Thoms. :- सापी 'ला', लाचालुंग, लेह में।
2. *Lonicera asperifolia* Hook. F. & Thoms. :- जोजी 'ला', मतायन, सापी 'ला' में।
3. *Lonicera rupicola* Hook. F. & Thoms.
4. *Lonicera spinosa* Jacq. :- फोटू 'ला', चम्बा खरबू में।
5. *Lonicera microphylla* Willd. :- सापी 'ला' में।
6. *Lonicera caerulea* Linn. :- जोजी 'ला' में।
7. *Lonicera myrtillus* Hook. F. & Thoms. :- काँगी एवं फोटू 'ला' में।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची बीज एवं पुष्पों का उपयोग उपदंश, सुजाक जैसी संसर्गज व्याधियों में करते हैं। तिब्बत एवं चाईना में इन किस्मों का चिकित्सा में अधिक उपयोग किया जाता है।

DIPSACEAE

द्रव्यनाम :- कश्मीरी : कंडियारी, तिब्बती : यांग-छिर-कारपो

वानस्पतिक नाम : *Morina coulteriana* Royle.

स्वरूप : उर्ध्वसंश्रित, तलोत्थ एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। कांड एवं पत्र :- मृदु कांटेदार, पुष्प :- गुलाबी-सफेद रंग के होते हैं। मूल एवं पुष्प तीव्र सुगन्धित होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति जोजी 'ला', द्रासघाटी, सापी 'ला' आदि स्थानों में पाई जाती है। इसकी अन्य जाति भी यहाँ पायी जाती है। जिसे तिब्बती में यांग-छिर-लोमा-ठवा *Morina fetonicoides* कहते हैं

स्थानिक प्रयोग : ब्रणशोथ पर स्थानिक आमची मूल का उपयोग करते हैं। श्वास-कास में भी कतिपय औषध-द्रव्यों के साथ मूल का प्रयोग किया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तगरकुल (VALERIANACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : तगर बालक, लद्दाखी : कोंडा, कश्मीरी : वाल

वानस्पतिक नाम : ***Valeriana wallichii*** **DC.**

स्वरूप : एकवर्षायु, सुगन्धित, शाकीय वनस्पति है। कांड :- तलोत्थ, मृदु, पर्ण क्रमानुसार, पुष्प :- गुलाबी-श्वेत वर्ण के, मूल :- सुगन्धित, ग्रन्थिल होता है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्ति स्थान : इनकी किस्में लेह-लद्दाख के करगिल, जोजी 'ला', शापी 'ला', सांकू आदि स्थानों पर

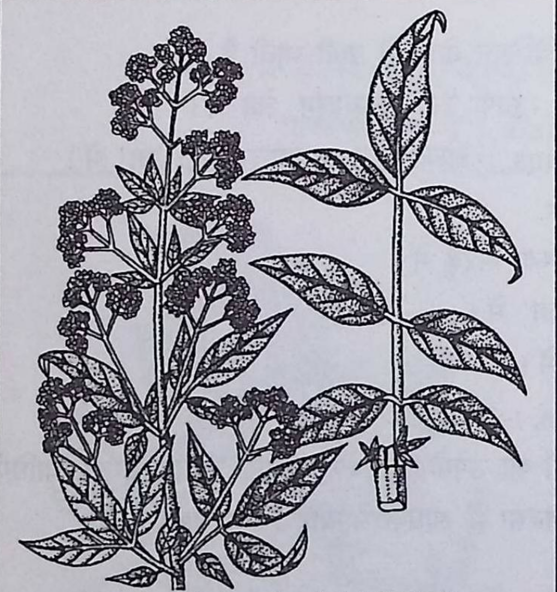

तगर *(Valeriana hardwickii* Wall.)

जटामाँसी *(Nardostachys jatamansi* D.)

पाई जाती है। लेह-लद्दाख में यह वनस्पति खरदूंगला शापीला, टंगलंगला, पिंजैला पास आदि स्थानों के हिमनदों के समीप पाई जाती है। इसके अतिरिक्त औषध उपयोग की निम्न किस्में भी पाई जाती है।

1. *Valeriana dioica* Linn. मोपेन-छओ
2. *Valeriana stracheyi* C.B. Clarke.
3. *Valeriana hardwickii* Wall.

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग निंद्रानाश, हृदयरोग, अपस्मार आदि रोगों में करते हैं। स्थानिक लोग कृमिघ्न के रूप में भी प्रयोग करते हैं। स्थानिक आमची पंचाग का उपयोग मानसिक विकार, शिरशूल, अतिनिंद्रा विकारों में करते हैं।

पुष्पकाल : सितंबर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग** : मूल, पञ्चांग।

वक्तव्य : इस कुल की एक अन्य उपयोगी वनस्पति भी यहाँ पाई जाती है। जिसे स्पांग-पोस, *Nardostachys jatamansi* DC (जटामाँसी) कहते है। यह आयुर्वेद चिकित्सा में विशेष उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitized by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भृंगराजकुल (COMPOSITAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : पुष्करमूल, लद्दाखी : मानो

वानस्पतिक नाम : ***Inula racemosa*** **Hook. f.**

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। कांड :- तलोत्थ, मूल :- बहुवर्षायु, कन्दिल एवं सुगन्धित, कूठ के कन्द सदृश्य होते हैं। पर्ण :- एकाकार, चौड़े, पुष्प :- पत्रकोणीय, पीत वर्ण के, बीज :- संख्या में अधिक, यव (जौ) सदृश्य, पकने पर कृष्ण वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्तिस्थान : लेह-लद्दाख में आमची अपनी चिकित्सा हेतु कहीं-कहीं खेती करते हैं।

स्थानिक प्रयोग : आमची मूल का उपयोग हृदय रोग, कास, श्वास एवं शिर:शूल में करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कई औषधीय योगों में आमची मूल का प्रयोग करते हैं।

वक्तव्य : लेह-लद्दाख में इसकी कतिपय किस्में पाई जाती है जिनका लद्दाखी आमची चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। यथा :

1. *Inula rhizocephaloides* C.B.Clarke :- सापी 'ला' क्षेत्र में।
2. *Inula barbata* Wall.
3. *Inula royleana* DC. :- नुब्राघाटी में

उपरोक्त तिनों किस्में एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। कांड मृदु 6 सें.मी. लम्बा, सुगंधित, पुष्प गुच्छों में, तीव्र सुगंधित होते है। ये किस्में हिमानी ढ़लानों (ग्लेसियल सलोपस्) में, समूह रूप में, बर्फ पिछलने के बाद पाई जाती हैं।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : स्थलपद्म, हिन्दी : ब्रह्मकमल, लद्दाखी : पांगची-हर्वे

वानस्पतिक नाम : ***Saussurea bracteata*** Decne.

स्वरूप : एकवर्षायु 6 इंच तक ऊँचे तलोत्थ शाकीय वनस्पति हैं। पुष्प सुगन्धित होते है। इसकी दो और जातियाँ भी यहाँ पायी जाती हैं। जो निम्न है।

1. स्यांग चातवो — *Saussurea glacialis*
2. ब्रह्मकमल — *Saussurea obvallata* Wall.

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग** : पुष्प, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : लेह-लद्दाख में यह वनस्पतियाँ खरदूंगला, सापी 'ला', टंगलंग 'ला', पिंजैला पास, आदि स्थानों के हिमनदों के समीप पाई जाती है। उपरोक्त तीनों किस्में औषध उपयोग की हैं।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पञ्चांग का प्रयोग मानसिक विकार, शिर:शूल तथा निद्रानाश आदि कतिपय विकारों में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

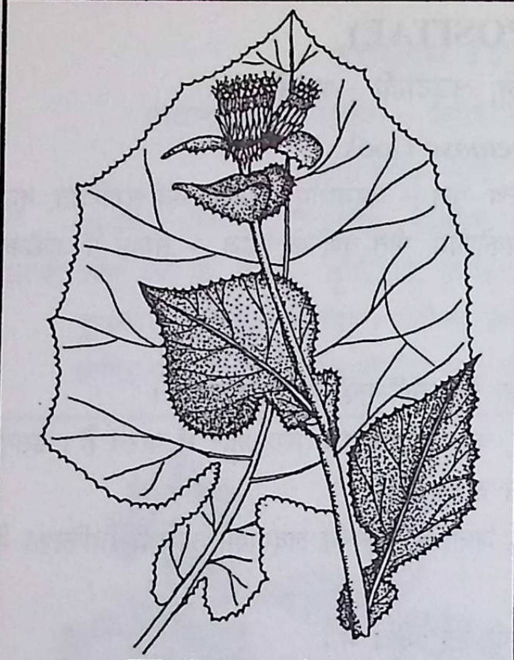
कूठ (*Saussurea lappa*)

द्रव्यनाम :- तिब्बती : **मैतोक् कांगथा**

वानस्पतिक नाम : ***Saussurea tridactyta***

स्वरूप : एकवर्षायु, सुगंधित, शाकीय वनस्पति है। पर्ण :- मृदु, रक्ताभ वर्ण के, पुष्प :- पीताभ-श्वेत, तीव्र सुगंधित होते है। अन्य किस्म भी पायी जाती है। जो निम्न हैं।

1. हेमा मैतोक्-कांगथा *Saussurea albescens* Hook.F. & Thoms.
2. कूठ *Saussurea lappa* C.B. Clarke.

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर।

प्रयोज्य अंग : पञ्चांग, पुष्प।

प्राप्ति स्थान : स्थानिक आमची चिकित्सा में यह प्रयोग करते है। लेह-लद्दाख की सभी घाटियों में पाई जाती है। कूष्ठ (कूठ) का आयुर्वेद चिकित्सा में विशेष उपयोग हैं। श्वास-कास एवं वात व्याधि नाशक है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **कीटमार,** यूनानी : **अफसन्तीन,** लद्दाखी : **वुरचे, वुरनक**

वानस्पतिक नाम : ***Artemisia maritima*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु, उर्ध्वसंश्रित काण्ड वाली वनस्पति है । सम्पूर्ण काण्ड, पत्र, पुष्प उग्रसुगन्धित होते हैं। काण्ड :- शाखामय, रोमश, रेशम सदृश्य, पर्ण :- संख्या में अनेक, पुष्प :- पत्रकोणीय, मुंडक में, पीताभ-हरित वर्ण के उग्रसुगन्धित होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पुष्प, पत्र।

प्राप्ति स्थान : सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में इसकी किस्में 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 4,500 मीटर की ऊँचाई तक शुष्क एवं रेतीली जमीन. पर सर्वत्र सुलभ है।

इस वंश की औषध उपयोग की निम्न वनस्पतियाँ भी लद्दाख में सुलभ है।

1. खन्-धुंग-सरपो *Artemisia siversiana* Willd. :- न्यूमा, लेह, द्रास में।
2. यांक्-छंग *Artemisia stricta* Edgew :- लद्दाख एवं तिब्बत के सीमान्त क्षेत्रो में।
3. खम्बा *Artemisia parviflora* Buch. Ham.
4. नुरचे *Artmisia moorcroftiana* Wall. :- हिमिस, सुपका में
5. सीतावनी *Artemisia scoparia* Waldst & Kit.
6. गंगातुलसी *Artemisia sacrorum* Ledeb.

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची प्राय: बहुत कम मात्रा में इसका उपयोग करते है। ये लोग मवेशियों

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

के अफारा या पेट में वायु भर जाने पर इसके पंचाग का उपयोग करते हैं। वाह्य प्रयोग में क्षत या चोट लग जाने पर व्रणरोपक के रूप में मवेशियों में प्रयोग करते हैं। आमची कृमिघ्न, ज्वरघ्न एवं वातवेदनाहर के रूप में कतिपय औषध द्रव्यों के साथ पुष्पों का प्रयोग करते हैं।

नुब्रा घाटी के ग्रामीण लोग स्थानिक पेय छंग के मशालों की सामग्री में इसकी किस्मों का उपयोग करते हैं। इस क्षेत्र में लकड़ी के अभाव के कारण ग्रामीण लोग सर्दियों में जलाने के काम में पञ्चांग का प्रयोग करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि इनके पंचाग के धुआं लगने से नेत्रविकार (अभिष्मंद) आदि रोग हो जाते हैं। सेण्टोनीन जैसा विषैला तत्व विद्यमान होने से यह हानिकारक हो सकता है। इसके विषाक्त गुण देखे गये हैं। यह वनस्पति उत्तरी अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, यूरोप के कतिपय पर्वतीय प्रदेश, साईबिरिया, मंगोलिया, चाईना आदि प्रदेशों में पाई जाती है। इन देशों में परम्परागत रूप से इन किस्मों का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।

वक्तव्य : संहिता ग्रंथों में स्पष्ट रूप से इन प्रजातियों का उल्लेख देखने को नही मिलता है। प्रचलित भाषा में इसे चौहार कहते हैं धन्वन्तरि निघण्टु में इसे यवानी विशेष कहा है। यूनानी ग्रंथों में इस बूटी का उल्लेख अफसंतीन के नाम से है। आधुनिक लेखकों ने दमनक (दौना), नागदमनी, शोह, किर्माला आदि नामों से उल्लेख किया है। यूनानी चिकित्सों ने चिकित्सा में तैल, मद्य, शर्बत, अर्क, टिकिया, क्वाथ तथा माजून प्रभृति मिश्रण रूपों में उपयोग किया है। होम्योपैथिक में भी *Artemisia vulgaris* Linn. का काफी उपयोग हुआ है। इसमें कटुता चरपराहट एवं संकोचक गुण है। कषाय रस पृथ्वी तत्व के कारण होता है। पृथ्वी तत्व रूक्ष होता है। कटुता एवं तीक्ष्ण गुण पार्थिव तत्व की अधिकता से होता है। अत: यह आग्नेय गुण प्रधान द्रव्य है। आयुर्वेदिक फार्मुलरी में ऐसे उपयोगी द्रव्यों का समावेश विद्वानों को करना चाहिये। एलोपैथी के डाक्टर इसके धनसत्व एवं टिंचर का विशेष प्रयोग करते हैं। चाईना में आज भी सिनकोना के स्थान पर *Artemisia anava* का प्रयोग मलेरिया के लिये किया जाता है।

द्रव्यमान :– यूनानी : विरंज्जसिफ, लद्दाखी : सेन्जुम

वानस्पतिक नाम : ***Achillea millefolium*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- उर्ध्वसंश्रित, एकशाखीय, पर्ण :- सुगंधित, पुष्प :- गुच्छों में, श्वेतवर्ण के होते हैं।

स्थानिक प्रयोग : युनानी चिकित्सा में इसके पंचांग एवं पुष्पों का उपयोग किया जाता है। स्थानिक आमची पंचांग का उपयोग आमाशय शोथ एवं ज्वरों में करते हैं।

द्रव्यनाम :– लद्दाखी : फुरनक, खनकर

वानस्पतिक नाम : ***Tanacetum gracile*** Hook. f. & Thoms.

स्वरूप : एकवर्षायुं, सुगन्धित, शाकीय वनस्पति है। पर्ण :- कांडसंसक्त, सुगंधित, पुष्प :- मुण्ड़क एवं

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुच्छों में, पीतवर्ण के होते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य दो किस्में भी पायी जाती हैं जो निम्न है।

1. खामचू *Tanacetum tomentosum* DC.
2. थीरचोकमा *Tanacetum tibeticum* Hook. f. Thoms

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पञ्चांग का प्रयोग उदरशूल, कर्णविकार एवं कृमिघ्न के रूप में करते हैं। लद्दाख में इसकी उपरोक्त तीनो किस्में पाई जाती है।

दिव्यौषधि आदित्यपर्णी एवं ब्रह्मसुवर्चला

संहिताओं में वर्णित ब्रह्मसुवर्चला, सुवर्चला एवं आदित्यपर्णी की पहचान तथा खोज के संदर्भ में एक नवीन विचार आयुर्वेद के वनौषधिवेत्ताओं के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। आयुर्वेद में वर्णित कतिपय वनौषध द्रव्यों की सही पहचान एवं गुणधर्मों का अध्ययन न होने के कारण आज भी कतिपय वनौषधियां अज्ञात एवं संदिग्ध हैं। यदि आयुर्वेद की विश्वव्यापी सार्वभौमिकता को सिद्ध करना है तो इस दिशा में कार्यरत आयुर्वेदज्ञों का उत्तरदायित्व हो जाता है कि प्राचीन ऋषियों द्वारा खोज की गई वनसम्पदा को अपने मौलिक वैज्ञानिक विधि से शोधकार्य कर विश्व स्वास्थ्य संगठन के समक्ष में एक नवीन दिशा प्रदान करें, जिससे पुन: आयुर्वेद विज्ञान की सार्वभौमिकता अभिनव प्रति संस्कार निघण्टु शास्त्र स्थापित किया जा सके।

आज आयुर्वेद के चिकित्सा क्षेत्र में कार्यरत मनीषियों एवं शोधशास्त्रियों के समक्ष एक चुनौती है कि इस परम्परागत वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति को प्रत्यक्ष मौलिक परीक्षणों के माध्यम से अपना वर्चस्व स्थापित करने में अग्रसर करें। आयुर्वेद विज्ञान में द्रव्यगुण शास्त्र का विशाल क्षेत्र है जिसके अध्ययन एवं गवेषणा हेतु प्रकृति ने गिरिराज हिमालय के लेकर कन्या-कुमारी तक के समस्त भू-भाग का विशाल क्षेत्र दिया है। इसी आधार पर लेखक ने कतिपय हिमालय क्षेत्रों, जिसमें से मुख्य रूप से उत्तराखण्ड हिमालय, हिमाचल, प्रदेश, जम्मू-कश्मीर का लेह-लद्दाख क्षेत्र, आसाम, बंगाल, अरूणाचल, सिक्किम आदि प्रदेशों की पर्वतमालाओं और घाटियों का कई बार वनौषधि सर्वेक्षण किया। इन क्षेत्रो का वनौषधि सर्वेक्षण करने की सुविधा लेखक को "केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद्" (भारत सरकार) के माध्यम से मिली, जिसके फलस्वरूप अज्ञात एवं संदिग्ध दिव्यौषधियाँ ब्रह्मसुर्वचला, आदित्यपर्णी के सन्दर्भ में एक नवीन विचार आयुर्वेद के मनीषियों के समक्ष प्रसतुत किया गया है।

इस सन्दर्भ में संहिता ग्रंथों में वर्णित वनस्पति "आदित्यपर्णी" की आकृतिक पहचान एवं प्राप्ति स्थान का उल्लेख किया गया है।

दिव्यौषधियों का ऐतिहासिक पक्ष (वैदिक काल)

वैदिक ग्रंथों, संहिता एवं उपनिषदों के संदर्भ स्थलों से मालूम पड़ता है कि हमारे आर्षग्रंथों में दिव्योंषधियों की महिमा का विशेष वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद कांड 8 सूक्त 2 के मंत्र में औषधि महिमा का उल्लेख है तथा अन्तरिक्ष, भूलोक सभी के लिये औषधियाँ कल्याणप्रद हो, सूर्य, चन्द्र, जल, पवन आदि सुखमय रक्षक बनें, मानव दीर्घायु प्राप्त कर मृत्यु के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चुंगुल से बचे रहें, हमारे लिये औषधियाँ रसों से परिपूर्ण एवं गुणवती रहें।

इसी प्रकार संहिता ग्रंथों में भी औषधियों की महिमा का उल्लेख है। जैसे देवताओं के अनेक भेद-प्रभेद हैं वैसे ही दिव्यौषधियों की अनेक जाति एवं उपजातियां हैं। इस प्रकार की विविधता को देखकर चिकित्सक संदेह में पड़ जाता है। उसे धैर्यपूर्वक औषधियों के गुणप्रभावादि का ज्ञान कर निःसंदेह होकर चिकित्सा कार्य सम्पादित करना चाहिये। भगवान दिवौदास धन्वन्तरि ने भी मनुष्य की उत्पति से पूर्व वनौषधियों की उत्पति का उल्लेख किया है। मानव से पूर्व सबसे पहले स्थावर एवं औद्भिज सृष्टि का सृजन हुआ एवं तदन्तर प्राणी जगत की सृष्टि हुई, जिसे पाषाण युग कहते हैं। जिसमें धीरे-धीरे मानव ने बुद्धिपूर्वक इस औद्भिज सृष्टि से अपने आरोग्य एवं रोग निवारण हेतु द्रव्यो को काम में लाने लगा एवं उनके गुण, रस, वीर्य, विपाक का भी अध्ययन करने लगा। इस काल में मानव को कतिपय वनौषधियों का ज्ञान हो चुका था जिसके फलस्वरूप द्रव्यगुण शास्त्र का सृजन हुआ।

वैदिक काल में इन दिव्यौषधियों की जानकारी मिलने के कारण हमारे प्राचीनों ने दिव्यगुणवाली औषधियों की मातृ स्वरूप होने से देवी की तरह उन की प्रार्थना की है । संहिताकालीन ऋषि-मुनियों ने भी औषधियों की खोज में नदी-नालों, हिमालय की घाटियों एवं कतिपय वन प्रदेशों में भ्रमण कर जड़ी-बूटियों का पता लगाया और संहिताओं एवं निघण्टु ग्रंथों का निर्माण किया। धीरे-धीरे इन ग्रंथों के टीकाकारों चक्रपाणी, गंगाधर, डल्हण, जेज्ज़ट, इन्दु, हेमाद्रि, भावमिश्र, भानुमती आदि में मतैक्य न होने के कारण कतिपय वनौषधियां संदिग्ध एवं अनेकार्थ बोधक हो गयीं।

इसलिये यह आवश्यक है कि अज्ञात एवं संदिग्ध द्रव्यों की पहचान और जानकारी प्राप्त करने हेतु आदिवासी, वनचरों, भेड़-बकरी पालने वालों, ग्वालों और साधु-महात्माओं से पूछ कर (परम्परागत स्थानिक उपयोग की जड़ी-बूटियों का स्थानिक एवं परम्परागत नाम एवं स्थानिक प्रयोग के आधार पर) पता लगाना चाहिये।

प्राचीनों द्वारा अपनाई गयी औषधियों की पहचान की विधि गौ, सुअर, सर्प, मृग, पक्षी, गरूड़, नकुल, गंधर्व एवं वन्य-जंतुओं द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इस दिशा में भी अन्वेषकों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिये।

उक्त परम्परा के आधार पर गिरिराज हिमालय की कतिपय पर्वत श्रेणियों की घाटियों में भ्रमण कर स्थानिक वनचरों, आदिवासियों से सम्पर्क किया गया, जैसा कि सर्वविदित है कि वह गिरिराज हिमालय अनेक किस्म की वनौषधियों के लिये विश्वविख्यात है। यही कारण है वेदों, पुराणों एवं संहिता ग्रंथों में हिमालय को भारत का मुकुट एवं औषधीय वन-सम्पदा का अक्षय भंडार कहा है।

हिमवान् औषध भूमिनां श्रंष्ठम्।। *(चरक)*

अथर्ववेद में भी हिमालय में पैदा होने वाली औषधियों की विशेष रूप से प्रार्थना की गयी है। इसी गिरिराज हिमालय में अनादिकाल से ब्रह्मादिक ऋषि-मुनियों, पांडव आदि भारतीय राजर्षि, सनातन धर्म के महर्षि एवं योगियों ने गंगा, जमुना, अलकनंदा, मन्दाकिनी, व्यास, सतलज, चन्द्रभागा,नर्मदा, सिंधु, कावेरी, ब्रह्मपुत्र, आदि कतिपय पुण्य सलिला सरिताओं के तट पर और गिरि गुफाओं में बैठकर हजारों वर्ष पर्यन्त उग्र

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तपस्या का अनुष्ठान किया। इसी हिमालय में विश्वविख्यात प्रसिद्ध हिम शैल नन्दाकोट, भृगुकांठा, केदारकांठा, सुमेरू-पर्वत, द्रोणागिरी, सहगिरी, गन्धमादन पर्वत, चौखम्बा, सतोपथ, कैलाश मानसरोवर, कांचनजंघा आदि कतिपय हिमश्रृंग दिव्य गुणोंवाली जड़ी-बुटियों के स्रोत रहें हैं। स्कन्द पुराण में भी गन्धमादन, सुमेरू, द्रोणगिरी, आदि हिमशैलों का उल्लेख मिलता है। इन्हीं हिमशैलों पर संहिता ग्रंथों में वर्णित 24 प्रकार के सोमों की प्राप्ति-स्थान के स्रोत का निर्देश किया गया है। अष्टांग संग्रहकार ने भी हिमालय में मिलने वाली वनौषधियों को सौम्यगुण प्रधान लिखा है। यह नागाधिराज हिमालय जितना सुंदर, उतना ही विस्तृत एवं वनौषधि का अक्षय भंडार है। इन वनौषधियों के साथ-साथ इन पर्वत श्रेणियों की घाटियों में अनेक प्रकार के खनिज, धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न एवं वन्यजन्तु भी पाये जाते हैं। यथा :

सागन्धमादनलता कुसुमौष लक्ष्मी, सा दिव्य श्रृग्ङहिमवद् नवश्रृग्ङपंक्ति।। *(केदारखण्ड)*

लेखक ने गिरिराज हिमालय की पर्वत श्रेणियों से कतिपय अज्ञात एवं दुर्लभ वनस्पतियों के स्रोत की जानकारी लेह-लद्दाख, लाहुल-स्पीती और सिक्किम प्रदेश के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में बसने वाले ग्रामीण लोग एवं स्थानिक आमचियों के सौजन्य से प्राप्त की है। इन संग्रहित नमूनों के वानस्पतिक अध्ययन एवं स्थानिक प्रयोगों से प्रतीत होता है कि संहितोक्त आदित्यपर्णी एवं ब्रह्मसुवर्चला आदि कतिपय वनौषध द्रव्य इन्हीं द्रव्यों से हैं। इन दिव्योषधियों का संहिताओं के चिकित्सास्थान, सूत्रस्थान में वर्णित संदर्भ स्थल इस प्रकार से हैं।

ब्रह्मसुर्वचला एवं आदित्यपर्णी का शास्त्री पक्ष

ब्रह्मसुवर्चला : चरक, चि. अ.-1-156, 1-3, 23, 1-4, 6 सुश्रुत सू.आ.-46-262, 461, चि. अ.-3-5, 21, अष्टांग हृदय उ.अ.-39-50, अष्टांग संग्रह उ.-1-73, 49-23,46.

सुवर्चला : चरक सू.अ.-27-97, चि.अ.-19-35, 29-51, सिद्धि स्थान-7-61, सुश्रुत सू.-26-12, 31, 42-18, 45-115, 46-262, 274, चि.अ.-2-28, 23-12, उ.-47-34, अष्टांग संग्रह-6-29, 10-54, कल्प 6-30, उ.-30, 34, 45, 42, 58-46 + 9, 21 सुवर्चला उ. 35-11, 40-107

आदित्यपर्णी : चरक चि.अ.-1-546, सुश्रुत चि.-15-43, 30-5, 20,31.

धन्वन्तरि एवं राजनिघण्टु में भी सुवर्चला एवं ब्रह्मसुवर्चला का उल्लेख है।

उक्त सन्दर्भ स्थलों में वर्णित आदित्यपर्णी, ब्रह्मसुवर्चला की शास्त्रीय पहचान एवं प्राप्ति स्थान के उल्लेख में विशेष रूप से जो साम्यतायें मिलती हैं उनकी जानकारी इस प्रकार से है।

महर्षि चरक ने आदिर्त्यपर्णी एवं ब्रह्मसुवर्चला का उल्लेख द्रोंणी प्रावेशिक रसायन एवं सुश्रुत ने 18 दिव्यौषधियों में किया है तथा इसकी पहचान के विषय में लिखा है कि आदित्यपर्णी के पुष्प सूर्य सदृश्य मण्डलाकार, सूर्य की गति सदृश्य एवं कांड को तोड़ने पर पीत दुग्ध, पर्ण-मूलोद्भव, संख्या में पांच, रक्ताभ हरितवर्ण के होते हैं जो कि ऊँचे हिमशिखर पर हिम के पिघलने के बाद हिम नदी के समीप पाया जाता है। इस वनौषध को आदित्पर्णी कहते हैं।

इसी प्रकार से ब्रह्मसुवर्चला एवं सुवर्चला के प्राप्ति स्थान और स्वरूप के सन्दर्भ में सुश्रुत के चिकित्सा स्थान 30 में उक्त द्रव्यों का प्राप्ति स्थान हिमालय प्रदेशों के जलीय स्थलों के समीप सिन्धु आदि महानदों के समीप मिलने का वर्णन मिलता है। इन दिव्यौषधियों की पहचान के सन्दर्भ में संहिताकारों का कहना है कि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agamnigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ब्रह्मसुवर्चला शाकीय, एकवर्षायु, जमीन पर परिसृत जाति की वनस्पति है। कांड को तोड़ने पर पीत दुग्ध वाला, पुष्प-पीत वर्ण के, सूर्य मण्डलाकार एवं पंचांग स्वाद में कटु, तिक्त रस वाला एवं मेध्य होता है। संहिताकारों ने ब्रह्मसुवर्चला के पर्यायों में देवी शब्द का उल्लेख किया है। ब्रह्मसुर्वचला दिव्य गुण वाली एवं मातृ स्वरूप होने के फलस्वरूप इसे देवी कहा है। अष्टांग संग्रह के टीकाकार इन्दु एवं गंगाधार आदि टीकाकारों ने ब्रह्मसुवर्चला से मण्डूकपर्णी एवं ब्राह्मी अर्थ किया हैं। अष्टांगहृदय कोषकार ने भी सुवर्चला को अनेकार्थ बोधक माना है। सुवर्चला से कोषकार ने सूर्यवल्ली, अर्कपुष्पी, सूर्यावर्त भेद एवं ब्राह्मी अर्थ किया है। निघण्टु ग्रंथों में भी सुवर्चला, ब्रह्मसुवर्चला का उल्लेख आया है। इन सन्दर्भों से कतिपय आधुनिक द्रव्यगुण के लेखकों ने अर्कपुष्पी, सौंचल शाक, हुलहुल आदि अर्थ किया है।

सभी सन्दर्भ स्थलों के प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि उक्त वनौषध विशेष गुणों वाला नवीन द्रव्य है एवं इस दिशा में द्रव्यगुण के विद्वानों को इन द्रव्यों के निर्णय करने पर विचार करना चाहिये। ब्रह्मसुवर्चला एवं आदित्यपर्णी द्रव्य ब्राह्मी एवं मण्डूकपर्णी सदृश्य विशेष द्रव्य है जो कि मेध्य, कटु, तिक्त, उष्ण, रसायन, कण्डुनाशक एवं रक्त विकारों में उपयोगी गुणों वाले द्रव्य है।

उक्त द्रव्यों की खोज में विभिन्न पर्वत-श्रेणियों की घाटियों के वनौषधि सर्वेक्षण काल में लेखक को परम्परागत उपयोग के नवीन द्रव्यों की खोज में सफलता मिली है। जिनका वास्पतिक नाम, प्राप्ति स्थान एवं स्थानिक प्रयोग निम्न प्रकार से है।

जैसा कि पूर्व प्रसंग में स्पष्ट किया गया है कि अज्ञात एवं संदिग्ध वनौषधियों की जानकारी आदिवासियों एवं वनचरों की सहायता से प्राप्त की जा सकती है। मुझे कुछ नवीन जानकारी सिक्किम एवं लेह-लद्दाख के हिमालय क्षेत्रों में उपलब्ध जड़ी-बूटियों के सन्दर्भ में है, जो कि शास्त्रीय आदित्यपर्णी एवं ब्रह्मसुवर्चला हो सकती है इन उक्त द्रव्यों का उपयोग स्थानिक आमची प्राचीन काल से करते आ रहे हैं।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **आदित्यपर्णी, ब्रह्मसुवर्चला**

स्थानिक/भोटिया : **सैंगो**, तिब्बती : **यांकी, याकिमो**

वानस्पतिक नाम : ***Crepis racenifera.***

भृंगराजकुल ***(Compositae)***

स्वरूप : तलोत्थ, एकवर्षायु, 6 इंच तक ऊँचा, मृदु कांड वाला शाकीय क्षुप होता है। काण्ड :- नालाकार, श्वेत-हरित वर्ण का मूल सहित कांड तोड़ने पर पीतवर्ण का दुग्ध, पर्ण :- पुष्कर पत्र सदृश्य, मूलोद्भव, दन्तुर, तीक्ष्णाग्र, मृदु, श्वेताभ वर्ण के, पुष्प :- कांड उर्ध्वसश्रित, अनेक मुण्डकों में, गोल, सूर्यमण्डलाकार, दलपत्र पीतवर्ण के, मूल :- कन्दिल, पीतवर्ण के दुग्ध वाला होता है। पञ्चांग स्वाद में कटु एवं तीक्ष्ण होता है। स्थानिक आमची पञ्चांग का उपयोग मुख्य रूप से करते हैं। पुष्प भेद से यांकी के चार भेद मानते हैं। यांकी कारपो, यांकी सरपो, यांकी मारपो, यांकी स्मन्यपो। तिब्बती चिकित्सकों का कहना है कि इस बूटी को यांकी इसलिये कहते हैं कि यह बूटी बर्फीली पहाड़ियों पर पाई जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टुबर, **प्रयोज्य अंग :** पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : यह वनौषधि लेह लद्दाख क्षेत्र के खरदुंगला, चुमाथांग, पुगाघाटी, शुरूघाटी, नुब्राघाटी एवं सिक्किम प्रदेश के उत्तरी सिक्किम छोलामी, युमिसेमडोंग, ठकुन, यांकला, जौगरी, भूटान के सीमांत क्षेत्रों के बर्फीले हिमनदों के आस-पास पथरीले नमदार स्थानों पर 4,000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 5,200 मीटर की ऊँचाई तक पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त अन्य परम्परागत उपयोग की निम्न वनौषध प्रजातियां भी इन स्थानों पर पायी जाती हैं। स्थानिक तिब्बती चिकित्सक इन प्रजातियों का अपने चिकित्सा में उपयोग करते हैं।

1. आदित्यपर्णी *Crepis socenofera.*
2. रेनकुन *Crepis depressa.*
3. संगों *Crepis cremathoclium.*
4. ब्रह्मसुवर्चला *Lactuca oriontalis* Boiss.
5. चठी *Cremanthodium decaisnei* C.B. Clarke.

स्थानिक प्रयोग : उपरोक्त सभी वनौषध द्रव्यों का आमची चिकित्सा (तिब्बती चिकित्सा) में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। इन क्षेत्रों में स्थानिक आमचियों का कहना है कि इनके पंचांग का उपयोग ज्वर, यकृत विकार, रक्त विकार, अस्थि-भग्न, आदि रोगों पर प्रयोग करते हैं। एक मूलिका में यांकी (आदित्यपर्णी) का उपयोग मात्रा के अनुसार रेचक एवं वामक रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इन क्षेत्रों में आमची लोग स्वयं द्रव्यों का संग्रह करते हैं। स्थानिक भाषा में इन द्रव्यों को यांकी, सैंगों, रेनकुन, ड़ितासांजीन कहते हैं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त सन्दर्भ स्थलो, स्थानिक प्रयोगों, स्वरूप सादृश्यता, प्राप्तिस्थान एवं गुणधर्मों की साम्यताओं से प्रतीत होता है कि शास्त्रीय आदित्यपर्णी, ब्रह्मसुवर्चला, सुवर्चला उपरोक्त वनौषध द्रव्यो से ही हो सकते हैं। जिनका काफी समय से आमची लोग परम्परागत प्रयोग करते आ रहे हैं। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में टीकाकारों ने जो ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी एवं हुलहुल आदि अर्थ किये हैं उसका मुख्य कारण सम्भवत: यही होगा कि गुणसाम्यता एवं कुछ स्वरूप-साम्यता के कारण ऐसा अर्थ किया हो।

अत: उक्त द्रव्यों से शास्त्रीय आदित्यपर्णी एवं ब्रह्मसुवर्चला में सूर्य मंण्डलाकार पुष्पा, सुवर्णदुग्धा, पंचपर्णी, हिमवत्प्रदेशें, हिमालये, कटु, तिक्ता, स्मृतिदा, पुष्कर सदृशा आदि संहितोक्त एवं गुण बोधक साम्यता मिलती है।

आयुर्वेदिक संहिता ग्रंथों में ब्रह्मसुर्वचला एवं आदित्यपर्णी का उल्लेख दिव्यौषधि वर्ग में किया गया है। सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अध्याय 30 में इन वनस्पतियों का बहुत विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है।

आदित्यपर्णी मूलिनी पंचभि: पत्रै: सुरक्तांशुककोमलै :।
आदित्यपर्णिनीज्ञेया, सादित्यानुवर्तिनी।।
कनकाभा जलान्तेषु सर्वत: परिसर्पेति :।।
ब्रह्मसुवर्चला: सक्षीरा पद्मिनीप्रख्या, देवी ब्रह्मसुर्वचला। *(सू.चि. आ. 30/29)*
ब्रह्मसुर्वचला हिरण्यक्षीरा पुष्कर सद्यशपत्रा:।। *(चरक)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अष्टांगहृदय कोष एवं धन्वन्तरि आदि निघण्टु ग्रंथकारों ने मंडूकपर्णी एवं ब्राह्मीभेद कर इन द्रव्यों की पहचान में संदिग्धता उत्पन्न कर दी है। दुर्गम स्थानों में दिव्यौषधि होने के कारण एवं ब्राह्मी सदृश्य गुणों के कारण निघण्टुकारों ने "सुवर्चला मंडूकी इति इन्दु ब्राह्मी इत्यपरे" आदि विचार टीकाकारों ने व्यक्त किया है। अष्टांगहृदय कोषकार ने भी अनेक द्रव्यों के नाम ब्रह्मसुर्वचला से र्निदिष्ट किये हैं। सम्भवतः ये द्रव्य उस समय भी पहचान के अभाव में संदिग्ध रहे हों इस विषय पर लेखक का विस्तृत लेख "आदित्यपर्णी-बह्मसुर्वचला", सचित्र आयुर्वेद, अंक-नवम्बर, 1980 की पत्रिका में प्रकाशित किया गया है। ब्रह्मसुंवर्चला एवं आदित्यपर्णी के गुणों में काफी समानता है।

इसके अतिरक्त भृंगराज कुल की औषधोपयोगी निम्न वनस्पतियाँ भी इस क्षेत्र में पाई जाती है।

क्र.स.	स्थानिक नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	स्वरूप एवं प्राप्तिस्थान
1.	खन-अटूंग	*Tragopogon gracile.*	पुष्प,मूल	एकवर्षायु तलोत्थ क्षुप।
2.	चा-अटूंग	*Tragopogon pratensis* Linn.	पुष्प, मूल	एकवर्षायु तलोत्थ पादप। पुष्पों का उपयोग रक्त एवं पैतिक विकारों में
3.	लुगमिक्(हिमपुष्पा)	*Aster heterochaeta* C.B. Clarke.	पुष्प	
4.	लुक्-युंग	*Aster himalicus* Clarke.	पुष्प, मूल	पुष्पों का प्रयोग आंतों की विकृति, रक्त दोष एवं कफ विकृति में चूर्ण के रूप में।
5.	खर-चोत	*Taraxacum officinale* Weber.	पञ्चांग	
6.		*Taraxacum officinale parvulum* (Walb) Hook. f.		
7.	खुर-मंग	*Taxaxacum tibeticum.*	पुष्प, मूल	पैत्तिक विकार एवं रक्तदोष में
8.	सोलो कारपो	*Waldheimia tomentosa.*	पञ्चांग	
9.	सोलो-मारपो	*Waldheimia glabra* Regl.	पंचांग, पुष्प	

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पुष्प एवं पंचाग का उपयोग तीव्रसुगंधित हवन सामग्री एवं धूपन में करते हैं। गुग्गुलु, नलदी, जटामांसी आदि सुगंधित द्रव्यों के साथ इसका पाठ है। सोलो कारपो एवं मारपों से आमची भिन्न किस्मों का प्रयोग करते हैं।

10.	खुरचोत-सरपो	*Sonchus asper* (L) Hill.	पुष्प, मूल	

स्थानिक प्रयोग : पंचाग का प्रयोग रक्तविकार एवं चर्म विकृति में करते हैं। फोड़ो-फन्सियों में इसका बाह्य लेप किया जाता है।

11.	तबाड़ी-सान	*Ainsliaea latofolia* D.Don.	मूल	एकवर्षायु शाकीय वनस्पति।

स्थानिक प्रयोग : तीव्र उदरशूल में तिब्बती चिकित्सक मूल के क्वाथ का प्रयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

12. ची-चुंक *Arctium lappa* Linn. पुष्प, मूल
13. ग्यातुर *Picris hieracioides.* पुष्प, पंचांग

स्थानिक प्रयोग : पुष्प एवं पंचांग चूर्ण का उपयोग कफ दोष, रक्तवमन एवं उदरशूल में करते हैं।

14. गन्दापाटा *Gnaphalium affine.* पत्र
15. *Gnaphalium stewartii* C.B. Clarke. पत्र

स्थानिक प्रयोग : पत्र का प्रयोग अग्निदहन कर्म में किया जाता है। गुम्पाओं में लामालोग इसके पुष्पों का उपयोग करते हैं।

16. चठीस-यन्पा *Ixeris gracilis* DC. पुष्प, पञ्चांग सभी प्रकार के पित्त विकारों में उपयोगी है।
17. युर्गी-सींग-कारपो *Senecio dianthus* Franch. पुष्प
18. गु-टुस-सरपो *Senecio scandens* Bach-Ham. पुष्प
19. क्यूस-साँची *Senecio chrysanthemoides* DC. पुष्प
20. लुग-मिक-नगपो *Carpesium lipskyi* Linn. पुष्प
21. स्गो-ज्जा *Cremanthoidum oblongatum* C.B. Clarke. पुष्प
22. छिर-मेतोक-छिवा *Cirsium souliei* C.B. Clarke. पुष्प
23. मिग्-चंग-सरपो *Pulicaria insignis* Gaertn. पुष्प
24. जी-चन-छओ *Siegesbeikin pubescens.* पञ्चांग
25. यांग-ठंग-छओ *Bidens pilosa* Linn. पञ्चांग
26. *Bidens tripartita* Linn.
27. फलेन *Eupatorium cannabinum* Linn. पञ्चांग
28. छिर-युंग-जांग छिर *Carduus acanthoides* Linn. पञ्चांग

उपरोक्त किस्मों का प्राय: चाईना में परम्परागत चिकित्सा में उपयोग किया जाता है, ये सभी प्रजातियाँ लद्दाख भूभाग में 3,300 मी. की उँचाई से लेकर 4,000 मीटर की ऊँचाई तक सुलभ है। वानस्पतिक स्वरूप के आधार पर एकवर्षायु शाकीय पादप है।

इस प्रकार भृंगराज कुल की कतिपय उपयोगी वनस्पतियाँ लद्दाख हिमालय में पाई जाती है। इस कुल में अधिकतर औषधियां दिव्यौषधि वर्ग की हैं। स्वर्णदुग्धा, हैमपुष्पा, पीतदुग्धा, पद्मा, सुर्यवल्ली, अजरूहा, आदित्यपर्णी, ब्रह्मसुवर्चला, अजा जैसी कतिपय अज्ञात वेदोक्त एवं संहितोक्त द्रव्यों की पहचान यहाँ की जा सकती हैं। शोधसाधकों को इस दिशा में चिंतन कर गवेषणा करनी चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हिमालय की मलेरिया (विषम ज्वर) की परम्परागत बूटी 'पशाक'

जैसा कि सर्वविदित है कि जम्मू-कश्मीर राज्य में लद्दाख क्षेत्र एवं पूर्व में सिक्किम प्रदेश का हिमालय क्षेत्र कई हजार वर्ग मील में फैला हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से लद्दाख क्षेत्र का भू-भाग शुष्क एवं कठोर पर्वत मालाओं से घिरा हुआ है। वनसम्पदा की दृष्टि से सिक्किम एवं लद्दाख दोनों सीमांत क्षेत्र अपना मे विशेष महत्व रखते हैं। सिक्किम प्रदेश हरे भरे वनों, पक्षियों और वन्य जन्तुओं के लिये विश्वविख्यात है सिक्किम प्रदेश के हिमशिखर कांचनजंघा की प्राकृतिक सुषमा से समस्त विश्व परिचित है। लद्दाख के लिये जम्मू कश्मीर होते हुये 500 कि.मी. की दूरी श्रीनगर से तय करके लेह पहुंचते हैं एवं सिक्किम के लिये सिलिगुड़ी, न्यूजलपाई गुड़ी होते हुये गंगटोक पहुंचते हैं। दोनों क्षेत्र जलवायु की दृष्टि से बर्फीले, शीत प्रधान माने जाते है। इस भाग के अधिकतर क्षेत्र बर्फ से ढके रहते हैं।

लद्दाख में प्रमुख नदी इन्डस (सिंधु) बहती है एवं सिक्किम में टिस्ता बहती है। इस नदियों की घाटियों में बसने वाले लोग अधिकतर बौद्ध सम्प्रदाय के होते हैं। लद्दाख क्षेत्र में बालती मुसलमान एवं बौद्ध लोग बसते हैं। इनकी सभ्यता एवं संस्कृति तिब्बत, चीन, मंगोलिया एवं भूटान आदि देशों से मिलती है। लद्दाख क्षेत्र में करगिल, नुब्रा, चुमाथांग एवं जन्सकार ये प्रमुख तहसीले हैं। इन सभी क्षेत्रों में कई किस्में की औषधोपयोगी वनस्पतियों पायी जाती है। यह क्षेत्र देवलोक के नाम से जाना जाता है। लद्दाख को खनिजों का प्रदेश भी कहा जाता है। इन क्षेत्रों में आमची चिकित्सा का विशेष महत्व है जो कि भोट लिपि में हैं।

लद्दाख के समान सिक्किम भी हिमकेशरी प्रदेश कहा जाता है। इस प्रदेश की कांचनजंघा की पांचों पर्वत श्रेणियों को इष्टदेव मानते हैं। सिक्किम क्षेत्र में लेपचा एवं भोटिया जो बौद्ध सम्प्रदाय को मानते है बसते है। सर्वप्रथम लेपचा एवं भोटिया आकर सिक्किम में बसे हैं जो कि बौद्ध धर्मावलम्बी है। इस प्रदेश में भी गेजींग, नामची, मंगन, सिंगटम ये चार मुख्य जिले हैं। समस्त क्षेत्र पर्वतीय है। यह प्रदेश ऊँची नीची विषम पहाड़ियों एवं ढलानों पर बसा हुआ है। नेपाली लोग निचले भागों पर काफी संख्या में रहते हैं। खेती इन लोगों का मुख्य व्यवसाय है। बड़ी इलायची इस प्रदेश की मुख्य उपज है जो कि प्रकृति की देन है। सतरों के भी बाग काफी संख्या में पाये जाते है। वनसम्पदा की दृष्टि से भी इस प्रदेश का विशेष महत्व है। कतिपय परंपरागत उपयोगी वनौषधियां इन सीमांत प्रदेशों में पाई जाती है। केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली के सौजन्य से लेखक को इन दोनो सीमांत क्षेत्रों में वनौषधि सर्वेक्षण का सुअवसर प्राप्त हुआ है। जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र की परंपरागत जड़ी-बुटियों का पता लगाने में सफलता मिली है। यहाँ मलेरिया में उपयोगी वनौषधि पशाक के विषय में जानकारी दी जा रही है। जिसका प्रभाव क्वीनीन के सदृश्य एवं निरूपद्रव है। इन क्षेत्रों में बसने वाले आदिवासी एवं स्थानिक चिकित्सक इस बूटी का प्रयोग करते हैं।

व्यक्तव्य : इन दोनों क्षेत्रो के परम्परागत चिकित्सक पशाक के नाम से भिन्न-भिन्न कुल की भिन्न वनस्पतियों का मलेरिया (विषम ज्वर) हेतु प्रयोग करते है तथा दोनो ही वनस्पतियों का मलेरिया में प्रभाव देखने को मिलता है। जो निम्न है।

1. लद्दाख क्षेत्र की बूटी पशाक - *Centaurea depressa* Bicb. (Compositae)
2. सिक्किम क्षेत्र की बूटी पशाक - *Dicharo febrifuga* Lour. (Saxifragaceae)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

1. लद्दाख क्षेत्र में मलेरिया में उपयोगी बूटी 'पशाक'

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **विषमज्वरनाशिनी,** लद्दाखी/भोटिया : **पशाक**

वानस्पतिक नाम : ***Centaurea depressa*** Bicb.

भृंगराजकुल *(Compositae)*

स्वरूप : एकवर्षायु, कांड उर्ध्वसंस्थित, 3 फुट से लेकर 5 फुट तक ऊँचा रहता है। कांड :- मृदु, धारीदार, पत्र :- अभिलट्वाकार, अभिमुख, साधारण एवं सरल धार वाले होते हैं। पुष्प :- मुण्डक में, समूह रूप में एवं गुलाबी वर्ण के होते हैं। मूल :- कतिपय छोटी-छोटी उपमूलों में। समस्त पञ्चांग स्वाद में तिक्त एवं तोड़ने पर ही इसकी गंध से ही मुख कड़वा हो जाता है। यही इसकी विशेष पहचान है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोग अंग :** पत्र, पुष्प, काण्ड।

प्राप्ति स्थान : यह वनौषधि लद्दाख में मूलबैक, सासपो 'ला', शेरगोल, करलिग, नियेमो आदि स्थानों पर पायी जाती है।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण आमची चिकित्सक मलेरिया (विषमज्वर) एवं अन्य सामान्य ज्वरों में इस वनौषध का प्रयोग करते हैं। इन लोगों का कहना है कि अकेले पशाक पंचांग चूर्ण एवं क्वाथ दिन में चार बार प्रयोग करने से सभी प्रकार के ज्वरों में लाभदायक है। हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला नामक स्थान पर तिब्बतियन-मेडिकल सेन्टर एवं फार्मेसी में इस बूटी का प्रयोग औषधि के रूप में होता है।

1. स्थानीय आमची पशाक पंचांग चूर्ण को गरम पानी के साथ 4 ग्राम से 6 ग्राम की मात्रा दिन में तीन-चार बार प्रयोग करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि यह औषधि विषमज्वर एवं सभी ज्वरों में लाभकारी है। क्वाथ विधि से भी पशाक पंचाग का काढा दिन में दो चार बार प्रयोग करने लाभ होता है। तिब्बतीय चिकित्सक ज्वरध्न घटकों में भी पशाक डालते हैं।

2. पत्र एवं पुष्पों के चूर्ण का प्रयोग पुष्करमूल, पांगेन (त्रायमाण) तिक्ता आदि द्रव्यों के साथ मिलाकर कास एवं पार्श्वशूल में प्रयोग किया जाता है।

3. तिब्बती चिकित्सक पत्र, पुष्पों को ठीवा के रोग (पित्तविकार), शिर:शूल एवं आमाशयिक शूल तथा रक्तदोष में भी प्रयोग करते हैं।

मेरे विचार में ऐसे उपयोगी एक मूलिका द्रव्यों का आयुर्वेदिक फार्मेकोपिया में समावेश किया जाना चाहिये। इस दिशा में आयुर्वेद के शास्त्रविदों एवं औषधिगुणधर्मविदों को विशेष ध्यान देना अपेक्षित है।

2. सिक्किम क्षेत्र में मलेरिया में उपयोगी बूटी 'पशाक'

द्रव्यनाम :- हिन्दी : **बसाक,** नेपाली : **असेरू,** स्थानिक : **पशाक**

वानस्पतिक नाम : ***Dichroa febrifuga*** Lour.

पाषाणभेद कुल (Saxifragaceae)

स्वरूप : बहुवर्षायु गुल्म जाति की वनस्पति है। काण्ड :- मृदु, बहुशाखीय एवं आसानी से टूटने वाला,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पर्ण :- एकान्तर, लट्वाकार, 3 इंच लम्बे, 2 इंच तक चौड़े, पत्रधार दन्तुर एवं हरे वर्ण के होते हैं। पुष्प :- गुच्छों में, शाखाग्र एवं नीलाभवर्ण लिये हुये कुछ श्वेताभ होते हैं। फल :- गुच्छों में, मांसल एवं पकने पर कृष्ण वर्ण के। मूल कई उपमूलों वाला होता है। पत्र एवं काण्ड स्वाद में कड़वा होता है।

पुष्पकाल : मई-जून। **प्रयोज्य अंग** : छाल, पत्र, पुष्पकलियां।

प्राप्ति स्थान : यह वनौषध प्राय: नेपाल, आसाम, दार्जिलिंग, खासिया की पहाड़ियों, सिक्किम प्रदेश के गंगटोक, नामची, रिनोक, देवराली, रानीपल, गैजीग आदि क्षेत्रों के नमदार स्थानों पर 1,200 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,700 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक लेपचा एवं नेपाली लोग बसाक के मूलत्वक्, पत्र एवं पुष्पों का प्रयोग तीव्र ज्वर, विषम ज्वर (मलेरिया) में करते हैं। ग्रामीण लोग क्वाथ विधि से इस औषध को तैयार करते हैं। ज्वर से पीडित रोगी को दिन में 3-4 बार 2 औस की प्रति मात्रा में प्रयोग करते हैं। आधुनिक खोजों के आधार पर इस वनस्पति में मलेरिया नाशक 'क्वीनीन' से कई गुना अधिक क्रियाशील तत्व फैब्रीफ्यूजीन *(febrifugine)* पाया जाता हैं। पत्र, छाल, पुष्पों में भी ज्वरध्न तत्व मिलता है। अत: लेखक के विचार से राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम में इन वनौषिधियों का विशेष योगदान सिद्ध हो सकता है। वर्तमान में शोधकार्य कर जनहित में इन वनस्पतियों से औषधि तैयार की जानी चाहिये।

ERICACEAE

द्रव्यनाम :- संस्कृत : तालीस, पालु, तिब्बती : तली, टामा, नेपाली : सुनपाती

वानस्पतिक नाम : ***Rhododendron anthopogon*** D.Don.

स्वरूप : बहुवर्षायु, अनेक शाखीय गुल्म है। काण्ड :- रक्ताभवर्ण के होते हैं, पत्र :- हरिताभ, अध:पृष्ठ पांडुवर्ण का, पर्ण :- सुगन्धित एवं उड़नशील तेल वाला होता है। पुष्प :- रक्त एवं पीत वर्ण के उग्रसुगन्धी वाले होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर। **प्रयोज्य अंग** : पत्र, पुष्प।

प्राप्ति स्थान : लेह-लद्दाख में यह वनस्पति जोजी 'ला', शापी 'ला', सुरूघाटी एवं जन्सकार में पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त इस वंश की औषधोपयोगी निम्न वनस्पतियां भी इस क्षेत्र में पाई जाती है।

1. *R. campanlatum* D.Don.
2. *R. arboreum* Sm. लद्दाखी नाम : स्तग्मांसिंग-मेतोख :- इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पत्र एवं पुष्पों का प्रयोग ज्वर एवं कास में करते हैं। ये लोग तली (टामा) के पत्तों को उष्ण मानते हैं। पत्तों का उपयोग नमकीन चाय में करते हैं। शीतकाल में शीत को कम करने के लिये चाय में डालते हैं। अधिकतर मान्यता यह है कि लगातार तीव्रसुगन्ध लेने से नींद आ जाती है। हिमनदों एवं ढलानों में जब ये गुल्म पुष्पित होते हैं तो वनों में चारों ओर सुगंध फैल जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अतसीकुल (LINACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **अतसी,** तिब्बती/लद्दाखी : **जांगती,** हिन्दी : **अलसी**

वानस्पतिक नाम : ***Linum usitatissimum*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु, शाकीय वनस्पति है, काण्ड :- तलोत्थ, मृदु, पर्ण :- संयुक्त, सूच्याकार, पुष्प :- नील वर्ण के होते है।

पुष्पकाल : अगस्त-सिंतम्बर। **प्रयोज्य अंग :** बीज, पुष्प।

प्राप्ति स्थानः लद्दाख क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है। विशेषकर कारगिल, सांगू लेह आदि क्षेत्रों में यह वनस्पति उगाई जाती है। इसकी अन्य जंगली किस्म लद्दाख में पाई जाती है, जिस *Linum perenne* Linn. कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग : बीजों का लेप कतिपय औषध-द्रव्यों के साथ सन्धि विच्युति एवं भग्नों में करते हैं। तैल एवं बीजों का उपयोग सन्धि-वात, मूत्रवह विकारों में करते हैं।

निम्बुककुल (RUTACEAE)

द्रव्यमान :- संस्कृत : **टिम्बरू,** तिब्बती/लद्दाखी : **ऐरमा**

वानस्पतिक नाम : ***Zanthoxylum tibetanum.***

टिम्बरू ***(Zanthoxylum alatum* Roxb.)**

स्वरूप : मध्यम गुल्मक, काण्डत्वक् :- कार्की, तीक्ष्ण शल्यमय, शाकीय पर्ण :- एकान्तर, सवृन्त एवं सुगन्धित, पुष्प पीतवर्ण के, फल :- गोल, सुगन्धित, पकने पर रक्तवर्ण के, बीज :- मसृण, कृष्णवर्ण के।

पुष्पकाल : अगस्त-सितंबर।

प्रयोज्य अंग : बीज, छाल।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में यह नुब्राघाटी, जन्सकार की निचली घाटियों में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची बीजों का उपयोग उदरशूल, दन्तकृमि एवं मूत्रल के रूप में करते हैं। उदरकृमि में भी अन्य औषध-द्रव्यों के साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेद में टिम्बरू (तिजबल) का मुखशोधक एवं दन्तमन्जन के रूप में प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद में प्रायः *Zanthoxylum alatum* Roxb. के बीजों का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by eGangotri Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

तुम्बुरू प्राथितं तिक्तं कटुपाकेऽतिपित्तकृत्कटु: ।
रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रूच्यं लघु विदाहिच।।
कुष्ठशूलारूचिश्वास प्लीहकृच्छ्राणिनाशयेत् ।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

सुरणकुल ARACEAE

दिव्यौषधि "लक्ष्मणा"

संहिता एंव निघण्टु ग्रन्थों में लक्ष्मणा नामक वनौषधि का पुंसवन संस्कार के लिये विशेष उल्लेख आया है। इस बूटी से गर्भस्थित भ्रूण का पुरूष में परिवर्तन करने का विधान है। इसलिये लक्ष्मणा को पुत्रदा कहा है। लक्ष्मणा की पहिचान में संदिग्धता वनी हुई है। अत: हिमालय में लक्ष्मणा सदृश्य जो वनस्पतियां सर्वेक्षण कार्यकाल में मिली है। उनकी जानकारी इस प्रसंग में दी जा रही है।

संहिता काल एवं निघण्टु काल में लक्ष्मणा एक विशिष्ट एवं दिव्यौषधि के रूप में मानी गई है। इस औषधि का उपयोग प्राचीन काल से ही गर्भस्थ शिशु के लिंग परिवर्तन हेतु किया जाता रहा है। यह गर्भस्थ भ्रूण के लिंग परिवर्तन का कर्म - "पुंसवनमिति पुस्त्वकारकं कर्म" (चक्रपाणि दत्त) पुंसवन संस्कार के नाम से भी जाना जाता है। आयुर्वेद एवं वैदिक ग्रंथों में लक्ष्मणा का उपयोग पुत्र प्राप्ति के लिये पुंसवन संस्कार के प्रमुख घटकों के रूप में वर्णित है। भारत में अनेकों शताब्दियों से कतिपय गुणकारी दिव्यौषधियों का असीमित भंडार रहा है। परन्तु कालांतरण के कुप्रभाव के कारण कतिपय वनस्पतियाँ संदिग्ध एवं अज्ञात हो गयी है। लक्ष्मणा ग्रंथों में अनेकों स्थान पर वर्णित है।

'लक्ष्मणा पुत्र जननी वस्तगन्धाकृति भवेत्।' ताश्च शरत्काले पुष्पफलोपेतां घृष्टवा शनि दिने सन्ध्यायां तस्याश्चतुभांगेषु खदिर कीलित्याप्ति खाया वरेचयहस्त मूल पुष्पयोगे गते दिवाकरे मंत्रवत् गृहित्वा, समानवर्णा वत्साया गो: क्षीरेण यथा विधि नस्यं दद्यात्" *(सुश्रुत डल्हण टीका)*

यह औषधि पुत्र जननी एवं गर्भप्रदा है। जिसके मूल की आकृति पुत्र के आकार के समान है। इसकी गंध बकरी की गंध के समान आती है। शरदकाल में पुष्प-फल से युक्त लक्ष्मणा को देखकर शनि के दिन की संध्या को पुत्र प्राप्ति के लिये निमंत्रण देना चाहिये। उसके चारों तरफ खदिर कील गाड़ देनी चाहिये फिर पुष्य नक्षत्र में मूल सहित सूर्य के अस्त होने के बाद इस औषध को निकालना चाहिये।

पुत्राकार रक्ताल्प बिन्दु भिर्लाञ्छितच्छदा।
लक्ष्मणा पुत्र जननी वत्स गन्धा कृति भवेत्।। *(च.शा. 8/19)*
कथिता पुत्रदावश्या लक्ष्मणा मुनिपुङ्ग्वे। *(भा.प्र.)*

लक्ष्मणा के पत्तों पर लाल रंग के छोटे-छोटे बिन्दुओं से पुरूष का आकार बना हुआ होता है जो कि देखने में वस्त गंध (बकरी की गंध) के सदृश्य या वन अजवायन के समान जान पड़ता है, जो कि औषधि पुत्रदा है।

मदनपाल निघण्टु में भी लक्ष्मणा के पत्तों पर लाल रंग के छोटे-छोटे बिन्दुओं पर पुरूष का आकार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बना हुआ होता है जो कि श्वेत पुष्पा नागिनी अर्थात् परिसृत लता है जिस के कांड रोमिल होते हैं, ऐसा उल्लेख किया है।

लक्ष्मणा पुत्रदा रक्त बिन्दु पत्रा च नागिनी।
गौक्षीर सदृश पुष्पै रोमबल्लि समन्वितम्।।
रक्त बिन्दुयुक्तं पत्रं लक्ष्मणकार उच्येते,
लक्ष्मणा गर्भदा शीता सरावृष्या त्रिदोषनुत्। *(मदनपाल निघण्टु)*

विभिन्न लेखकों द्वारा एवं कतिपय स्थलों पर जो वनस्पतियां लक्ष्मणा के नाम से प्रयुक्त की गई हैं वे निम्न है।

1. *Solanum surattense* Burm f.	(Solanaceae)	श्वेतपुष्पा कण्टकारी
2. *Biophytum sensitivum* (Linn.) DC.	(Geraniaceae)	लज्जालु
3. *Atropa mandragora.*	(Solanaceae)	
4. *Mandragara automnalis* Spreng.		लक्ष्मणा
5. *Mandragara officinarum* Bertol.	(Solanaceae)	लक्ष्मणा
6. *Smithia conferta* Sm.	(Leguminosae)	

उपरोक्त वनस्पतियों का उल्लेख विभिन्न लेखकों द्वारा लक्ष्मणा के रूप में मिलता है। यदि वनस्पति शास्त्र एवं शास्त्रीय तथ्यों को सामने रखते हुये इन सभी द्रव्यों का अध्यन किया जाय तो विवाद उत्पन्न हो जाता है कि वस्तुतः "लक्ष्मणा" किस वनस्पति को स्वीकार जाय, जिसमें निम्न शास्त्रोक्त गुणों का समावेश हो –

1. रक्त बिन्दु छदा : पत्तों पर रक्त बिन्दु सदृश चिन्ह हों।
2. वस्तगन्धा : बकरी की गंध के समान गन्ध विशेष पादप।
3. पुत्राकारकन्दा : मूलकन्द पुत्र (मानवाकृति) के सदृश हो।

यदि विभिन्न मतानुसार घोषित की जाने वाली वनस्पतियों को गुणों की कसौटी परखा जाय तो उपरोक्त वनस्पतियाँ उचित प्रतीत नहीं होती है। जैसे कुछ वैद्य *Solanum surttense* (श्वेतपुष्पा कण्टकारी) को लक्ष्मणा स्वीकारते हैं परंतु भाव प्रकाश निघण्टु में व अन्य स्थलों पर "श्वेत कंटकारी" का पृथक अस्तित्व माना है तथा इसके गुण शास्त्रोक्त लक्ष्मणा से भी समानता अवश्य रखते हैं ऐसी चिकित्सकों की मान्यता है। अतएव इसी वनस्पति को जो एक ओर श्वेत कंटकारी के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें किंचितमात्र भी संदेह नहीं है उसको लक्ष्मणा के रूप में कैसे स्वीकार किया जाय ?

यदि "पुत्राकारकन्दा" अर्थात् मूलकंद पुत्र के सदृश होने से अभिप्राय है तो जड़ या मूल कंद का आकार पुत्र जैसा होता है, अथवा होना चाहिये तथा इसके पत्तों पर रक्तबिन्दु चिन्हित होने चाहिये। वत्सगंध का तात्पर्य अजागंध से हैं, कतिपय स्थलों पर वस्तगंधा से पुत्रकाकार का ही समानार्थ लिया जाता है लेकिन मान्यता में वत्स पुत्रक, जिसके अनुसार मानव के अंडकोष को पोता या पौत्र भी कहते हैं से ही वत्सगंधा का अभिप्राय है। इससे यह स्पष्ट होता है की शास्त्रीय लक्ष्मणा का कंद अंडकोष की तरह गोल व रक्ताभ होना चाहिये और

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रत्येक कंद के शीर्ष पर रज्जु के आकार के बंधन से, बाल के समान पत्रकों का गुच्छा होना चाहिये। यदि उपयुक्त तथ्यों को प्रामाणित मानते हुये लक्ष्मणा के रूप में घोषित की गयी वनस्पतियों में यह प्रारूप देखा जाय तो उपरोक्त वनस्पतियों में शास्त्रीय साम्यता स्पष्ट प्रतीत नही होती है।

लेखक को भारत के कतिपय प्रदेशों के वनस्पति-सर्वेक्षण काल में स्थानिक परम्परा के आधार पर लक्ष्मणा से साम्यता रखने वाली जो वनस्पतियाँ उपलब्ध हुई हैं। उनमें दो वनस्पतियाँ लक्ष्मणा से काफी साम्यता रखती है जिसका वानस्पतिक परिचय प्राप्तिस्थान एवं पारम्परिक उपयोग निम्नलिखित है।

1. *Remusotia vivipara* Schott. (Araceae)

स्वरूप : यह बहुवर्षीय, भौमिक कन्दिल, शाक, मूलकंद :- ग्रंथित, लगभग डेढ़ या ढाई से.मी. व्यास और प्रसर, भौमिक कंद परतदार तथा कंद के ऊपरी भाग से रज्जु सदृश रोमिल गुच्छे प्रतीत होते हैं। आकार में यह कंद वृषण सदृश्य व रक्ताभ वर्ण के होते हैं। कंद पृथक अस्तित्व रखते हैं। पर्ण चिकने, गहरे हरितवर्ण के लट्वाकार, पर्णशीर्ष तीक्ष्णाग्र एवं पत्र का आकार हृदयाकार, 6 से 10 सें.मी. चौड़े और 15 से 17 सें.मी. लंबे, पत्र उर्ध्वतल, मृदुल रोमिल, पर्ण कुछ नारंगी वर्ण के होते हैं। पुष्पक्रम स्पेडिक्स, पुष्प-सुगंधित, नर व मादा पुष्प एक ही पौधे पर होते हैं। नर तथा मादा पुष्प मध्य में बन्ध्य पुष्पों के द्वारा अलग-अलग हुये रहते हैं। अंडाशय :- अंड़ाकार, मांसल तथा समूह में, पत्र द्वारा ढके रहते हैं।

पुष्पकाल : मई से जून तथा **फलकाल** : जुलाई से अगस्त में रहता है।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति उष्ण-कटिबंध प्रदेशों तथा हिमालय के विभिन्न समशीतोष्ण भागों उत्तराखण्ड, भागीरथी घाटी (उ.प्र.), हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर तथा मध्य प्रदेश के वनों में मुख्यतया अमरकण्टक के वनो में पायी जाती है।

स्थानिक प्रयोग : मध्यप्रदेश के आदिवासी इसके लाल रंग के कन्दीय जड़ों को बाजीकर, गर्भास्थापना तथा बांझ स्त्रियों के पुन्सवन कर्म के लिये इसका उपयोग करते हैं। आदिवासियों के मतानुसार यह पौधा पुत्रदा हैं। इसके कंद वृष्ण के समान एवं पुत्रक के सदृश प्रतीत होता है। जिसमें प्रत्येक कंद के ऊपर के भाग पर रज्जु के आकार का एक वंधन होता है तथा इसके ऊपर पत्तों वाला गुच्छा होता है। यह कंद दो-तीन संख्या से बंधन से युक्त होते हैं जो कि पथरीली भूमि पर प्रसरित होता है। इसके ऊपर पत्ते होते हैं जो देखने में रक्तबिन्दुच्छदा प्रतीत होते हैं। जिसकी साम्यता शास्त्रीय लक्ष्मणा से है अतः इससे स्पष्ट होता है कि यह शास्त्रीय लक्ष्मणा हो सकती है। जिसका कार्मिक परीक्षण अपेक्षित है।

2. *Aralia qauinquelfolia* (Araliaceae)

स्थानिक/भोटिया : **धोकुम-थायो**, नेपाली : **लाल फूली**

स्वरूप : यह बहुवर्षीय 45 से 60 सें.मी. ऊँचा शाकीय पौधा है। पत्तियां एकान्तर क्रम में, तथा संयुक्त पालीवत्, अवृन्त तथा भालाकार, रोमिल, कंद :- गांठदार तथा सफेद, पुष्प क्रम छत्रक, ब्राह्य दल 5, पुमंग 5, अंडाशय अधोवर्ती, फल काला तथा रक्त बिंदु युक्त।

पुष्प काल : अगस्त-सितम्बर। **फलकाल** : सितम्बर अक्तुबर।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति हिमालय में 2,500 मीटर से 3,600 मीटर तक की ऊँचाई पर आर्द तथा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

छायादार स्थानों पर विशेषकर उत्तरी सिक्किम में पायी गयी है।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण बल्य, वाजीकरण हेतु तथा स्थानिक चिकित्सा पेट सम्बन्धित विकारों तथा वृक्क विकारों की चिकित्सा हेतु प्रयोग करते हैं।

3. *Panax pseudoginseng* Wall. (Araliaceae)

द्रव्यनाम :- प्रचलित : जिनसैंग

यह वनस्पति सिक्किम एवं उत्तराखण्ड हिमालय में पाई जाती है। यहां के मूलवासी इसके मूल का प्रयोग वाजीकरण एवं गर्भास्थापन के लिये करते हैं। इसे तिब्बत व चीन में **'जिनसेंग'** के नाम से भी जाना जाता है और इस वनस्पति की जड़ को अत्यंत प्रभावशाली मानते हैं। इसके पत्र वर्तुलाकार, पुष्प श्वेत व बीज रक्तबिदूं वर्ण, देखने में आकर्षक होते हैं। इसके गुण भी लक्ष्मणा के समान है। इस प्रदेश में इस पौधे की अनेक प्रजातियां पायी जाती है, परन्तु स्थानीय लोगों का मत है कि उपर्युक्त वर्णित प्रजाति ही अत्यंत प्रभावशाली है।

अत: लेखक का विचार है कि उपयुक्त वनौषधियो पर आमयिक परीक्षण होना अत्यंत आवश्यक है। शास्त्रीय लक्ष्मणा के विषयों में अनेकानेक मतभेद हैं, उसके निराकरण हेतु इन वनंस्पतियों का गहन अध्ययन अपेक्षित है तभी शास्त्रोक्त दिव्य वनस्पति "लक्ष्मणा" की उचित पहचान हो सकती है।

PRIMULACEAE

छुरकांग *(Primula denticulata* capitata (Hook.)

द्रव्यनाम :- तिब्बती : छुरकांग, कीचे

वानस्पतिक नाम : ***Primula denticulata capitata*** Hook.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पर्ण मूलोद्भव, दन्तुर, पुष्प :- सनाल, गुच्छों में नील वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर।

प्रयोज्य अंग : पुष्प।

प्राप्तिस्थान : लद्दाख क्षेत्र में इसकी कई किस्में पाई जाती है। पुष्प-भेद से ये रक्त, श्वेत, पीत वर्ण के कई किस्मों के होते हैं। पुष्प-भेद से स्यांग-टिल-मारपो, स्यांग टिल-सरपो कहते हैं।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पुष्पों का उपयोग कास, अंगमर्द में करते हैं। इस कुल की औषधोपयोग अन्य वनस्पति भी यहाँ पायी जाती है। जो निम्न है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by IKS-MoE

1. स्गा-तिक-स्गुनप्पो *Androsace elliptica* Royle.
2. स्यांग-टिल-मारपो *Primula elliptica* Royle.
3. स्यांग-टिल-सरपो *Primula sibirica* Jacq.

रतनजोत कुल : (BORAGINACEAE)

द्रव्यनाम :- हिन्दी : **रतनजोत, गोजिह्वा,** लद्दाखी : **डिमोक,** बालती : **ग्रीमोक**

वानस्पतिक नाम : ***Onosma bracteatum*** Wall.

स्वरूप : काण्ड एकवर्षायु, उर्ध्वसंश्रित, मूल :- बहुवर्षायु, मूलकाकार, रक्तवर्ण का, कांड :- रोमिल, श्वेताभ वर्ण का, पर्ण :- खरस्पर्श, रोमिल, पुष्प :- गुलाबी वर्ण के, रोमिल होते है। एक अन्य जाती भी यहाँ पायी जाती जिसे *Onosma echioides* Linn. कहते है

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूल।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग रक्तवमन एवं फेफड़ों के विकारों में करते हैं। रतनजोत का तिल तेल के साथ प्रयोग करते से दग्धव्रण ठीक हो जाते हैं।

लद्दाख क्षेत्र में इस कुल की अन्य वनस्पतियाँ भी पाई जाती हैं। जिनका लद्दाखी आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं।

1. *Arnebia tibetana* Kurz.
2. *Macrotomia benthami* DC. (लालजड़ी, काँगी)
3. *Cynoglossum wallichi.*

शंखपुष्पी कुल (CONVOLVULACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **आकाशवल्ली,** यूनानी : **अफ़्स्तीमून**

लद्दाखी : **तीस्ता-साँजीन,** बालती : **रट सेजागो**

वानस्पतिक नाम : ***Cuscuta capitata*** Roxb.

स्वरूप : पराश्रित, आरोही, प्रसरणशील, लताजाति की वनस्पति है। काण्ड :- रक्ताभ हरितवर्ण का, मसृण, पुष्प :- श्वेत, रक्ताभ वर्ण के होते हैं। यहाँ अन्य किस्म भी पायी जाती है, जिसे *Cuscuta europaea* Linn. कहते है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** कांड।

स्थानिक प्रयोग : दोनों किस्में करगिल, लेह सासपोला, खालोटेस क्षेत्र में पाई जाती हैं।

स्थानिक प्रयोग : आमची बालों को लंबे करने के लिये तेल में पकाकर इसका उपयोग करते हैं। आमची लोग लूंग (वातव्याधि) पक्षाघात आदि व्याधियों में कतिपय घटक द्रव्यों के साथ इसका प्रयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यनाम :- तिब्बती : **थन-युन-हां**

वानस्पतिक नाम : ***Convolvulus arvensis*** Linn.

स्वरूप : परिसृत लता जाति की वनस्पति है। खेतों के आस-पास सर्वत्र उपलब्ध है। पुष्प : श्वेत-गुलाबी रंग के।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची कतिपय चिकित्सा योगों में पञ्चांग का उपयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस कुल की अन्य औषध उपयोग की वनस्पतियाँ भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। जिसमें तावन-हा *Calystegia hederacea* मुख्य हैं।

जीवन्ती कुल (ASCLEPIDACEAE)

द्रव्यनाम :- तिब्बती : **स्गों-तुकमों-यूं**

वानस्पतिक नाम : ***Cynanchum acutum*** Linn.

स्वरूप : आरोही परिसृत एवं तलोत्थ शाकीय वनस्पति है। पत्र को तोड़ने पर दूध निकलता है। पुष्प गुलाबी वर्ण के, फलियाँ :- संयुक्त, श्रृंगी के आकार की होती है।

स्थानिक प्रयोग : मूल एवं पत्र का स्थानिक आमची चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। यह नमीकला आदि स्थानों पर उपलब्ध है। अन्य किस्में भी लद्दाख में पाई जाती है। जिसमें *Cynanchum glaucum* Wall. मुख्य हैं जो करगिल, सासपोला में पायी जाती है।

त्रायमाणकुल (GENTIANACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **त्रायमाण,** लद्दाखी/तिब्बती : **त्तिक्ता, पांगेन, ग्यातिक**

वानस्पतिक नाम : ***Gentiana moorcroftiana*** Griseb.

स्वरूप : एकवर्षायु, परिसृत एवं तलोत्थ शाकीय वनस्पति है। कांड :- मुद्द, स्वाद में तिक्त, पर्ण :- मूलोद्भव एवं कुछ किस्मों में काण्ड संसक्त होते हैं। पुष्प :- नील एवं गुलाबी रंग के होते हैं।

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग :** पुष्प, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 5,000 मीटर की ऊँचाई तक इसकी कई किस्में खरदुंगला, टंगलंगला, बड़ालाचापास, फोटूला एवं जन्सकार घाटी में पाई जाती है। तिब्बती चिकित्सा प्रणाली में जिन किस्मों का औषध में उपयोग होता है वे इस प्रकार से हैं।

1. स्पांग्यान-कारपो	*Gentiana elgida* Linn.
2. स्पांग्यान-सरपो	*Gentiana humilis* Stev.
3. स्पांग्यान-सांग्-नक्	*Gentiana filistyla.*
4. कीलचे	*Gentiana tibetica.*
5. कीलचे-कारपो	*Gentiana straminea.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

6. कीलचे-नगपो *Gentiana dahurica.*
7. त्रायमाण *Gentiana kuroo.*

स्थानिक प्रयोग : पुष्प भेद से श्वेत, नील, पीत, रक्त कई किस्मों के पांगेन एवं तिक्ता का स्थानिक आमची अपनी चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। तिक्ता एवं पांगेन भेद के अलग-अलग प्रयोग करते हैं। तिक्ता के पांच प्रकार मानते हैं। यथा-1. चागसिक, 2. गयातिक, 3. समुचुतिक, 4. जंगतिक, 5. पलतिक् सम्भवत् ये पांचों किस्में *Gentiana* एवं *Swertia* की हो सकती है। पांगेन का उपयोग तिब्बत एवं चाईना के आमची अधिक करते हैं। पांगेन सुनपों, कांचच्छुग एवं स्पांग्यान-नगपो का उपयोग लद्दाखी आमची रक्तशोधक, ज्वरध्न, पित्तविकार एवं शिरःशूल में क्वाथ तथा चूर्ण के रूप में करते हैं। स्पांग्यान नगपो (नील पुष्प) वाले पुष्पों का उपयोग लद्दाखी आमची अनेक औषध-घटकों में करते हैं। इनका विश्वास है कि यह पुष्प हिमालय में सबसे अन्तिम दिनों में खिलता है। पुष्पों का उपयोग ग्रीवा के विकार, फुफ्फुस विकार में करते हैं। पुष्प के खिलने पर हिमपात होना शुरू हो जाता है और लद्दाखी धीरे-धीरे ऊँचाई से नीचे घाटियों में उतरने लग जाते हैं।

त्रायमाण (*Gentiana kuroo* Royle)

तुण्डिकेरी (टौन्सिलाईटिस) एवं प्रतिश्याय में ये लोग 7 किस्म की बूटी मिलाकर चूर्ण एवं वटी बनाते हैं।

औषधियोग : स्पांग्यान, कतूर, लिसी, चुकांग, करकुम, तिक्ता, ग्यातिक इन सभी द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण तैयार करके 2 से 4 ग्राम की मात्रा में दिन में 3 बार देते हैं।

आयुर्वेदिक गुण धर्म :

> **त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा कफपित्तहा।**
> **ज्वर हृद्रोग गुल्मार्शो भ्रमशूलविषप्रणुत्।।** *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

द्रव्यनाम :- संस्कृत : किराततिक्त, लद्दाखी/तिब्बती : ग्यातिक, तिक्ता, हिन्दी : चिरायता

वानस्पतिक नाम : ***Swetia cordata*** Wall.

स्वरूप : एकवर्षायु, तलोत्थ, शाकीय वनस्पति है । कांड मृदु, पत्र :- एकान्तर, हृदयाकार, मसृण, पुष्प :- पत्रकोणीय, बैंगनी रंग के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर । **प्रयोज्य अंग :** पञ्चांग ।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति लेह-लद्दाख की प्रायः सभी घाटियों में जोजीला से लेकर जन्सकार तक पाई जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

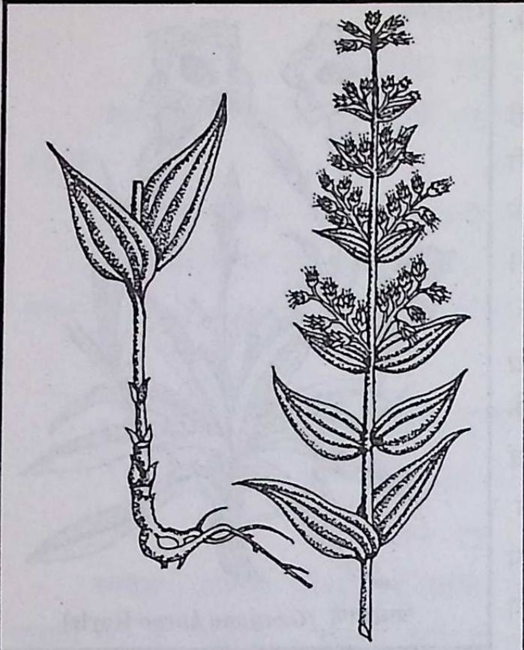

चिरायता (*Swetia chirata* Ham.)

इसके अतिरिक्त निम्न किस्में भी लद्दाख में पायी जाती है। जिनका चिकित्सा में उपयोग होता है।

1. *Swetia chirata* Buch-Ham.
2. *Swetia purpurascens* Wall.
3. *Swetia cunelea* Wall.

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पंचांग के क्वाथ का प्रयोग रक्तविकार एवं पैत्तिक विकार में करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कतिपय ज्वरहर योगों में भी इस द्रव्य का प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदिक गणुधर्म :

किरात सारकोरूक्ष:शीतलस्तिक्तको लघुः ।
सन्निपात ज्वरकास कफ पित्तास्त्र दाहनुत् ।।
कास शोथ तृषा कुष्ठ ज्वर ब्रण कृमिप्रणुतू ।।
(भाव प्रकाश)

द्रव्यनाम :- लद्दाखी/तिब्बती : **च्यागतिक गोमा**

वानस्पतिक नाम : ***Halenia elliptica*** D.Don.

स्वरूप : एकवर्षायु, उर्ध्वसंश्रित, शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- मसृण, धारीदार, पत्र :- एकान्तर, हृदयाकार, अभिलट्वाकार, पुष्प :- पत्रकोणीय, हरित-पीताभ वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति शुरूघाटी, जोजी 'ला', द्रास, शापी 'ला', कारजा आदि स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : चिरायता सदृश ज्वरहर योगों में पञ्चांग का उपयोग किया जाता है। इसका शास्त्रीय चिरायता के स्थान पर व्यापारी मिलावट करते हैं।

कंटकारीकुल (SOLANACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **पारषीक यवानी**, लद्दाखी : **लंगतांग, लंगथंग्चे**

वानस्पतिक नाम : ***Hyoscyamus niger*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु कांड, मूल बहुवर्षायु, काण्ड :- बहुशाखीय, मृदुरोमिल, पर्ण-धतूरे के पत्र सदृश, पत्रतट कटे हुये, पुष्प :- बैंगनी रंग के, फल :- कोषीय, बारीक बीजों वाले होते हैं। इसकी दूसरी छोटी किस्म भी लेह में पाई जाती है जिसे लद्दाख में शमशी-चशिमयां *Hyoscyamus pusillus* Linn. कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर।

प्रयोज्य अंग : मूल, पत्र, बीज।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति करगिल रेन्ज, द्रासब्लाक, लेह, खरबू आदि स्थानों की सड़को के आस-पास पायी जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची तीन द्रव्यो से बने कृमिध्न योग में इसका उपयोग करते हैं। इस योग को 'चेसुम' कहते हैं। इसमें मेंलचे (पलाश बीज), लंगथंगचे (पारषीकयवानी), चितांग (वायविडंग) है। पत्र एवं फूल को ये लोग विषैला मानते हैं। इस पौधे की मूल से ऐट्रोपीन एवं हायोसायमीन तत्व निकाला जाता है।

आयुर्वेदिक गुणधर्म :

पारषीक यवानी तु यवानी सद्यृशी गुण:।
विशेषात्पाचनी रूच्या ग्राहिणीमादिनी गुरू:।।

(भाव प्रकाश निघण्टु)

पारषीक यवानी *(Hyoscyamus niger* Linn.)

द्रव्यनाम :- लद्दाखी : लांगटन, धतूरे

वानस्पतिक नाम : ***Physochlaina praealta*** Miers.

स्वरूप : एकवर्षायु, कांड :- बहुशाखीय, पर्ण :- मूलोद्भव, रोमिल, मृसण, गन्धवाले, पुष्प :- बैंगनी रंग के फल :- कोषीय, बीज :- चपटे, बारीक, संख्या में अनेक।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** पत्र, मूल।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति करगिल, द्रास, बुद्ध खरबू, सांकू आदि स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : बहुत कम मात्रा में इसका औषध उपयोग यहाँ पर है। ये लोग पंचाग को विषैला मानते हैं हाथ तक नहीं लगाते हैं। स्थानिक आमची इसे धतूरे भी कहते हैं। इसका मूल स्वरस मुंह में लग जाये तो आदमी पागल हो जाता है, ऐसा ग्रामीणों का विश्वास है। ये लोग इसे काट कर फेंक देते हैं।

लांगटन, धतूरे *(Physochlaina praealta* Miers)

यह वनस्पति काफी महत्व की है। इससे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ऐट्रोपीन सल्फेट नाम एल्केलाईड प्राप्त किया जाता है। विदेशों से काफी मात्रा में ऐट्रोपीन आयात किया जाता है। लद्दाख में यह वनस्पति काफी मात्रा में उपलब्ध है। इस क्षेत्र में इस वनस्पति को संग्रह कर एट्रोपीन सल्फेट निकाला जा सकता है तथा विदेशी मुद्रा की बचत की जा सकती है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **काकमाची**, हिन्दी : **मकोय**, लद्दाखी : **सुकलो**, तिब्बती : **डलूयन्वा**

वानस्पतिक नाम : ***Solanum nigrum*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। कांड बहुशाखीय, पत्र :- सवृन्त, पुष्प :- श्वेत वर्ण के, फल :- पकने पर रक्त एवं कृष्ण वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : फल, पञ्चांग।

स्थानिक प्रयोग : यह बूटी लेह लद्दाख में सर्वत्र सुलभ है। इसके पके हुये फलों के रस का प्रयोग मुख के सौन्दर्य प्रसाधन हेतु करते हैं। सर्वागंशोथ में पञ्चांग क्वाथ का प्रयोग किया जाता है।

आयूर्वेदिक गुण-धर्म : **माचिकाऽम्ला रसे पाके कषाया शीतला लघुः।**
पक्वातिसार पित्तास्त्र कफ कण्ठामयापहा।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

कुटकी कुल (SCROPHULARIACEAE)

द्रव्यनाम : संस्कृत : **कुटकी**, लद्दाखी : **हौंगलैंग**

वानस्पतिक नाम : ***Picrorhiza kurroa*** Benth.

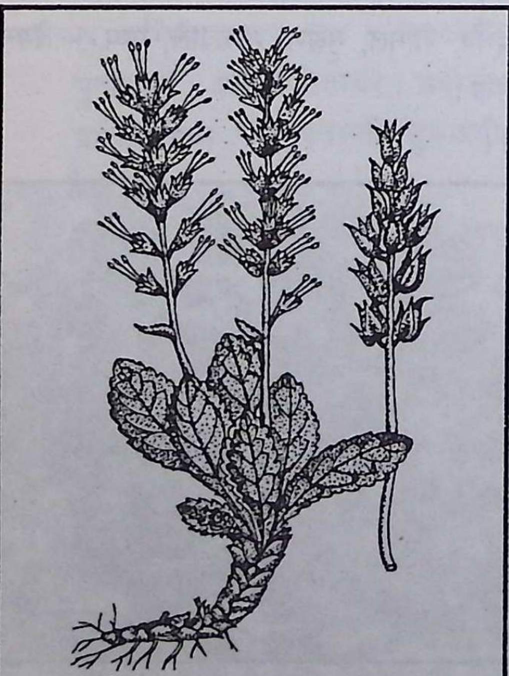

कुटकी *(Picrorhiza kurroa* **Benth.**)

स्वरूप : कांड एकवर्षायु, मूल-बहुवर्षायु, प्रसरणशील जाति की वनस्पति है। नम एवं छायादार स्थानों पर यह बूटी पैदा होती है। पत्र :- मूलोद्भव, दंतुर, हरितवर्ण के होते हैं। पुष्प-मञ्जरी में नील एवं बैंगनी रंग के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : कांड, मूल।

प्राप्तिस्थान : यह वनस्पति लेह लद्दाख के जोजी 'ला', शांकूघाटी, शुरू घाटी, शापीला, जन्सकार घाटी, नुब्राघाटी आदि स्थानों पर पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : मूल एवं काण्ड चूर्ण का उपयोग स्थानिक आमची ठीवा (पित्तविकार), यकृत विकार एवं कामला में करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि यह यकृतरोगों की प्रभावकारी औषध है। कतिपय औषध घटकों में इसका उपयोग किया जाता है। व्यापारिक रूप से इस क्षेत्र से इस बूटी का संग्रह किया जा सकता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आयुर्वेदिक गुण-धर्म :

कट्वी तु कटुका पाके, तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः।
भेदनी दीपनी हृद्या, कफ पित्त ज्वरापहाः।।
प्रमेह श्वास कासास्त्र, दाह कुष्ठ कृमिप्रणुत् ।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

द्रव्यनाम :- लद्दाखी/तिब्बती : **लुगरू-मुंगपो,** बालती : **संगूसन्मा**

वानस्पतिक नाम : ***Pedicularis purpurea*** Pennel.

स्वरूप : एकवर्षायु, शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- तलोत्थ, रोमिल, पर्ण :- दन्तुर, अभिमुख, मूलोद्भव, पुष्प :- नील एवं गुलाबी वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पुष्प।

प्राप्ति स्थान : सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में इसकी कई किस्में पाई जाती है। यह वनस्पति हिमनदों के समीप एवं बर्फीले ढलानों के आस-पास सर्वत्र पाई जाती है।

इस वंश की औषध उपयोग की निम्न किस्में भी इस क्षेत्र में पाई जाती है।

1. लुगरू-स्मुग्पो *Pedicularis oliveriana.*
2. लुगरू-सरपो *Pedicularis pycnantha* Boiss.
3. लुगरू-मारपो *Pedicularis longiflora* Rudolph. पुष्प पीले रंग के होते है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची श्वेत, पीत, रक्त, गुलाबी भेद से चार किस्मों के पुष्पों का औषध रूप में उपयोग करते हैं। इन पुष्पों का उपयोग जलोदर, शोष, फुफ्फुस एवं यकृत विकारों में करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस कुल की अन्य औषध उपयोगी वनस्पतियाँ भी इन घाटियों में पाई जाती है। जो निम्न है।

1. सिंगि-सरचे *Verbascum thapus* L.
2. छिलदुंग *Veronica javanica* Blume.
3. वशका *Veronica ciliata* Fisch Eim.
4. अवीश *Hemiphragma heterophylla* Wall.
5. पश्चवा *Lancea tibetica* Hook. f. & Thoms.
6. *Lagotis scrophularia.*

तुलसी कुल (LABIATAE)

द्रव्यनाम :- यूनानी : **जूफा,** हिन्दी : **दयाकुंची,** लद्दाखी : **डियांक्, डयांकू**

वानस्पतिक नाम : ***Nepeta longibracteata*** Benth.

स्वरूप : एकवर्षायु, शाकीय, सुगन्धित वनस्पति है। काण्ड :- मृदु रोमिल, पर्ण :- अभिमुख, सवृन्त,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्प :- मंञ्जरी में, नीलवर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग** : पुष्प, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति लेह-लद्दाख में खरदुगंला, शापी 'ला', नमीक 'ला', एवं शुरूघाटी में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पुष्पों एवं पंचांग का उपयोग श्वास, कास एवं फुफ्फुस विकारों में करते हैं। इसे तिब्बती आमची श्वसनसंस्थान के विकारों की एक उपयोगी वनस्पति मानते हैं। यूनानी चिकित्सक Nepeta की किस्मों में जूफा मानते हैं। यह आमाशयिक विकार नाशक, रक्तसंग्राहक, पुयनाशक है।

बाजार में जूफा के नाम से कई प्रकार की किस्मों के फूल मिलते है। इस सन्दर्भ में लेखक द्वारा "नागार्जुन" पत्रिका (अंक-जून, 1978) में विस्तृत लेख प्रकाशित किया गया है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : वन्ययवानी, जंवेण, बालती : तुवरा

वानस्पतिक नाम : ***Thymus serpyllum*** Linn.

स्वरूप : उग्रसुगंधित परिसृत वनस्पति है। पत्र :- अभिमुख, काण्ड :- मृदु, बहुशाखीय, पुष्प :- गुलाबी-रक्त वर्ण के मंञ्जरी में।

पुष्पकाल : अगस्त। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग, पुष्प।

प्राप्ति स्थान : यह बूटी करगिल एवं द्रास में सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग पंचांग का प्रयोग उदरशूल एवं उदर-कृमि में करते हैं। प्रसूताविकार में इसके चूर्ण एवं क्वाथ का प्रयोग करते हैं। खमीरे की रोटी में इस बूटी का चूर्ण डालते हैं। इनका कहना है कि ऐसा करने से दीपन-पाचन होता है।

इसके अतिरिक्त इस कुल की औषध उपयोग की निम्न वनस्पतियाँ भी लद्दाख में पाई जाती है।

1. जिपची — *Nepeta salviaefolia* Royle. द्रास, सूरू, खरबू में
2. चीरूग्-सरपो — *Nepeta cataria* Linn.
3. चिरूग्-स्मुगपो — *Elsholtzia calycocarpa.*
4. चिरूग्-स्मुगपो — *Elshotizia cristata* Willd.
5. फोलोलिंग — *Mentha sylvestris* Linn. सर्वत्र पायी जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक लोग पत्र चूर्ण दाल एवं सब्जी में डालते हैं। मवेशियों के अफारा आदि विकारों में प्रयोग करते हैं।

6. स्यांगस्वा — *Prunella vulgaris* Linn. (उस्तखद्दूस)

स्थानिक प्रयोग : बालती मुसलमान पुष्प एवं पत्रों का उपयोग वात रोग एवं मानसिक विकारों में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

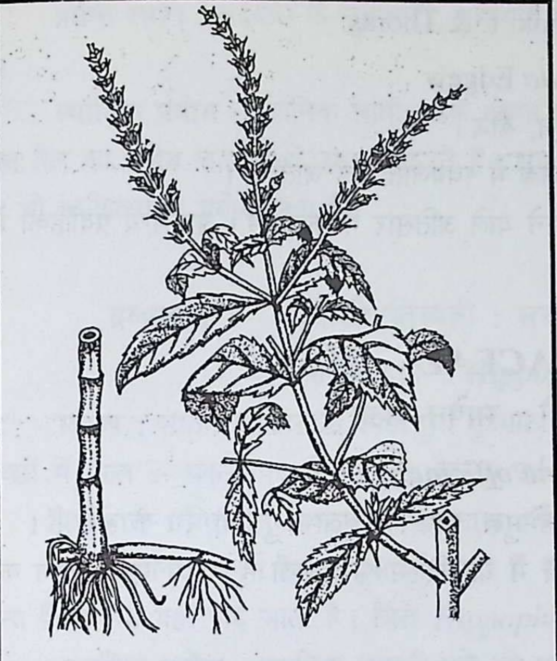

पिपरमैन्ट *(Mentha arvensis)*

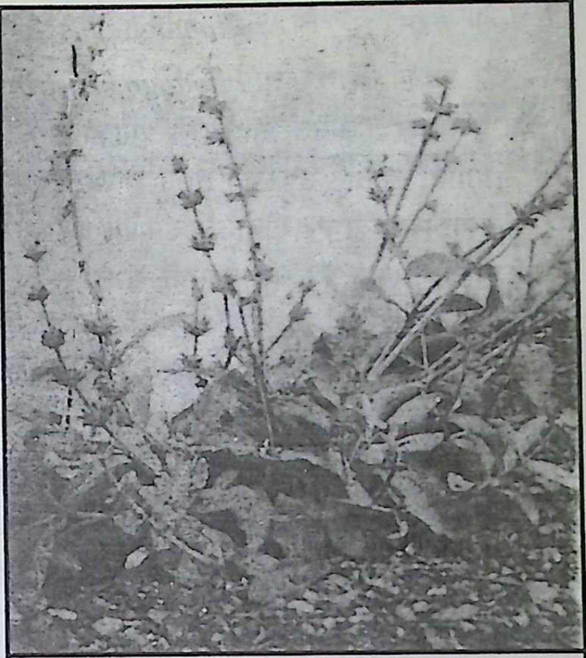

जीपची मुग्पो *(Salvia przewalskii)*

7. लुगमुर *Phlomis kawaguchi.* कास में पंचाग का उपयोग करते हैं।
8. पिपरमैन्ट *Mentha arvensis.*
9. डियांक् *Dracocephalum heterophyllum* Benth.
10. जीतुक *Ajuga lupulina.*
11. जिमतिक् *Leonurus heterophyllus* Benth.
12. जीपची मुग्पो *Salvia przewalskii.*
13. साथरा (बनतुलसी) *Origanum vulgarie* Linn, उर्दू :- मीरज़ान्जोश।

उपरोक्त सभी वनस्पतियों का तिब्बती एवं चाईना चिकित्सा प्रणाली में परम्परागत विधि से उपयोग किया जाता है ।

PLANTAGINACEAE

द्रव्यनाम :- लद्दाखी : थरम, खिलचे-कारपो

वानस्पतिक नाम : ***Plantago major*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पर्ण :- मूलोद्भव, संख्या में अनेक, लम्बे आकार के, पुष्प :- मंञ्जरी में, हरिताभ श्वेतवर्ण के, बीज मसृण होते हैं। इस वंश की अन्य दो प्रजातियाँ भी इस क्षेत्र में पायी जाती है, जो निम्न है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

1. नरम *Plantago tibetica* Hook. f. & Thoms.

2. स्मरंग, काछुरगुला *Plantago brachyphylla* Edgew

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल, बीज।

प्राप्ति स्थान : उपरोक्त तीनों किस्में लद्दाख क्षेत्र में स्वयंजात पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : बीजो का उपयोग बार-बार होने वाले अतिसार में करते हैं। आमजन्य प्रवाहिका में भी बीज का उपयोग स्थानिक आमची करते हैं।

VERBENACEAE

द्रव्यनाम :- तिब्बती : मापेन-छओ

वानस्पतिक नाम : ***Verbena officinalis*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु उर्ध्वसंश्रित काण्ड, पर्ण :- अभिमुख, पुष्प :- नीलाभ-गुलाबी रंग के होते हैं।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र की निचली घाटियों में यह किस्म पाई जाती है। पुष्प एवं पञ्चांग का उपयोग तिब्बती चिकित्सा प्रणाली में किया जाता है।

वास्तूककुल (CHENOPODIACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : सुगन्धवास्तुक, लद्दाखी : स्ंठयूं

वानस्पतिक नाम : ***Chenopodium botrys*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु, शाकीय वनस्पति, काण्ड एवं पत्र रक्त-हरित वर्ण के होते हैं। पुष्प छोटे सुगंधित होते हैं। इसकी अन्य दो किस्में भी सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है। जो निम्न हैं।

1. जंगची नगपो - *Chenopodium blitum* Hook.

2. जंगची कारपो - *Chenopodium glaucum* Linn.

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर । **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग सुगन्धित पञ्चांग को प्रसूत विकार में दूध के साथ देते हैं। स्थानिक आमची इन किस्मों का उपयोग उदर-कृमि, अर्श, यकृत विकार एवं मुखपाक में करते हैं। इसके अतिरिक्त मूत्रल एवं रेचक के रूप में भी इस बूटी का उपयोग किया जाता है।

ELAEAGNACEAE

द्रव्यनाम :- लद्दाखी : सरचिंग, सिरशिंग

वानस्पतिक नाम : ***Elaeagnus angustifolia*** Linn.

स्वरूप : मध्यम आकार का वृक्ष, 15 से 20 फुट ऊँचा होता है। कांड चिकना, हरित वर्ण का, शाखीय, पत्र :- अभिमुख, सुगन्धित होते हैं। पुष्प :- पीताभ-हरित वर्ण के, बीज तैलीय होते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग :** काण्ड, बीज, छाल।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख के नुब्राघाटी, चुमाथांग आदि स्थानों पर इसके मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक लामा इसके काण्ड एवं पुष्पों को धार्मिक पूजा कार्यों में प्रयोग में लाते हैं। बीज तैल का प्रयोग कासहर के रूप में करते हैं। सुगन्धित पुष्पों का तैल भी उपयोगी माना जाता है। छाल का भी चिकित्सा में प्रयोग होता है।

द्रव्यनाम :- लद्दाखी/तिब्बती : **सरमंगी, तरबूसींग,** हिमाचली : **आर्मील**

वानस्पतिक नाम : ***Hippophae rhamnoides*** Linn.

स्वरूप : मध्यम आकार के झाड़ीनुमा गुल्मक, काण्ड :- कंटकित, पत्र :- अभिमुख, संयुक्त, पुष्प :- गुच्छों में, फल :- पकने पर पीतवर्ण के, मांसल एवं खट्टे होते हैं।

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **फलकाल :** सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग :** फल, छाल।

प्राप्तिस्थान : संपूर्ण इन्ड़स (सिन्धु) घाटी में नदी के किनारे सर्वत्र इसके गुल्मक पाये जाते हैं। इसकी अन्य किस्म भी यहाँ पाई जाती है। जिसे *Hippophae salicifolia* D. Don. कहते है

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पके हुये फलों से खंडा (धनसत्व) तैयार कर औषध रूप में प्रयोग करते हैं। इसका उपयोग गुमचोट में लेप के रूप में करते हैं। पित्तविकार, दीपन-पाचन एवं फुफ्फुस जन्य कास में प्रयोग करते हैं।

शास्त्रीय द्रव्य वृक्षाम्ल (अम्लवेतस) के स्थान पर इसका प्रयोग किया जा सकता है। फलों के रस से शीतल पेय शर्बत तैयार किया जाता है।

अक्षोडादिवर्ग (JUGLANDACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **अक्षोड,** हिन्दी : **अखरोट,** लद्दाखी : **स्तरगा**

वानस्पतिक नाम : ***Juglans regia*** Linn.

स्वरूप : इसके मध्यम आकार के वृक्ष लद्दाख में लगाये हुये पाये जाते हैं। प्रायः इसकी खेती की जाती है।

स्थानिक प्रयोग : छाल का उपयोग रंग बनाने के काम में करते हैं। अखरोट के बीच वाले भाग (गिरी) को वरसून कहते हैं, इसका उपयोग कास में करते हैं। वरसून को तवे में भूनकर, चूर्ण का सेवन कास में चाय के साथ करते हैं। गिरी का वल्य के रूप में सेवन करते हैं

आयुर्वेदिक गुण-धर्म :

अक्षोटकोऽपि वाताद सदृशः कफपित्तकृत् ।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चुक्रादिवर्ग (POLYGONACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : अम्लपर्णी, यूनानी : रेवन्दचीनी, रूवाव, लद्दाखी/बालती : लाचू, चूचा, तिब्बती : चूम

वानस्पतिक नाम : ***Rheum tibeticum*** Meissn.

लाचू (*Rheum nobile* **Hook. f. & Th.**)

स्वरूप : काण्ड एकवर्षायु, भौमिक काण्ड बहुवर्षायु, पत्र :- मूलोद्भव, चौड़े, सवृन्त, पुष्प :- मंञ्जरी में सनाल, रक्त एवं श्वेतवर्ण के होते हैं। मूल पीताभ वर्ण का कन्दिल सदृश होता है। अन्य दो किस्में भी यहाँ पायी जाती है जो निम्न है।

1. चुमचा *Rheum emodi* Wall.
2. चूमारची *Rheum nobile* Hook. f. & Th.

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर । **प्रयोज्य अंग** : मूल, पत्र।

प्राप्ति स्थान : उपरोक्त किस्में लेह-लद्दाख क्षेत्र में सर्वत्र पाई जाती है। इन घाटियों में ये किस्में प्रायः सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : मूरक्राफ्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "ट्रैवल्स इन हिमालयाज" में रूवाव की उपादेयता के सन्दर्भ में उल्लेख किया है। काफी समय से इसके मूल का निर्यात चीन, तिब्बत में किया जाता रहा है। लामा एवं तिब्बती रंग बनाने के काम में मूल का उपयोग करते है। ग्रामीण लोग नये पत्तों का शाक बनाकर खाते है। आमची मूल का उपयोग दस्तावर एवं बाह्य चोट पर व्रणरोपण के लिये करते है।

आयुर्वेदीय गुण-धर्म :

रेवंदचीनी कटुस्तिक्ता, बल्या सा मृदुरेचनी।
विट संग शीत पित्तश्च दुष्ठव्रण संरोहणी ।। *(भाव प्रकाश)*

द्रव्यनाम :- लद्दाखी/तिब्बती : चूचा, चूमचा

वानस्पतिक नाम : ***Oxyria digyna*** (L.) Hill.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पत्र :- मूलोद्भव, संख्या में 3 से 5 तक, मृदु, मसृण, पञ्चांग स्वाद में खट्टा होता है। पुष्प गुलाबी रंग के, मंञ्जरीयों में खिलते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : पञ्चांग।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति लद्दाख क्षेत्र में सर्वत्र सुलभ है। नमदार एवं घास वाले ढलानों पर यह पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची तीन अम्ल द्रव्यों में इसका उपयोग करते हैं। ग्रामीण लोग पत्तों का शाक बनाकर खाते हैं।

द्रव्यनाम :- लद्दाखी/तिब्बती : **रम्बु, स्पांगरम-छेवा**

वानस्पतिक नाम : ***Polygonum affine*** D.Don.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है, पर्ण :- मूलोद्भव, अभिमुख, काण्ड :- मृदु, पुष्प :- रक्त वर्ण के, मूल :- गांठदार होता है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूल।

प्राप्तिस्थान : सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में इसकी कई किस्में पाई जाती है। इस वंश की औषध उपयोग की निम्न किस्में बाड़ालाचा पास, खरदुंगला, नमीकला, फोटू 'ला', शुरू आदि स्थानों पर पाई जाती है।

1. स्पागरम-लोभा-छेआ *Polygonum coriaceum* Linn.
2. धुरची-नगपो *Polygonum polystachyum* Wall.
3. निर्विषी *Polygonum rumicifolium* Linn.
4. चीन-ना-सा *Polygonum aviculare* Linn.
5. रिस-किस्-ठवो *Polygonum cymosum* Roxb.
6. रम्बु *Polygonum tubulosum* Boiss.

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग रक्तशोधक, कण्डू, आमशयशूल में करते हैं। कतिपय अन्य औषधि घटकों में इन किस्मों का प्रयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस कुल की अन्य वनस्पतियाँ भी यहाँ पाई जाती हैं। जिनका भोजन सामग्री एवं औषध रूप में प्रयोग किया जाता है।

1. कोटू, ब्रो *Fagopyrum tataricum* Gaertn.

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग इसके बीजों का आटा बनाकर एवं चावल की तरह पका कर खाते हैं। इस क्षेत्र में इसकी खेती भी की जाती है ।

2. चूचा *Rumex acetosa* Linn.
3. *R. webbeniana*

ULMACEAE

द्रव्यनाम :- लद्दाखी : **युम्बोक,** हिन्दी : **भग्नसन्धानकारी**

वानस्पतिक नाम : ***Ulmus parvifolia*** Jacq.

स्वरूप : मध्यम आकार का वृक्ष होता है। काण्ड मसृण, छाल की अन्तस्त्वचा पीत एवं नारंगी वर्ण की,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पत्र आदिमुख, पत्रतट-दन्तुर होते हैं। तिब्बत में *Ulmus pumila* भी पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग छाल का उपयोग स्त्रियों के बालों को लम्बा करने के लिये सिर पर लेपन करते हैं। सिर के बाल धोने से बाल मुलायम होते हैं। सिकरी में भी लाभ होता है। छाल का उपयोग अस्थिभग्न में भी करते हैं।

TAMARICACEAE

द्रव्यनाम : वालती : **उमरूक**, लद्दाखी : **उम्बु**

वानस्पतिक नाम : ***Myricaria elegans*** Royel.

परिचय : यह झाड़ीनुमा गुल्मक दरियाओं के किनारे प्रायः लेह तहसील की सभी घाटियों में पाया जाता है। यह पूगाघाटी, नुब्राघाटी एवं चुमाथांग में सर्वत्र सुलभ है। इसकी अन्य प्रजाति भी यहाँ पायी जाती है जिसे उम्बोक : *Myricaria germanica* Desv. कहते है

प्रयोज्य अंग : छाल, पत्र।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची पत्र एवं छाल का उपयोग अपनी चिकित्सा में करते है। रक्तविकार एवं प्रतिश्याय में क्वाथ विधि से पिलाते हैं। इसके अतिरक्त अधरंग में छाल-पत्र क्वाथ का स्वदेन एवं आभ्यन्तरिक प्रयोग कराते हैं।

BETULACEAE

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **भूर्ज, भोजपत्र,** लद्दाखी : **ट्रोगा,** बालती : **तक्पा**

वानस्पतिक नाम : ***Betula utilis*** D.Don.

स्वरूप : मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड :- बहुशाखीय, कांड त्वक :- भूरेरंग की, परतदार, चमकीली, पर्ण-सवृन्त, पुष्प हरितवर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग** : काण्डत्वक (भूर्जपत्र)।

प्राप्ति स्थान : यह वृक्ष लेह-लद्दाख में जोजीला, साफी 'ला', जन्सकार आदि क्षेत्रों में स्वंयजात पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची भूर्जपत्र की भस्म तैयार करते हैं। वाततवेदना में उष्णपरिषेक करते हैं। मूलक्वाथ गर्भाशयवेदना एवं शोध में उपयोगी मानते हैं। लामा लोग तंत्र-मंत्र में तावीज आदि बनाने के लिए भूर्जपत्र का प्रयोग करते हैं

आयुर्वेदिक गुण-धर्म :

भूर्जो भूतग्रहश्लेष्म कर्णरुक् पित्तरक्तजित्।
कषायो राक्षसघ्नश्च मेदो विषःहरः परः।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्नुही कुल (EUPHORBIACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **स्वर्णक्षीरी,** कश्मीरी : **हिरवी,** लद्दाखी : **थरनू**

वानस्पतिक नाम : ***Euphorbia thomsoniana*** Boiss.

स्वरूप : एकवर्षायु, शाकीय एवं गुल्मक जाति की वनस्पति है। मूल :- बहुवर्षायु, पीत दूध वाला, काण्ड :- तलोत्थ, पत्र :- एकान्तर, अवृन्त, पुष्प :- पीतवर्ण के होते है

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूल।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति, जोजी 'ला', शापी 'ला', द्रास आदि स्थानों में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त *Eupharbia* की औषध उपयोग की अन्य जातियों के पौधे भी लद्दाख में पाये जाते है। जो निम्न है।

1. युम-थिव-घुं-जिम *Euphorbia calrkeana* Hook.
2. थरन् *Euphorbia maddenii* Boiss.
3. थरन्-लोंग-छुंआ *Euphorbia tibetica* Boiss. बुद्ध खरबू, हेमिस में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची इसके दुग्ध एवं मूल का प्रयोग विरेचन के लिये करते हैं। कफ एवं चर्मगत विकारों में दूध का प्रयोग करते हैं।

गोक्षुरादिकुल (ZYGOPHYLLACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **गोक्षुर,** यूनानी : **खारेखसक,** लद्दाखी : **जेमा,** बालती : **काकोसोक**

वानस्पतिक नाम : ***Tribulus terrestris*** Linn.

स्वरूप : परिसृत, एकवर्षायु, शाकीय, वनस्पति है। पत्र :- चणपत्र सदृश, पुष्प पीत वर्ण के, फल :- काँटेदार होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** बीज।

प्राप्ति स्थान : यह बूटी लेह क्षेत्र की रेतीली जमीन पर सर्वत्र सुलभ है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची लोग बीज चूर्ण एवं क्वाथ का प्रयोग मूत्रल तथा पित्तविकारों में करते हैं। यूनानी हकीम बीजों का प्रयोग पुंस्त्वहर (नामर्दी) के लिये करते हैं।

आयुर्वेदिक गुण-धर्म :

गोक्षुरःशीतल : स्वादुर्वलकृद्बस्तिशोधनः
मधुरोदीपन वृष्यः पुष्ठिदश्चाश्मरीहरः ।।
प्रमेहश्वास कासाप्त, कृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

SALICACEAE

द्रव्यनाम :- लद्दाखी : **सोमच्यांग,** हिन्दी/संस्कृत : **जलवेतस**

वानस्पतिक नाम : ***Salix flabbellaris*** Anderss.

स्वरूप : मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष होते हैं। काण्ड :- मसृण, हरितवर्ण के, बहुशाखीय, पत्र :- लट्वाकार, अभिमुख होते हैं।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में वन विभाग द्वारा इन वृक्षों का रोपण कार्य किया जा रहा है। यह मवेशियों के चारे के लिये भी उपयोगी है। छाल का आमची औषध के रूप में उपयोग करते हैं।

इस क्षेत्र की जलवायु के अनुसार इसकी निम्न किस्में यहां पर रोपित की जा रही हैं।

1. *Salix alba* Linn.
2. *Salix fragilis* Linn.
3. *Salix pychostachya* Anderss.
4. *Salix angustifolia* Willd.

सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में वन विभाग द्वारा इन वृक्षों का रोपण का कार्य किया जा रहा है। खंडित चन्द्रमा का प्रदेश होने के कारण लद्दाख में वृक्षों का अभाव है। स्वयंजात वृक्ष देखने को नहीं मिलते हैं। यही कारण है कि आक्सीजन की कमी है। अतः उपरोक्त किस्मों का वृक्षारोपण कार्य इन सीमांत क्षेत्रों में विशेष रूप से किया जा रहा है।

MORACEAE

द्रव्यनाम :- अंग्रेजी : **होप,** हिन्दी : **सोमबल्ली**

वानस्पतिक नाम : ***Humulus lupulus*** Linn.

स्वरूप : यह लता जाति की वनस्पति है। सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में "रीजनल रिसर्च लैबोटरी" द्वारा इसकी खेती की योजना प्रारम्भ की गई है। यहाँ की जलवायु के अनुसार इसकी खेती की जा सकती है। औषध उपयोग की इस महत्वपूर्ण वनस्पति के पुष्पों का सुगन्धित लीकर (शराब) में विशेष उपयोग किया जाता है। यह अमेरिका का आदिवासी पौधा है। भारत में इसकी खेती की जा रही है। यह आर्थिक स्रोत का उपयोगी पौधा है।

द्रव्यनाम :- हिन्दी : **शहतूत**

वानस्पतिक नाम : ***Morus alba*** Linn.

इसकी भी खेती इन्ड़स वैली में की जाती है। फल एवं छाल औषध उपयोग में आते है।

रसोनकुल (LILIACEAE)

द्रव्यनास :- बालती : **विलाखो,** लद्दाखी : **स्कोचे, बिलाखो-फरनूं**

वानस्पतिक नाम : ***Allium augiculatum*** Kunth.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। मूल :- कन्दिल, पत्र :- मूलोद्भव, सुगन्धित, पुष्प सनाल, श्वेत एवं गुलाबी वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूल, पत्र।

प्राप्ति स्थान : लेह लद्दाख में यह वनस्पति द्रासब्लाक, करगिल, बुद्धखरबू, शुरू घाटी, खालसी आदि स्थानों पर पाई जाती है। इसके अतिरिक्त औषध उपयोग की निम्न किस्में भी लद्दाख में पाई जाती है।

1. सगोंन-पारूपा *Allium odorum* Linn.
2. *Allium humile*
3. च्यू-छलमी-अवु *Allium tuberosum* Roxb.

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग मूल एवं पत्रों का उपयोग दालों में मशालों के रूप में करते हैं। पत्तियों की सब्जी बनाकर खाते हैं। यह दीपन-पाचन का कार्य करता है। अग्निमांध में भी लाभ करता है। पंचांग को दूध में पकाकर प्रसूता स्त्रियों को देते हैं। सम्भवतः यह जम्बीर नामक सुगन्धित वनस्पति है। यथा :

"जम्बीर हरितशाकमुक्तरापये जम्बीरगन्धि।"

द्रव्यनाम :- यूनानी : सुरजांन, बालती : कपीचुंग

वानस्पतिक नाम : ***Tulipa stellata*** Hook.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड विहीन, पर्ण मूलोद्भव, पुष्प सनाल, मूल लशुन कन्द सदृश, एक गांठ वाला, श्वेत वर्ण का होता है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूलकन्द।

प्राप्ति स्थान : यह वनस्पति द्रास, मटाईन एवं कोकसर आदि स्थानों पर पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : यह मधुर एवं कड़वा भेद से दो प्रकार का होता है। मधुरकन्द को चुन कर खाया जाता है तथा कड़वे को सुरजांन कहते हैं। यूनानी वैद्यक में *Colchium luteum* Baker के मूलकन्दों को सुरंञ्जान के नाम से प्रयोग किया जाता है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : क्षीरकाकोली, तिब्बती : अविख्या-यन्पा

वानस्पतिक नाम : ***Fritillaia cirrhosa*** D.Don.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- छोटा, तलोत्थ, पत्र :- अभिमुख, पुष्प :- घण्टाकार, पीताभ हरित वर्ण के। मूल :- कन्दिल, श्वेत वर्ण का, गोल बदर (बिर) सदृश होते हैं। अन्य प्रजाति भी यहाँ पायी जाती है जिसे अविख्या-मेतोक्-सरपो *Fritillaria roylei* Hook. कहते है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूलकन्द।

प्राप्ति स्थान : दोनों किस्में लद्दाख क्षेत्र के जोजी 'ला', शापी 'ला', शुरूघाटी, जन्सकार आदि क्षेत्रों में पाई जाती है। स्थानिक आमची मूल का उपयोग बल्य एवं वृहंण के रूप में करते हैं।

टिप्पणी : यह अष्ठवर्ग का प्रमुख घटक द्रव्य क्षीरकाकोली है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

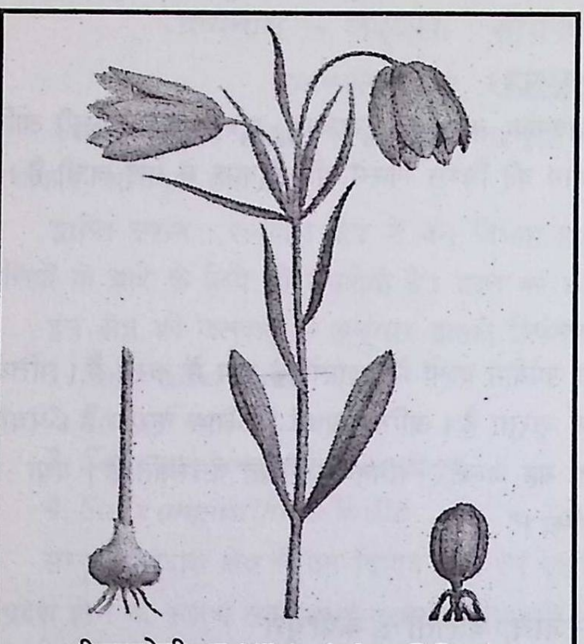

क्षीरकाकोली (*Fritillaia cirrhosa* D.Don.)

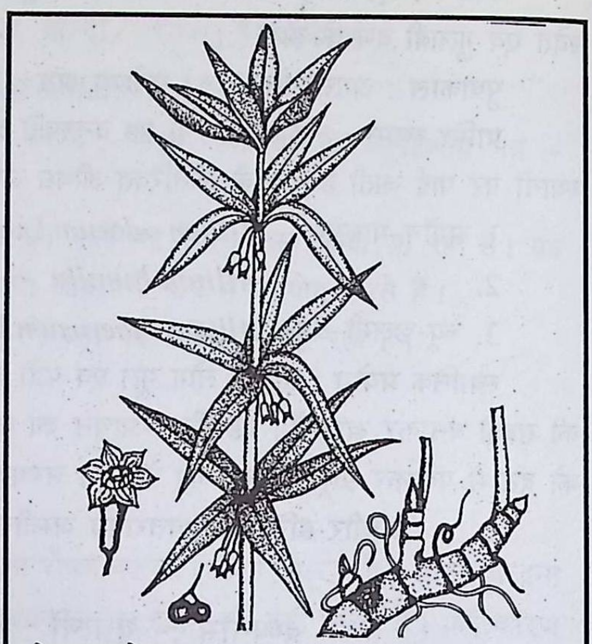

मेदा-महामेदा (*Polygonatum verticillatum* Allioni.)

आयुर्वेदिक गुण धर्म :

जायतेक्षीरकाकोली महामेदोद्भवस्थले।
सा शुक्लाक्षीरकाकोली, वयस्थाक्षीरवल्लिका।। *(भाव प्रकाश निघण्टु)*

लद्दाख क्षेत्र में इस कुल की औषध उपयोग की अन्य कई वनस्पतियाँ भी पाई जाती है। जिनका तिब्बती एवं चाईना चिकित्सा प्रणाली में प्रयोग किया जाता है जो निम्न है।

लद्दाखी नाम	वैज्ञानिक नाम	प्रयोज्य अंग
1. राग्यें	*Polygonatum cirrhifolium.*	मूलकन्द
2. लुगमें	*Polygonatum cathcarii* Baker.	मूलकन्द
2. मेदा-महामेदा	*Polygonatum verticillatum* Allioni.	मूलकन्द
3. जा-घुई-स्ताग्जी मेतोक	*Lilium lankongense.*	मूल
4. स्तागू-जीक-मेतोक	*Lilium lancifolium.*	मूल
5. स्ताग्-जीक-मेतोक-यन्पा	*Lilium* sp.	मूल
6. स्ताग्-जीक-मेतोक यन्पा	*Notholirion hyacinthinum.*	मूल
7. ड्रा-वे-लोमा-ठवे	*Cardiocrinum giganteum.*	मूल
8. यान्-लिंग-छओ	*Trillum govanianum* Wall.	मूल
9. चि-कांग-थिन	*Smilax borkii.*	मूल
10. आवा-	*Lloyodlia serotina* Roxb.	मूल
11. चिड़ियाकन्द (शतावरी भेद)	*Asparagus filicinus* Buch. Ham.	मूल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

RUTACEAE

द्रव्यनाम :– हिन्दी : हरमल

वानस्पतिक नाम : ***Peganum harmala*** Linn.

स्वरूप : परिसृत, बहुशाखीय, एकवर्षायु, शाकीय वनस्पति है। पत्र-गाजरपत्र सदृश, गंध वाले, पुष्प श्वेताभ वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल, बीज, पञ्चांग।

प्राप्ति स्थान : लेह तहसील में यह वनस्पति रेतीली भूमि पर पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग मूल का उपयोग कृमिघ्न के रूप में करते हैं। बीज एवं मूल को गर्भस्त्रावकर मानते हैं। बीज विषैला होता है। पंचांग का औषध रूप में प्रयोग किया जाता है।

IRIDACEAE

द्रव्यनाम :– तिब्बती/लद्दाखी : **ट्रेज्मा**

वानस्पतिक नाम : ***Iris ensata*** Thunb.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। मूल बहुवर्षायु होते है। मूल :- गांठदार कुछ सुगन्धित, पत्र मूलोद्भव, 3 से 5 इंच तक लम्बे, पुष्प नील वर्ण के होते हैं। अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पायी जाती है जिसे मंनीगे *Iris kamaonensis* Wall. कहते है।

पुष्पकाल : अगस्त, सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्ति स्थान : दोनों किस्में सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : मूल का प्रयोग कास एवं श्वासहर के रूप में स्थानिक आमची बराबर करते हैं। आयुर्वेदिक संहिताओं में हैमवती एवं श्वेतवचा के नाम से इस वनस्पति का उपयोग होना चाहिये । कुछ ग्रन्थकारों ने इसे श्वेतवचा स्वीकार किया है । बाजार में भी दूधिया वचा के नाम से जो मूलगांठ मिलती है वह *पारिस पोलिफाईला* का मूलगांठ है ।

CUPRESSACEAE

द्रव्यनाम :– संस्कृत : **हपुषा**, लद्दाखी : **शुकपा, धूप**, बालती : **चठू**

वानस्पतिक नाम : ***Juniperum macropoda*** Boiss.

स्वरूप : बहुवर्षायु, परिसृत, अनेक शाखीय, गुल्म जाति की वनस्पति है। सम्पूर्ण पञ्चांग सुगन्धित एवं रेजीन (Region) वाला होता है। पर्ण :- सूच्याकार, मांसल, फल : बेर के सदृश एक बीज वाले एवं पकने पर कृष्णवर्ण के, सुगन्धित होते हैं। अन्य किस्म भी यहाँ पायी जाती है। जिसे *Juniperus communis* Linn. कहते है।

पुष्पकाल : सितम्बर-अक्टूबर। **प्रयोज्य अंग** : पत्र, फल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्ति स्थान : इसकी किस्में लद्दाख क्षेत्र में करगिल, लेह, जन्सकार, चुमाथांग सभी तहसीलों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग पत्र एवं कांड का उपयोग रक्षोघ्न धूपन द्रव्य के रूप में करते हैं। पके हुये फलों का आमची चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। कांड को जलाने की लकड़ी के रूप में प्रयोग करते हैं।

वक्तव्य : शास्त्रीय हपुषा विचारणीय द्रव्य है। ठाकुर बलवंत सिंह जी ने की विस्त्रगंधा (हपुषा) के प्रयोग हेतु अपने विचार दिये है। हपुषा निघण्टुकारों ने दो प्रकार का बताया है। एक विस्त्र गन्ध होती है। द्वितीय प्रकार को मत्स्यगंधा वाले फल लिखे हैं। कितने ही लोग ईरान से आने वाले हव्वउल अरार को हपुषा मानते हैं। डा. गणेष देसाई ने जुनिफर ने फलों को हपुषा लिखा है। हव्वउल अरार के फलों का तेल वातहर, उत्तेजक दीपन, पाचन एवं मूत्रल है। शोथ में देने से शोथ कम होता है। जुनिफर को फारसी में हव्व उलअरार कहते हैं। इसका संधिवात में वाह्य उपयोग होता है। चरक, सुश्रुत आदि ग्रंथों में अतिसार, अर्श, अश्मरी आदि रोगों की चिकित्सा हेतु हपुषा का उल्लेख है।

EPHEDRACEAE

द्रव्यनाम :- प्रचलित : **सोम,** लद्दाखी/तिब्बती : **छैलदूंग, छेफट, छेलदुम**

वानस्पतिक नाम : ***Ephedra gerardiana*** Wall.

स्वरूप : बहुवर्षायु परिसृत एवं बहुशाखीय वनस्पति है। पर्ण :- मूलोद्भव, बेलनाकार, हरितवर्ण के होते हैं। पुष्प :- पत्र कोणीय, पीलाभवर्ण के। अन्य किस्में भी पायी जाती है। जो निम्न है।

1. *Ephedra saxatilis*
2. *Ephedra intermedia* Schrenk.

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** काण्ड पत्र।

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र की शुष्क पहाड़ियों पर इसकी तीनों किस्में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची यकृत, फुफ्फुस विकारों में क्वाथ एवं चूर्ण का उपयोग करते हैं। काण्ड का दातौन करते हैं। मूल को जलाने के रूप में प्रयोग करते हैं। यहाँ काफी मात्रा में यह वनस्पति उपलब्ध है। आयुर्वेद में सोमकल्प के नाम से इसके काण्ड का उपयोग होता है। इसके काण्ड में इफेड्रीन नामक तत्व पाया जाता है। जिसका उपयोग श्वास (दमा) की औषध बनाने में किया जाता है।

मुंज्जातक कुल (ORCHIDACEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **मुंज्जातक,** हिन्दी : **सालमपंज्जा,** लद्दाखी : **बंगलक,** बालती : **वोहंगा**

वानस्पतिक नाम : ***Orchis latifolia*** Linn.

स्वरूप : एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड :- तलोत्थ, पर्ण :- एकांतर, अभिलट्वाकार, पुष्प :- मंज्जरी में, गुलाबी रंग के, मूल :- कन्द सदृश, हाथ के पंजे के आकार का होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्ति स्थान : सम्पूर्ण लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति द्रास, करगिल, शुरूघाटी, शापी 'ला', जन्सकार आदि क्षेत्रों में पाई जाती है। अन्य प्रजाति भी इस क्षेत्र में पायी जाती है। जिसे संजीटू : *Orchis foliosa* Lindl. कहते है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूल का उपयोग बाजीकरण एवं रसायन योगों में करते हैं। अण्डकोष सम्बधी विकारों में भी मूल का प्रयोग होता है। इसके सेवन करने से शुक्राणुओं की वृद्धि होती हैं।

इसकुल की अन्य औषधोपयोगी वनस्पतियाँ भी लद्दाख क्षेत्र में पायी जाती हैं जो निम्न है।

1. वंग्लप्-घन्वा	*Spiranthes sinensis*
2. लद्-नम्-वुजांग-घुग	*Cypripedum tibeticum*
3. वांगलप	*Gymnadenia crassinerris*
4. पुशेलचे	*Dendrobium moniliforme*
5. पुशिलेचे-लोमा-चेवा	*Loegogyne occltata*
6. ड्राज्गां, लोलदन	*Bulbophyllum sp.*
7. चिसिन-छवो	*Habenaria sp.*
8. जीवक-ऋषभक	*Mycrostylis wallichi*

उपरोक्त उपयोगी वनस्पतियाँ लेह लद्दाख के सीमांत क्षेत्रों में पाई जाती है। तिब्बती एवं चाईना चिकित्सा प्रणाली में इनका उपयोग बल्य, वृंहण एवं उदर-विकारों में किया जाता है। लेखक के विचार से हिमालय क्षेत्र में कतिपय कन्द एवं क्षीर प्रधान दिव्यौषधियां विद्यमान हैं। स्थानिक आदिवासियों के सहयोग से इन द्रव्यों का नामरूप परिचय प्राप्त कर इसका समावेश आयुर्वेदिक चिकित्सा में किया जा सकता है।

ARALICEAE

द्रव्यनाम :- तिब्बती : मरीलंगोनकू

वानस्पतिक नाम : ***Aralia pseudogineseng.***

स्वरूप : एकवर्षायु, शाकीय, तलोत्थ वनस्पति है। काण्ड :- सीधा, पत्रक खंडित, पुष्प गुलाबी श्वेत वर्ण के, मूल कन्दिल होता है।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग** : मूल।

प्राप्ति स्थान : इस कुल की कई उपयोगी वनस्पतियाँ सिक्किम, लद्दाख, भूटान आदि क्षेत्रों में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : आमची मूल का प्रयोग बल्य एवं रक्तरोधक के रूप में करते है। यह गर्भाशय रक्तस्त्राव एवं रक्त वमन को रोकता है। कोरियन जिन्सेन के गुण-धर्मो से इसकी कुछ साम्यता मिलती है। इस दिशा में शोध करने की आवश्यकता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ARACEAE

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **अजगरी, गोनसी,** लद्दाखी/तिब्बती : **सौं, तावा,** नेपाली : **लावा**

वानस्पतिक नाम : ***Arisaema wallichinaum*** Hook.

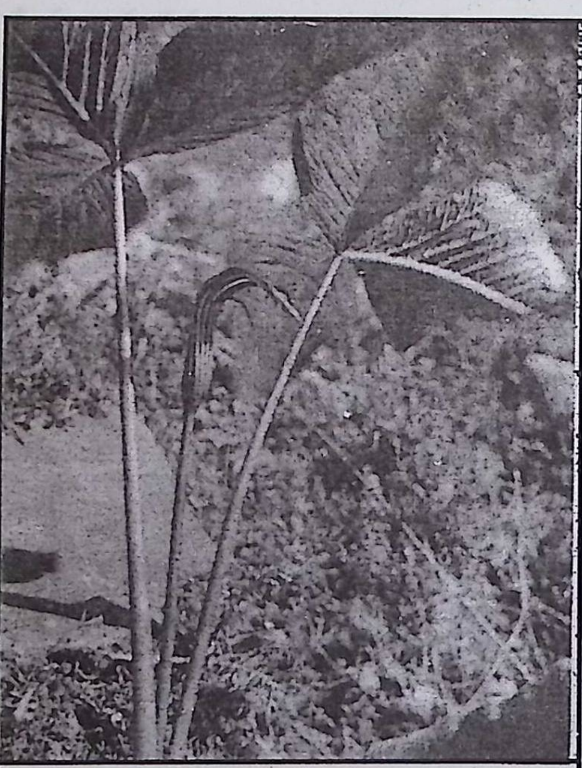

अजगरी ***(Arisaema wallichinaum* Hook.)**

स्वरूप : कांड एकवर्षायु, मूलकंद बहुवर्षायु, पर्ण :- मूलोद्भव, चौड़े अरबीपत्र सदृश तथा कुछ किस्में में पांच पत्रक एक साथ निकलते हैं। पुष्प-सनाल, सर्पाकार, रक्ताभ-पीत वर्ण के, फल-मक्की के भुट्टे सदृश, पकने पर रक्त वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल : अगस्त-सितम्बर। **प्रयोज्य अंग :** मूलकन्द।

प्राप्ति स्थान: हिमालय के लद्दाख, भुटान, सिक्किम, उत्तराखण्ड हिमालय में इसकी कई किस्में पाई जाती है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक भोटिया लोग मूलकन्दों का उपयोग आटे के रूप में करते हैं। ये लोग इन कंदों को काट कर पानी में कई बार धोते हैं। जिससे इनका विषैला प्रभाव कम हो जाता है। इस प्रकार 3-4 दिनों तक कंदों के टुकड़ों को पानी में डाल रखते हैं। पुनः सुखाकर इसका आटा तैयार करते हैं । अकाल या अन्न के अभाव में ये लोग इसकी रोटी बनाकर खाते हैं। मूलकंदों का स्थानिक छंग बनाने के काम में भी प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

अजगरी मण्डलैं कपिलैश्चित्रै, सर्पाभापञ्च पर्णिनी।
पश्चरत्निप्रमाणा च विज्ञेया अजगरी बुधैः ।। *(सुश्रुत)*

तिब्बती चिकित्सा में निम्न वनस्पतियों का भी औषधी में उपयोग होता है।

1. तावा — *Arisaema intermedum*
2. तारवोगुल — *Arisaema flavum*
3. लोचे स्नो-वे-तरगुत — *Arisaema fraterrum*
4. तवा-लोमा — *Typhonium gigantum*
5. सूता-सूतेक-नगपा — *Acorus calamus* Linn. :- यह शास्त्रोक्त वचा है। आयुर्वेद की उपयोग वनस्पति है। जलोय स्थानो पर कहीं-कहीं यह वनस्पति पायी जाती है। स्थानिक आमची इसका भी चिकित्सा में उपयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आयुर्वेदिक गुण-धर्म :

वचोग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वमिवह्निकृत्
विवन्धाध्मान शूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोघनी।।
अपस्मार कफोन्मांदम् भूतजन्त्वनिलाहरेत्।।(*भा. प्र. नि.*)

धान्यकुल (GRAMINEAE)

द्रव्यनाम :- संस्कृत : यव, हिन्दी : जौ, लद्दाखी : नस

वानस्पतिक नाम : ***Hordeum vulgare*** Linn.

स्वरूप : यह तृण जाति का क्षुद्र धान्य है। इसके पौधे गेहूं सदृश होते हैं। हिमालय के शीत एवं ऊँचाई वाले स्थानों लगभग 4,500 मीटर पर इसकी खेती की जाती है।

सम्पूर्ण लद्दाख में चीचा (चीनाक), कड़ंगु (छा) की खेती की जाती है। इनमें यव (जौ) की खेती मुख्य है। लद्दाखी लोग नस (यव) की चार किस्में मानते हैं। जिसे चूनस, ग्योकनस, टुगजुत, नकनस कहते हैं। इस धान्य की अच्छी पैदावार होती है। ये लोग जौ को भून कर सत्तू बनाते हैं। सत्तू का उपयोग नमकीन चाय में तथा छंग (मादक पेय) के साथ करते हैं। छंग के मसाले के घटक दव्यों में सत्तू का प्रयोग करते हैं। सत्तू के साथ बुआं, वुरनक, रूस्ता आदि कतिपय मादक द्रव्यों को मिलाकर सफेद गोली बनाते हैं। जिसे छंग के किवण्ड़ीकरण (फरमन्टेशन) में उपयोगी मानते हैं। सत्तू के सेवन करने पर ब्लडप्रेशर का डर नही रहता है। अन्य दुसरी किस्म को *Hordeum nodosum* L. कहते हैं। यह भी (नस) यव की किस्म है।

एक अन्य किस्म *Triticum vulgare* Linn. की भी अच्छी खेती की जा रही है। यह भी महागोधूम, मधुली एवं दीर्घगोधूंम भेद से तीन प्रकार का होता है। *Triticum* की अन्य किस्में भी यहाँ पाई जाती है।

वक्तव्य : यव का ऋगवेद के कतिपय स्थलों पर उल्लेख मिलता है। अथर्वविद में 'यव' का मणिधारण का विधान है जो अनेक रोगों को दूर करता है। सप्तधातुओं में यव की गणना की गई है। धान्यों में व्रीही और यव श्रेष्ठ कहे जाते हैं। यह विषघ्न, बल्य एवं यक्ष्मानाशक है। यज्ञ में इसके सत्तू का विधान है। प्रजनन से लेकर मरणोपरान्त सभी संस्कारों में यव का विधान है। यव से अनेक आहार, कल्प, यावक, यवागू, मन्थ, सत्तू, यवोदन, पायस आदि बनाने का उल्लेख है। वत्सनाभ का विष का दूर करने के लिये यव घृत मिलाकर पिलाने का विधान है। सत्तू के सेवन से विषैला प्रभाव कम हो जाता है। मूत्रावरोध में यव के सेवन का विधान है। इसी आधार पर वार्लीवाटर या बियर पेय इसी से तैयार किया जाता है।

आयुर्वेदिक गुण-धर्म :

यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनोमृदुः।
व्रणेषु तिलवत्पथ्यो, रुक्षो मेधाऽग्निवर्धनः।
वृष्यो ग्राहीकफघ्नश्चः .... (*भाव प्रकाश निघण्टु*)

जंगली यव सदृश किस्म भी लद्दाख क्षेत्र में भी पाई जाती है। जानवरों के चारे के रूप में इसका उपयोग किया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

1. यवस *Avena fatua* L.
2. जई *Avena satora* L.

इन वनस्पतियों से आटा तैयार किया जाता है। औषध रूप में भी इनका उपयोग किया जाता है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : चीनाक, अणु, लद्दाखी : चीचा

वानस्पतिक नाम : ***Panicum miliacum*** Linn.

स्वरूप : यह तृण जाति का क्षुद्र धान्य है। इसकी खेती लद्दाख एवं हिमालय की निचली घाटियों में की जाती है। बालियाँ मंजरी में, बीज गोल, पीत वर्ण का होता है। काली, सफेद, लाल, पीली, रंगभेद से चीनाक चार प्रकार की होती है। इनमें पीली चीनाक उत्तम है।

गुण धर्म : पुष्टिकारक, भग्नसन्धानकर, रूक्ष कफनाशक, घोड़ों के लिये उपयोगी एवं गर्भस्रावकर है।

द्रव्यनाम : संस्कृत : कड़ंगु, प्रिमड़गु, कंगुनिका, लद्दाखी : छा, गढ़वाली : कोंणी

वानस्पतिक नाम : ***Panicum miliare*** Lam.

स्वरूप : यह तृण जाति की वनस्पति है। अगस्त-सितंबर में इसकी बाली पकने लगती है। शुष्क पहाड़ी प्रदेशों में एवं लद्दाख के करगिल क्षेत्र में खेती की जाती है। गुण-धर्म चीनाक सदृश है।

इसके अतिरिक्त निम्न धान्यों की खेती भी लद्दाख में की जाती है जो निम्न है।

1. श्यामा, झंगोरा, सांवां	*Echinochloa frumentacea* Link. syn. *Panicum frumentaceum* Roxb.
2. सांवाभेद	*Setaria viridis* (L.) Beauv.
3. न्यृत्यकुण्डल	*Eleusine aegyptiaca* Desf.
4. कोद्रव, ग्यमरास	*Paspalum scrobiculatum* Linn.
5. दमस्या	*Phragmites communis* Trin.
6. मा-स्गों, चाक्	*Setaria glauca.*

उपरोक्त सभी धान्यों की खेती इस क्षेत्र में परम्परागत रूप से होती है। लद्दाख में इन धान्यों के साथ-साथ आजकल आलू, गोभी, सलजम, मूली, टमाटर, पलाण्डु (प्याज), मटर, चुकुन्दर, सरसों, लहसुन, मिर्च आदि उपयोगी सब्जियों की पैदावार भी की जा रही है। दालों में मसूर (किरजें) की खेती की जाती है। इस क्षेत्र की खेती काफी उपजाऊ है। सिंचाई के लिये सरकार द्वारा नहरें बनाई जा रही हैं। फलदार वृक्षों में सेब, खुमानी, अखरोट, चीकू, बादाम आदि फलदार वृक्षों का रोपण कार्य जलवायु के अनुसार किया जा रहा है।

उपयोगी तृणों में सौगन्धिक, गोमूत्रिका, जलाशय, मृगप्रिय, लवणतृण, गुण्डतृण, वृतगुण्ड आदि कतिपय उपयोगी तृण जाति की वनस्पतियां भी लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है। इसमें Cyperaceae कुल की *Scirpus,*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Cyprus, Carex वंश की एवं Juncaceae कुल की *Jancus* वंश की किस्में औषध उपयोग की हैं। इस दिशा में सर्वेक्षण कर नामरूप परिचय का निर्धारण शोधकर्ताओं को करना चाहिये।

प्रारंभिक सर्वेक्षण के आधार पर लेखक को जिन द्रव्यों की पहचान में सफलता मिली है उसी आधार पर विद्वान् पाठकों के समालोचनार्थ द्रव्यों के स्थानिक नाम, संस्कृत नाम, वानस्पतिक नाम, स्वरूप, प्राप्ति स्थान, एवं स्थानिक प्रयोग दिया गया है। जिन द्रव्यों के वानस्पतिक नामों की पहचान नहीं की जा सकी है। उनके लद्दाखी नामों की सूची भी यहाँ पर शोधकर्ताओं के अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है। इन वनस्पतियों का प्रयोग आमची चिकित्सा में करते हैं।

1. दम्बुकरा,	17. स्ट्रेज्मा
2. याकिमो	18. चठी
3. जिमथिक	19. आवा
4. पुशेलचे	20. सदनक
5. खन्पा	21. फुरमुक
6. धुमाची	22. सेंरसिंग
7. चठी	23. घुमाची
8. डितासांजीन	24. फगोगो
9. जांगलो	25. स्यातंग्
10. सोमंग	26. चांगसर
11. अटूंग	27. चिचूंग
12. थगदुम	28. नीगा
13. चठीस	29. वुशांग
14. ड्रज्बू	30. स्यांमग
15. गगांच्छु	31. रेस्कुन
16. जातुका	32. सदनक

आदि कतिपय उपयोगी वनस्पतियां इस क्षेत्र में पाई जाती हैं। स्थानिक आमचियों की सहायता से इन वनस्पतियों की पहचान एवं इनके औषधीय गुणों के बारे में आगे शोध कार्य कर इन औषधीय पौधों का समावेश आयुर्वेद निघण्टु शास्त्रो में किया जाना चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खनिज प्रकरण

रसशास्त्र में वर्णित खनिजों का ऐतिहासिक महत्व एवं लद्दाख हिमालय की परम्परागत तिब्बती चिकित्सा में खनिजों का उपयोग

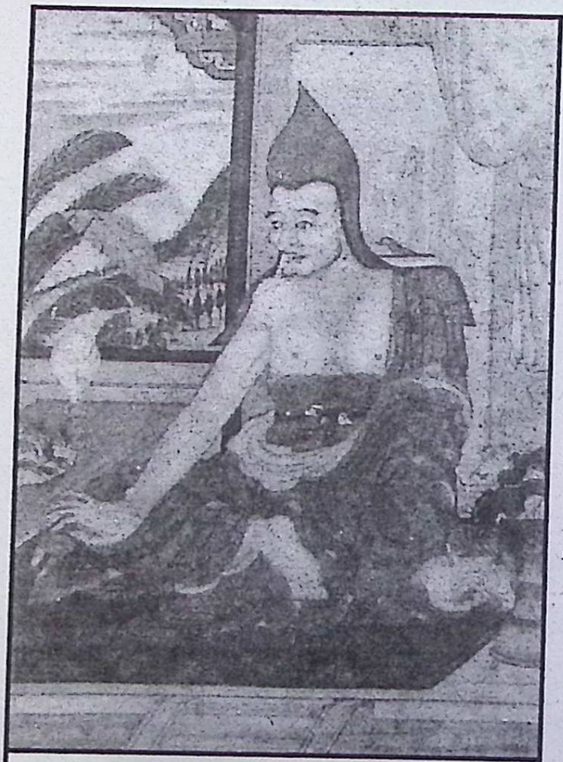

रसशास्त्र के चिकित्सक आचार्य अश्वघोश

पारद और उसके साथ उपयोग में आने वाले महारस, उपरस, साधारणरस, धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, विष तथा उपविषों के प्रयोगों औषधीय का वर्णन करने वाला ग्रंथ रसशास्त्र कहलाता है। अष्टांग आयुर्वेद में रसशास्त्र का समावेश कायचिकित्सा के अन्तर्गत आता है। यहां रसशास्त्र में वर्णित खनिजों रस, महारस, साधारण रस, उपरस, लोहवर्ग, पाषाणवर्ग, रत्न, उपरत्नों का ऐतिहासिक महत्व एवं वर्गीकरण करते हुये लद्दाख में उपलब्ध लोकप्रचलित आमची चिकित्सा में प्रयुक्त खनिजों के संदर्भ में जानकारी दी गई है।

आयुर्वेद में तीन तरह की चिकित्सा विधियाँ वर्णित है। जो कि इस प्रकार से है।

1. दैवी चिकित्सा (रस चिकित्सा)
2. मानवी चिकित्सा (काष्ठोषधि चिकित्सा)
3. आसुरीचिकित्सा (तंत्र, मंत्र चिकित्सा)

खनिजों एवं रत्नों के विषय में वेदों से लेकर पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि संहिता ग्रंथों में विस्तृत वर्णन मिलता है। यही कारण है कि वेदों में पृथ्वी को रत्नगर्भा वसुन्धरा कहा है। यथा :-

ओं. निधिं विभ्रती बहुधा गुहाव सुमणिं हिरण्यं पृथ्वी ददातु में,
वसूनि नो वसुदा, रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना। *(अथर्वेद)*

वेदों में पृथ्वी से प्रार्थना की गई है कि रत्नगर्भा वसुन्धरा खनिजों, पाषाणों एवं रत्नों को धारण करने वाली है। ये खनिज उस काल में भी समुद्र, नदियों, पर्वतों, गहन वनों, खदानों में विद्यमान थे। मानव को लाखों वर्ष पूर्व से ही इनकी उपादेयता का ज्ञान था यही कारण है कि इन खनिजों एवं रत्नों का मानव के साथ घनिष्ठ संबन्ध रहा है। ये रत्न पृथ्वी के गर्भ में स्थित उत्ताप व भारी दबाव से हीरे के रूप में बदल जाते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुरंजान *Colchicum luteum.*

स्कोचे (जम्बू बूटी) *Allium consanguineum.*

चिरायता *Swertia chirayita.*

लुगरू-मुंगपो *Pedicularis longiflora.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अतीस (अतिविषा) *Aconitum heterophyllum*

मीठा विष (वत्सनाभ) *Aconitum atrox*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

टिम्बरू (तेजबल) ***Zanthoxylum alatum.***

वरूण ***Crataeva nurvala***

तेजपत्र ***Cinnamomum tamala.***

अर्जुन ***Terminalia arjuna***

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कलिहारू *Meconopsis aculeta.*

कस्तूरी मृग *Musk Deer.*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हैं। इस परिवर्तन की क्रिया में कई हजार वर्ष लगते हैं। रत्न अनेक रंग वाले होते हैं। ग्रहों के दुष्प्रभावों के निवारणार्थ, रोगमुक्ति, भाग्योदय तथा अलंकरण हेतु इन रत्नो का अनादिकाल से उपयोग किया जा रहा है।

प्राचीन काल से ही रस-सिद्धों का उल्लेख मिलता है। गोरक्ष-संहिता में सिद्धों की संख्या 84 बताई गई है। गुरूशिष्य परम्परा के अनुसार बौद्धसिद्ध, नाथसिद्ध तालिका अलग है। जिसमें नागार्जुन मुख्य हैं। हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ में महासिद्धों की संख्या 31 है। महासिद्धों में आदिनाथ, शावरानन्द, चौरंगी, गोरखनाथ, विलेशय, कोदण्ड, सिद्धिपाद, चिन्यनाथ, काकचंडीश्वर, कापालिक आदि है। इसी तरह रस सिद्धों की नामावली में देव रससिद्धों में महेश, उमा, गुह, वीरभद्र, वृहस्पति, चन्द्र, विनायक आदि नाम हैं। दैत्य रससिद्ध में शुक्राचार्य एवं मुनि रससिद्ध में नारद आदि है। रसरत्न समुच्चय एवं आनन्दकंद के रससिद्धों की संख्या अलग से हैं। आनंद कंद में चौरंगी, चर्पटी, घोड़ाचोली, माद्वाय, गोल, गोविंद सिद्ध, नागार्जुन, कोरण्ड, कुक्कुरपाद, शर्पपाद एवं किंकिकांण आदि हैं।

भारतीय वांग्मय में देव, यक्ष, गंधर्व, विद्याधर आदि जातियाँ देवयोनि के नाम से प्रसिद्ध है। ये जातियां हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों में निवास करती थी। देव रससिद्ध आदिदेव योगेश्वर महेश का स्थान हिमालय पर्वत के उत्तर दिशा में कैलाश पर्वत पर था। वहीं पर उन्होने रस-शास्त्र की चिकित्सा की विद्या अपनी पत्नी उमा तथा दोनों पुत्रों कार्तिकेय तथा विनायक एवं अपने प्रमुखगण वीरभद्र, देवताओं के गुरू बृहस्पति, चन्द्र, शुक्राचार्य तथा नारद को दी। इस प्रकार का उल्लेख पौराणिक ग्रंथों में मिलता है।

पौराणिक गाथानुसार भगवान शंकर की देह का सारभूतरस होने से भी पारद को रस कहा गया है। जिन-जिन योगों-प्रयोगों के निर्माण में पारद का मिश्रण होता है उनको भी रस कहते हैं। पारद एक मात्र धातु है जो कि मानव को सर्वप्रथम ज्ञात हुई थी। पश्चिमी देशों में इसका ज्ञान ईसा के 1500 वर्ष पूर्व हुआ हो किन्तु भारत के रससिद्धों को इसका ज्ञान हजारों वर्ष पूर्व से था। वेदों संहिताओं में सुवर्ण, रजत, रत्न, शीशा आदि धातुओं के साथ पारद का भी वर्णन मिलता है। हिमालय के अन्तराल एवं भूगर्भ से ही पारद रस, हिंगुल, गिरिसिन्दूर के रूप में मनुष्यों को प्राप्त होता है। पारद की गणना मूल तत्वों में की जाती है। प्राचीन रससिद्धों के मतानुसार पारद में सुवर्ण, जस्ता, चांदी, शीशा, रांगा आदि के सूक्ष्मकण पाये जाते हैं। पारे में सभी धातुओं का तेज सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में व्याप्त रहता है। विशिष्ठ गुरूत्व में यह पानी की अपेक्षा 13 गुना अधिक भारी होता है। पारद का उपयोग औषधियों, मलहम तथा रासायनिक पदार्थ बनाने, सोने चांदी के चूर्ण में मिलाकर कृमिजन्य दांतों के गढ़े भरने, विविध थर्मामीटर, वैरोमीटर, कृत्रिम रंग बनाने, विद्युत उत्पादन करने, आटोमैटिक स्विच बनाने, रासायनिक परीक्षणोपयोगी मिश्रण बनाने आदि कतिपय सामग्रियों में होता है। पारद के रसायन हेतु अठारह संस्कार किये जाते हैं।

चिकित्सा-शास्त्र में रस-चिकित्सा का अपना विशेष स्थान है। क्योंकि रस, उपरसों से निर्मित औषधि अल्पमात्रा में देने पर भी लाभ करती है। ये रसौषधियां शीघ्र आरोग्य प्रदान करती हैं। रसौषधियां असाध्य रोगों को नष्ट करने में समर्थ होती हैं। यथा :

अल्पमात्रोपयोगित्वाद्ऽरूचेरप्रसङ्गतः ।
क्षिप्रमारोग्य दायित्वा दौषधेभ्योऽधिकोरसः ।। *(रस-रत्न-समुच्चय)*

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसौषधियों द्वारा चिकित्सा करने के लाभ

1. अल्पमात्रा : रस (पारद) और उपरस आदि से निर्मित रसौषधियों की अल्पमात्रा होती है जिसे रोगी सरलता से सेवन कर लेता है।

2. अरूचि का अभाव : रसौषधियां अरूचिकर नहीं होती है जिसे रोगी प्रसन्नता से खा लेता है।

3. शीघ्र आरोग्यता : रसौषधियां रोगों को नष्ट करके शीघ्र आरोग्य प्रदान करती है क्योंकि पारद, वत्सनाभ आदि व्यवायी गुण वाली होती है।

4. चिरस्थायित्व : मकरध्वज और रससिन्दूर आदि रसौषधियां चिरकाल तक स्थायी होती है एवं पुरानी होने पर अधिक गुणकारी होती है।

5. असाध्यरोगनाशन : रसौषधियां असाध्यरोगों को नष्ट करने में समर्थ होती है।

6. गुणवीर्यता : रसौषधियां उग्रवीर्य होने से रोगों पर आशुगुणकारी प्रभाव डालती है। ये औषधियाँ शीघ्र रोग विनाशकारी एवं सद्यः चमत्कार दिखाती है। यही कारण है कि भगवान शंकर ने दैवीय चिकित्सा (रसचिकित्सा) को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

रससिद्धों ने प्रायः सभी रोगों की चिकित्सा खनिज द्रव्यों से करने का प्रयत्न किया है। रस-ग्रंथों में उद्भिज एवं प्राणिज द्रव्यों का भी उपयोग भस्मों के मारण, शोधन तथा पुटपाक आदि रसयोगों के बनाने में सहायक रूप में होता है। यजुर्वेद में अश्म (पत्थर), मृतिका (मिट्टी), सिकता (बालू), हिरण्य (स्वर्ण), लोह, त्रपु (बंग) तथा सीसा (नाग) धातु का निर्देश मिलता है। तैतरीय संहिता (2/715/1) में भी इनका उल्लेख है। अथर्ववेद में स्वर्ण, रजत, ताम्र, त्रपु (बंग), सीसा (नाग) धातु का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में भी स्वर्ण, रजत, ताम्र, सीसा और लौह का उल्लेख मिलता है। आर्षकाल में पार्थिव द्रव्यों का उपयोग प्रायः अञ्जन सदृश्य अतिसूक्ष्म चूर्ण (पिष्ठी) बनाकर किया जाता था। रसशास्त्र में अग्निपुट के द्वारा उनके मारण (भस्म बनाने) का विधान है। मुक्ता, प्रवाल आदि रत्न एवं उपरत्नों की पिष्ठी बनाकर उपयोग करने के संदर्भ में चरक, सुश्रुत में उल्लेख मिलता है। लौह, सुवर्ण, रौप्य आदि धातुओं के कण्टकवेधी पन्ने बनाकर उनको अग्नि में रक्तवर्ण के होने पर शालसारादिगण, त्रिफला आदि द्रव्यों के क्वाथ, गोमूत्र आदि में बुझाकर उनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर प्रयोग करने का विधान सुश्रुत और चरक में पाया जाता है। इस प्रकार के बनाये हुये धातुओं के चूर्ण को सुश्रुत ने अयस्कृति नाम दिया है। पार्थिव द्रव्यों की अग्निपुट द्वारा भस्म बनाने की प्रक्रिया रसशास्त्र के विकास के बाद प्रचलित हुई ऐसा मालुम होता है क्योंकि संहिता काल में केवल सुवर्ण, रौप्य आदि धातुओं को मूषा में अग्नि पर गलाकर या तपाकर, गोमूत्र, दधि, घृत आदि द्रव्यों में बुझा कर उनका सूक्ष्म चूर्ण करने का ही निर्देश मिलता है।

रसशास्त्र में शोधन-मारण विधि का प्रयोजन

शोधन एवं मारण विधि का प्रधान उद्देश्य उन द्रव्यों में रहे हुये शरीर को हानि पहुंचाने वाले दोषों को दूर करने की विधि से अभिप्राय है। अशोधित द्रव्यों के औषध रूप में उपयोग करने से कतिपय (दोष) विकार द्रव्यों में रहने से हानिकर होते हैं। इसलिये भस्म बनाने से पूर्व खनिज द्रव्यों का शोधन अनिवार्य है। खनिज द्रव्यों की आसानी से भस्म बनाई जा सके तथा शोधन के बाद बचे दोष (विकार) दूर किये जा सकें

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसके लिये मारण किया जाता है। भस्म एवं पिष्ठी बनाने का मुख्य प्रयोजन उनका अतिसूक्ष्म अणुओं में परिवर्तन करना जिससे उनका शरीर में पाचन हो सके, वे रक्तादि धातुओं में मिल सकें, वे शरीर में किसी प्रकार का विकार न करे और उनके गुणों में वृद्धि हो। इसके लिये शोधन, मारण एवं पुटपाक विधियों द्वारा भस्में तैयार करने का निर्देश है।

खनिजों का ऐतिहासिक महत्व एवं वर्गीकरण

रस चिकित्सा में उपयोगी खनिज द्रव्यों का ज्ञान भारतीयों को प्राचीन काल से ही था। सिन्धु घाटी की सभ्यता (ईसा के 400 वर्ष पूर्व) तथा तक्षशीला से प्राप्त प्राचीन भग्नावशेषों में उपलब्ध सामग्री से इसकी पुष्टि होती है । मानव जीवन के विकास के ऐतिहासिक युगो में उपयोगी खनिजों को पुरातत्ववेत्ताओ ने निम्न भागों में विभक्त किया है।

1. प्राचीन पाषाण युग : इस युग में पाषाणों (पत्थरों) का उपयोग औजार बनाने के लिये होता था। ये औजार भद्दे और बेडोल होते थे।

2. नवीन पाषाण युग : इस युग में भी पाषाणों का उपयोग औजार बनाने के लिये होता था किन्तु वे औजार अच्छे किस्म के सुधरे हुये बने थे जो कि पत्थरों को तराश कर और घिस कर चिकना करके बनाये जाते थे। इस युग में मिट्टी के बर्तन भी चाक से बनाये जाते थे।

3. ताम्रयुग : पाषाणयुग के पश्चात भारत में ताम्रयुग का आविर्भाव हुआ। इस युग में मानव को ताम्रधातु की पहिचान हुई। इस युग में हथियार और बारीक बनने लगे।

4. कांस्य युग : इस युग में कांसे के बर्तन, प्याले, कटोरे आदि वस्तुयें बनने लगी।

5. लौहयुग : ईसा के 325 वर्ष पूर्व यूनान के विरूद्ध ईरानी सम्राट के अधीन जो भारतीय सिपाही युद्ध में लड़े थे उन्होंने लोहधातु के बने नोकदार हथियारों का प्रयोग किया। भारतवासी फौलादी लोहा (तीक्ष्णलोह) के हथियारों को बनाने में निपुण थे। दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में लोहा का प्रयोग पहले हुआ हो ऐसे प्रमाण मिलते हैं। रसशास्त्रकारों ने धातुवर्ग के विभेदक लक्षणों के आधार पर उन्हे कई वर्गो में विभक्त किया है। जो कि इस प्रकार से है।

लवणवर्ग : जो पदार्थ जल में डालने से विलीन हो जाते हैं एवं अग्नि पर डालने पर चटक कर उछल लेते हैं या फट जाते हैं धुवां देते हैं और जलते हैं वे लवण कहलाते हैं। इन लवणों की संख्या 25 मानी गई है।

पाषाण वर्ग : जो पदार्थ अग्नि पर डालने पर धुआं देते हैं और पानी में विलीन नहीं होते वह पाषाण कहलाते हैं। इनक संख्या 64 है।

उपरस : जो पदार्थ जल में विलीन नहीं होते और अग्नि पर डालने पर जलते भी नहीं है न धुआँ देते है तथा चटक कर उपर को उछलते नहीं वे उपरस कहलाते है। इनकी संख्या 112 है।

लोह : जो पदार्थ अग्नि पर रखने से पिघल जाते हैं, स्थिर रहते हैं और जल में विलीन नहीं होते वह लोह कहलाते हैं। इनकी संख्या 9 है।

रस : अग्नि पर रखने पर उड़ने वाला, अणुरूप में विभक्त होने वाला, सात कंचुक दोषों से आवृत और

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पौरूष सत्व से युक्त पदार्थ रस (पारद) कहलाता है। यह संख्या में एक है।

गन्धक : जो अग्नि पर डाले जाने पर धुंआ देता है, जलता है और बाष्प बनकर उड़ता है तथा जल में विलीन नहीं होता वह पदार्थ गन्धक कहलाता है। वह संख्या में एक है जो कि पहाड़ों में उपलब्ध है।

धातुवर्ग में खनिजों की कुल संख्या 212 है जो कि इस प्रकार है।

1. लवण वर्ग	25
2. पाषाणवर्ग	64
3. उपरस	112
4. लौह	9
5. रस (पारद)	1
6. गन्धक	1
कुल योग =	212

रसशास्त्र में वर्णित खनिजों का उल्लेख निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है।

1. लौहवर्ग :– सुवर्ण, रजत, ताम्र, तीक्ष्ण अयस (लौह), त्रपु , वंग (सीस), वैक्रान्त।

2. महारस :– माक्षिक, विमल, शिलाजतु, सस्यक, हिंगुल, स्रोतोंञ्जन, खर्पर, चपल, अभ्रक।

3. साधारणरस : कम्पील्लक, संखिया, नौसादर, कपर्द, अम्बर, गिरिसिन्दूर आदि।

4. उपरस : गन्धक, हरताल, मैनसिल, कासीस, कंकूष्ठ।

5. रत्न : हीरा, प्रवाल, मोती, पन्ना, लहसूनिया, नीलम, पुखराज।

6. उपरत्न : वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, पैरोजा, स्फटिक, लाजवर्द आदि।

1. लौहवर्ग : जिन खनिजों में लौह धातु विद्यमान रहता है उसे धातु (Metal) कहते हैं। ये धातु स्वर्णधातु, रौप्यधातु, तीक्ष्णलौहधातु, ताम्रधातु, त्रपुधातु सीसधातु एवं वैक्रान्त धातु कहलाते हैं। रसार्णवकार ने सुवर्ण और रौप्य को शुद्ध लौह, ताम्र और अयस् (लौह)को साधारण लौह तथा नाग और बंग को पूति लौह नाम देकर 6 प्रकार के अभिष्ठ लौहों का उल्लेख किया है।

2. महारसवर्ग : रसार्णव में माक्षिक, स्वर्णमाक्षिक, विमल, शैल (शिलाजीत), चपल, रसक (खर्पर) सस्यक (तुत्थ), हिंगुल एवं स्रोतोञ्जन इन आठ द्रव्यों को महारस कहा गया है। रसेन्द्र चूणामणि में अभ्रक, राजवर्त, वैक्रांन्तं, सस्यक (तुत्थ), विमल, शिलाजतु, खर्पर एवं माक्षिक को महारस कहा है। सोमदेव ने मयूरतुत्थ एवं तुत्थ का खर्पर अर्थ किया है।

3. उपरसवर्ग : रसार्णव में गन्धक, हरताल, मैनशिल, फिटकरी, कासीस, राजावर्त, गेरू, कंकूष्ठ इन आठ द्रव्यों को तथा रसेन्द्र चूड़ामणि में गन्धक, हरताल, फिटकरी, मैनशिल, सोवीराज्जन, कंकूष्ठ, कासीस और गेरू को उपरस नाम दिया है।

4. साधारणरस : कम्पील्लक (कमीला), चपल, संखिया, नौसादर, कपर्द, अम्बर, गिरिसिन्दूर, मूर्दासंग इन आठों को रसेन्द्र चूड़ामणि में साधारण रस कहा है।

5. रत्नवर्ग : हीरा, प्रवाल, मोती, पन्ना, लहसुनियां, गोमेद, माणीक्य, नीलम और पुखराज ये नवरत्न कहलाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

6. उपरत्न : वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, पैरोजा, लाजवर्त, स्फटिक आदि की गणना उपरत्नों में की गई है।

कतिपय रसग्रंथों के संदर्भ स्थलों से ऐसा प्रतीत होता है कि रसशास्त्र में वर्णित खनिजों के वर्गीकरण में मतेक्य नहीं है। इन पर शोधकर द्रव्य निर्धारण करना चाहिये। रसशास्त्र पर कार्यशाला का आयोजन कर द्रव्य निर्धारण करना चाहिये।

रस शास्त्र में वर्णित महारसों के पुन: स्वरूप भेद से कई प्रकार पाये जाते हैं। यथा :

अभ्रक के भेद : रस ग्रन्थों अभ्रक के चार प्रकार बताये हैं यथा : पिनाक, नाग, वज्र, मण्डूक। कुछ ग्रन्थकारों ने वर्ण भेद से श्वेत, पीत, रक्त एवं कृष्ण से भेद किया है। हिमालय पर्वत की खान से प्राप्त होने वाला अभ्रक उत्तम माना जाता है और पूर्वीय देशों से प्राप्त होने वाला मध्यम तथा दक्षिणी देशों से प्राप्त होने वाला अधम माना जाता है। स्निग्ध, चिकना बड़े चौड़ेदल वाला, अधिक वजनदार तथा जिसके पत्र सुगमता से अलग किये जा सकें वह अभ्रक श्रेष्ठ माना जाता है।

वैक्रान्त के भेद : वर्ण भेद से वैक्रान्त आठ प्रकार का होता है। श्वेत, नील, रक्त, पीत, पारावतप्रभ (कबूतर के से वर्ण का), ताक्ष्यार्भ (गरूड़वर्ण), कर्वुरवर्ण (काला-सांवला मिश्रित), कृष्ण (काला)।

माक्षिक के भेद : स्वर्णमाक्षिक एवं रजतमाक्षिक।

विमल के भेद : हेमविमल (स्वर्णविमल), लारविमल (रजतकान्तियुक्त), कांस्यविमल। विमल स्वर्णमाक्षिक का ही भेद माना जाता है। यह लौह और गन्धक का योगिक है।

शिलाजतु के भेद : स्वर्ण, ताम्र, रजत एवं लोहशिलाजतु (गोमूत्रगन्धी) चार प्रकार उल्लेख मिलता है। व्यवहार में गोमूंत्रगन्धि शिलाजीत श्रेष्ठ माना जाता है।

तुत्थ के भेद : तूतिया नैसर्गिक एवं कृत्रिम रूप से पाया जाता है। मयूरग्रीव (नीलाथोथा) एवं खर्पर (खपरिया) भेद से दो प्रकार का है।

चपल : के भेद : गोर (श्वेत) अरूण (रक्त) एवं कृष्ण वर्ण भेद से तीन प्रकार का है।

रसक(खर्पर) के भेद : रसक यशद का खनिज धातु है। प्राचीन रस ग्रंथों में यशद (जस्ता) का रसकसत्व के नाम से वर्णन मिलता है। प्राचीन समय में रसक को तुत्थ का भेद माना गया है। जो रसक पीले रंग का और मिट्टी जैसा होता है उसे मृतिका रसक कहते हैं। रसक दर्दुर और कारवेल्लक भेद से दो प्रकार का होता है। दर्दुर रसक सत्व पातन के लिये अच्छा है। जिसके दल अलग न हो सकें उसको कारवेल्लक कहते हैं यह औषध बनाने के लिये अच्छा है।

इस प्रकार साधारणरस, रत्न, उपरत्नों आदि खनिजों का उल्लेख रसग्रंथों में निदिष्ट है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख हिमालय में उपलब्ध खनिजों, लवणों, पाषाण एवं रत्नों का उल्लेख

हिमालय खनिज सम्पदा के लिये प्रसिद्ध है। हिमालय की खनिज-रचना पर संरचनात्मक तत्वों का बहुत प्रभाव पड़ा है और यह प्रक्रिया आज भी जारी है। यह सोचा जाता है कि तांबा एन्टिमनी और यूरेनियम जैसे खनिज प्राय: ज्वालामुखी चट्टानों से समबद्ध रहते हैं। हिमालय की ग्रेनाइट चट्टानों में तांबा, टिन आदि खनिजों की विद्यमानता रहती है। आधुनिक प्लेट टेक्टोनिक परिकल्पना के अनुसार हिमालय की उत्पत्ति भारतीय एवं एशियन प्लेट के टकराने से हुई है। लद्दाख लेह के समीप यह टकराव इन्डस, स्युचर जैसी गहरी दरार के अनुरूप हुआ। इस क्षेत्र में मैग्मीय प्रक्रिया भी सक्रिय थी। पेटरशेक 1973 के अनुसार जब प्लेटों का टकराव होता है। तो इसके अनन्तर वैकल्पिक मैग्मा चट्टानों के साथ कई खनिजों को भी प्रभावित करता है। जिसमें शीशा, जस्ता, क्रोमियम, चांदी आदि खनिज है। हिमालय न केवल वनस्पतियों एवं खनिजों के लिये ही प्रसिद्ध है अपितु हिमालय जलसम्पदा एवं भू-ऊर्जा सम्पदा के लिये भी विख्यात है। हिमालय जलसाधनों की दृष्टि से चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। सिंधुनदी प्रदाय, गंगानदी प्रदाय, ब्रह्मपुत्र नदी प्रदाय, टिस्ता महानदी प्रदाय। हिमालय में इन महानदियों एवं इनकी सहायक नदियों का जाल सा बिछा हुआ है। इस अपार जल सम्पदा से विद्युत एवं सिंचाई के कार्यक्रम विकसित किये जा सकते हैं।

लद्दाख क्षेत्र सिन्धुनदी प्रदाय है। सिन्धुनदी मानसरोवर के उत्तर से निकलकर काश्मीर से होकर उत्तरपश्चिम में बहती है। इसका एक भाग कारगिल के समीप से पाकिस्तान को चलाया गया है तथा अन्य उपनदियां झेलम, चेनाब, रावी, व्यास और सतलुज काश्मीर होते हिमाचल एवं पंजाब, हरियाणा में प्रवेश करती हैं।

पृथ्वी के गर्भ में विभिन्न खनिज हैं। कुछ खनिज रेडियोधर्मी भी हैं। रेडियोधर्मी खनिजों के क्षय से एवं भू-वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा यह उष्मा पृथ्वी की सतह की ओर उन्मुख होती है और यह प्राकृतिक उष्मा चट्टानों के द्वारा भौम जल में भी प्रविष्ट हो जाती है। मुख्यत: ज्वालामुखी के फटने से इस उर्जा का निकास सतह पर होता है। कभी-कभी जहां भौम जल का दबाव तापक्रम की अपेक्षा कम होता है तो गर्म पानी के झरने फूट जाते हैं। इसके साथ भाप भी निकलती है। उर्जा हमें कोयला, पैट्रोलियम प्राकृतिक गैस, आणविक खनिज तथा पानी से मिलती है। सूर्य की किरणों से एवं गर्मपानी के झरनों से उर्जा प्राप्त करने के सफल प्रयत्न भी किये जा रहे हैं। हिमालय क्षेत्र में गढ़वाल में यमनोत्री, बद्रीनाथ, गौरीकुंड, लद्दाख की पूगाघाटी, कुल्लू का मनीकर्ण, कांगड़ा का ज्वालामुखी आदि स्थान महत्वपूर्ण भू-उर्जा के क्षेत्र हैं। भारत सरकार की हौट स्प्रिंग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कमेटी की सिफारिशों के अनुसार लदद्दाख की पूगाघाटी में जियोथरमल उर्जा का विकास कार्य प्रारंभ किया गया है, जिसकी सहायता से इस घाटी के खनिजों एवं लवणों के दोहन में भी काफी सहायता मिलती है। अपने सर्वेक्षण काल में लेखक को जिन खनिजो, लवणों, पाषाणों एवं रत्नों की पहचान एवं औषधीय उपयोगो के बारे में जानकारी मिली है। उनका संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

द्रव्यनाम : संस्कृत : शिलाजतु, अश्मजतु, शैलनिर्यास,

हिन्दी : शिलाजीत, लद्दाखी : व्रागजून

अंग्रेजी : **Black bitumen (Asphaltum)**

उच्च पर्वतश्रृंगों पर प्राप्त सुवर्ण, ताम्र, लौह आदि धातुओं से मिश्रित शिलारस सूर्य के प्रखर ताप से जब पिघलता है तो उसे शिलाजीत कहते हैं। यह लाख या गोंद जैसा कोमलसार पाषाण भेद कर निकलता है। भूगर्भ में जिन स्थानों पर कोयला व पेट्रोलियम आदि खनिज एवं औद्भिज वनस्पतियां होती हैं वहीं के आस-पास की बड़ी-बड़ी पाषाणशिलाओं से गर्मियों के दिनों में कृष्णाभ एवं रक्ताभ वर्ण का निर्यास दिखाई देता है जिसे शिलाजीत कहते हैं।

शिलाजतु यह लौह धातु का उपधातु है। इसमें खनिज 85 भाग, जल एक भाग, तथा औद्भिज द्रव्य 14 भाग होते हैं। इसमें यूरिया, हाइड्रोकार्बन, धात्वांश, सिलिकालाइम, पोटास, नाइट्रोजन आदि खनिज एवं रासायनिक तत्व पाये जाते हैं।

प्राप्ति स्थान : सर्वेक्षण दल को सर्वप्रथम करगिल तहसील के हरिदास नामक स्थान के समीप विशाल दरारों एवं गुफा सदृश पहाड़ियों पर शिलाजीत की प्राप्ति के विषय में जानकारी मिली। यहां काला चमकदार तरल पदार्थ अश्म खण्डों पर जम जाता है तथा धूप आने पर रिसता रहता है। इन सुषिरों में पहाड़ी चूहा भी शिलाजीत खाता है। इन चूहों की मींगी शिलाजीत से लिप्त रहती है। बुद्धखरबु लामायुरू एवं खालसी के समीप स्कियांग नाले में शिलाजीत पाई जाती है। स्थानिक लोग खालसी एवं लेह में शिलाजीत विक्रय करते हैं। स्थानिक आमची अपनी चिकित्सा में शिलाजीत का प्रयोग करते हैं। लेखक ने आमचियों के सहयोग से जो नमूने प्राप्त किये हैं ये स्वर्णाभ रंग के सुगन्धित चमकदार एवं स्वाद में मधुर तिक्त थे। आमची इसे पानी में धोलकर छान लेते है फिर आग पर पकाते है। जिसमें शुद्ध शिलाजीत तैयार होती है जिसे अग्नितापी शिलाजीत कहते हैं। स्थानिक आमची शिलाजीत के 5 भेद मानते हैं।

भेद : सेरजून (सोने वाला शिलाजीत), मूलजून (चांदीवाला), जागेजून (तांबे वाला), चांगजून (लोहेवाला), जाँगीजून (शीशे वाला)।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची शिलाजीत का प्रयोग मूत्रजन्य विकार, वृक्करोग एवं उरोगत विकारों में करते है।

शिलाजीत का आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा में काफी रोगों की चिकित्सा में बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। यह बल्य एवं काम शक्ति को बढ़ाने वाला होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आयुर्वेदीय गुण धर्म :

मूत्ताघातं मूत्रकृच्छ्रं ना शायत्यविलम्बितम्।
शिलाजतु मतं तिक्तं विपाके कटुकं तथा
मूत्रलं च विशेषेण योगवाहि रसायनम्।। *(रसतरंगणी)*

आयुर्वेद मतानुसार शिलाजीत कटु, तिक्त अनुरस में कषाय, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, रेचक, लेखन, रसायन, योगवाही, मेधा-स्मृतिवर्द्धक, मूत्ररोग, मधुमेह, मानसिक रोग, जीर्णज्वर, मूत्राघात, श्वास, क्षय आदि रोगों में उपयोगी है। शिलाजतु का रसायन के रूप में अधिक प्रयोग किया जाता है। महर्षि चरक ने कुटीप्रावेशिक रसायन विधि से शिलाजीत का रसायन हेतु सेवन करने का विधान किया है।

शास्त्रीय योग :

शिवागुटिका	:	यह क्षय एवं पाण्डु नाशक है।
शिलाजत्वादिलौह	:	यह क्षय, क्षीण एवं उरक्षत में उपयोगी है।
शिलाजित्वादिवटी	:	यह मूत्रविकार एवं प्रमेहनाशक है।
चन्द्रप्रभावटी	:	यह मूत्रविकार, प्रमेह में उपयोगी है।

भारतीय चिकित्सा विज्ञान में शिलाजीत का विशेष स्थान है। अन्य परम्परागत चिकित्सा में भी शिलाजीत का उपयोग किया जाता है। परन्तु पाश्चात्य विज्ञान आज भी शिलाजीत के गुणधर्मों से अनभिज्ञ है। यह भी एक विडम्बना है।

द्रव्यनाम : संस्कृत : गन्धक, लद्दाखी : मूंजी, मूंजीसरपो

अंग्रेजी : **Sulphur**

प्राप्तिस्थान : भारत में लद्दाख की पूगाघाटी ही एक ऐसा स्थान है, जहां पर स्फटिक, शिस्टवाली चट्टानों के मूल में गन्धक विद्यमान है। यह गन्धक मिश्रित रूप से इस घाटी में मीलों दूर के क्षेत्र में उपलब्ध है। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रदत्त रिर्पोट के अनुसार पूगाघाटी में काफी मात्रा में गंधक एवं अन्य खनिजों एवं लवणों के मिलने की सम्भावना है। इन चट्टानों में 30 से 40 प्रतिशत गन्धक मिलने की संभावना है। यहां पर भूतापीय उर्जा के स्रोत भी प्रचुर मात्रा में है।

गंधक एक सामरिक महत्व का खनिज है। अम्ल, उर्वरक, पैट्रोल, कागज, रंग का सामान, औषध लोहा, इस्पात का निर्माण करने वाले कारखानों में काम आने वाली कच्ची सामग्रियों में यह एक मुख्य द्रव्य है।

भारत में अम्ल (तिजाब) औषध योगों के निर्माण में 70 प्रतिशत गंधक का प्रयोग किया जाता है। इस समय देश की गंधक सम्बन्धी समस्त आवश्यकता अमेरिका और अन्य विदेशी मुद्रा में विनिमय करने वाले देशों से आयात कर पूरी की जाती है। सन् 1973-74 वर्ष के आंकड़ों के अनुसार 18 करोड़ से अधिक मूल्य का गन्धक विदेशों से आयतित किया गया था। क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला जम्मू ने पूगाघाटी में भूतापीय ऊर्जा का प्रयोग कर वोरेक्स के मिश्रण से गंधक निकालने के लिये एक जलतापीय विधि विकसित की है। देश में गन्धक निकालने का यह इस प्रकार का पहला कारखाना है। यदि संयन्त्र ने संतोषजनक ढंग से काम किया,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तो निकट भविष्य में विदेशों से गन्धक मंगाने की आवश्यकता नहीं होगी एवं विदेशी मुद्रा की बचत हो सकेगी।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची मूंजी का प्रयोग सन्धिशूल, त्वक्‌रोग एवं रक्तविकार में बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप में प्रयोग करते हैं। भूत बाधा में चूर्ण का भस्म देते हैं तथा काले गन्धक का धूपन एवं नस्य करवाते हैं।

आयुर्वेदीय ग्रंथों में इसे देवी पार्वती के रज से उत्पन्न हुआ बताया है। पार्वती से अभिप्राय पार्वतीय ज्वालामुखी से अभिप्राय है। यह पार्थिव खनिज मिश्रित यौगिक है। गन्धक श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण रंग-भेद से चार प्रकार का होता है। रक्तगंधक को शुक्रतुण्ड, पीतगंधक को शुक्रपिच्छ या आंवलासार कहते हैं। काले रंग का गन्धक बहुत कम मिलता है। यह ज्वलनशील व उग्र गंध वाला खनिज है। पारद के बाद रस चिकित्सा में गंधक का अधिक उपयोग होता है।

गंधक एवं पारद का प्रकृति-पुरूष संयोग सम कोई ऐसा रासायनिक योग है कि गंधक पारद को शीघ्र चूर्ण रूप बना देने में संर्वागीण पदार्थ है। (गंधक के एक अणु में पारद के पांच अणुओं को मिलाकर घोलने पर काला चूर्ण कजली स्वरूप प्राप्त होता है)। यथा-

"गंधक पारदं दिव्य ब्रह्ममायास्वरूपकम्"।

यह पानी या मद्य में नहीं घुलता, कार्बन डाई सल्फाइड में घुल जाता है। इसके चूर्ण में सोडा वाईकार्व डालकर गर्म करने से द्रुत द्रव्य को चांदी या सिक्के पर डालने से वह काला पड़ जाता है।

आयुर्वेदीय गुण धर्म :

गन्धशुद्धों गरःविषहरक्षुद्रकुष्ठेभ सिंह,
कासं श्वासं हरति नितरां दद्रुदावानलश्च।। *(रसतरंगणी)*

यह अग्निमाद्य, त्वचारोग, अर्श, आमवात, गृध्रसी, गुदारोग, भगन्दर, ग्रहणी रोग, शूल, पाण्डुरोग, कुष्ठ रोग, रक्तविकार आदि रोगों में लाभ करता है तथा कृमिविनाशक है।

शास्त्रीय योग : गंधक रसायन, गन्धकवटी, गंधक-मलहम, गंधकतैल,दद्रुहरमलहम, महागंधक योग।

शुद्ध गंधक के गुण : रस-कटु, विपाकमधुर, उष्णवीर्य, रेचक, स्निग्ध, पाचन, दीपन, वृष्य, योगवाही, कफ-वात, कृमि एवं त्वचा के रोगों को नाश करने वाला है।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : पिण्ड़ हरिताल, ताल, शैलभूषण, रोमहरी,
हिन्दी : हरताल, लद्दाखी : पला, पवला
अंग्रेजी : Yellow Arsenic.

प्राप्ति स्थान : हरताल लद्दाख क्षेत्र के जन्सकार, लिनसिड आदि स्थानों में पाई जाती है। इसका रंग पीला होता है। शास्त्रों में इसकी निम्न किस्में वर्णित हैं।

जातियां : तपकियाहरताल, पिण्डहरताल, गोदन्तीहरताल, वरकी हरताल।

रासायनिक संगठन : पिण्ड़हरताल में दो भाग सोमल (Arsenic), तीन भाग गंधक (Sulphur) होता है। तपकिया हरताल में गंधक तीन भाग सोमल तीन भाग होता है यहाँ गोदन्ती हरताल (Calcium

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Sulphate) भी पाया जाता है।

घुलनशील : यह तेजाब, यवक्षार तथा नौसादर के घोल में घुल जाता है। जलाने पर गंधक व लशुन की सी गंध आती है। आग पर रखने पर उड़ जाता है। हरताल पारद की भस्म बनाने तथा पारद का पक्षच्छेद करने में उपयोगी है। वंग भस्म बनाने में भी यह उत्तम मानी गई है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची हरताल का उपयोग त्वक रोग एवं रक्त-विकार में करते हैं। सोमल (Arsenic) नकली भी बनाया जाता है कि विषैला होता है। लामा लोग पिण्ड हरताल का प्रयोग बौद्ध मठों को सजाने हेतु रंग के रूप में करते हैं। आदिवासी लामालोग चेहरे के विभिन्न अंगो के श्रृंगार हेतु (रंग के रूप) प्रयोग करते है। इसी कारण इसका नाम शैल भूषण एवं नट भूषण पड़ा है।

यह विषम ज्वर, वातरक्त, कुष्ठ एवं त्वचा में उपयोगी है। यह फिरंग रोग नाशक है। स्त्रियों के रजोदोष को नष्ट करता है। चूने के पानी में मिलाकर लेप करने से केशपातन करता है।

आयुर्वेदिक गुण धर्म:

वातरक्तं विसर्पञ्च विपादीञ्चविचर्चिकाम्।
विवधानिच कुष्ठानि ह्यर्शासि विषमज्वरम्।।
रोगं फिरंग च हन्यात्, अपस्मारं भगन्दरम्। *(रस तरंगिणी)*

शास्त्रीय योग : हरताल भस्म, रसमाणिक्य, तालसिन्दुर, तालचन्द्रोदय, तालकेश्वर रस, विद्याधर रस।

द्रव्यनाम :- संस्कृत : अंजन, सौवीराँञ्जन, स्रोतोंञ्जन,

हिन्दी : काला सुरमा, लद्दाखी : टींछा

अंग्रेजी : **Antimoni sulphate**

प्राप्तिस्थान : काला सुरमा लद्दाख क्षेत्र के स्कुमा एवं मरका गांव की पहाड़ियों की खदानों में पाया जाता है। यह देखने में काला, चमकीला एवं भारी होता है। सुश्रुत ने सिंधु घाटी के किनारे मिलने वाला सौवीरांजन श्रेष्ठ कहा है। स्थानिक आमची इसका चिकित्सा में प्रयोग करते है।

अंजनों का उपयोग : इन अंजनों का प्रयोग प्रतिदिन नेत्रों में लगाने के लिये किया जाता है । चरक ने स्रोतोंजन का उपयोग पित्तज छर्दि की चिकित्सा में मुखद्वारा सेवन करने को लिखा है तथा रसांजन का प्रयोग प्रदर की चिकित्सा हेतु लिखा है। कुष्ठ चिकित्सा में भी अंजनों का उल्लेख आया है। आचार्य विदेह सौवीरांजन को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। संहिताकाल में भी प्रतिदिन नेत्रों को स्वच्छ करने एवं कण्डू, दाह को दूर करने हेतु अंजनों का प्रयोग होता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे दृष्टि की शक्ति अधिक बढ़ती है । प्रतिदिन नेत्र में अंजनों के प्रयोग से तिमिर रोग, कांच के रोग (मायोपिया), हाईपरमैट्रोपिया जैसे दृष्टि-विभ्रम रोग नहीं होते थे और नकली कांच (चश्मा) लगाने की जरूरत उस काल में नहीं प्रतीत होती थी। आज के वैज्ञानिक युग में अंजनों का प्रचलन धीरे-धीरे कम होता जा रहा है तथा मुखमंडल एवं भुकुटी की सुन्दरता बढ़ाने हेतु ही काजलों का प्रचलन दिखाई देता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अंजन के भेद

1. स्रोतोंजन (एण्टीमनी सल्फेट)
2. पुष्पांजन (आक्साइड आफ जिंक)
3. रसाजंन : रसांञ्जन तीन प्रकार के होते हैं। शैलोत्थ (प्राकृतिक) तथा दो कृत्रिम क्रिया द्वारा बनाये जाते हैं।
4. नीलांजन/ताक्ष्यांजन (सल्फाइड आफ लैड)

स्रोतोंञ्जन : स्रोतोंञ्जन सभी प्रकार के तिमिर रोग नाशक है। बालकों के नेत्रों के शुक्र रोगकनाशक है। पित्ताभिष्यन्द, पित्त, विदग्धदृष्टि (दिवान्ध) एवं पित्तज नेत्र रोगों में हितकारी है।

सौवीरं तु गुरू स्निग्धं, नेत्र्यं दोष त्रयापहम् ।
रसायनं सुवर्णघ्नं, लोहमार्दवकारकम् ।।
सौवीराञ्जनं ग्राहि स्निग्धञ्चतुहिनोपमम् ।
रक्तपित्त प्रशमनं, नेत्रामय हरः परम् ।।
विष हिक्कापहं कामं ब्रणशोधन रोपणम् ।। *(रस तरंगिणी)*

रसांजन : प्राकृत रसांजन तार्क्ष्यशैल से प्राप्त होता है तथा स्वल्पांश में पारद विद्यमान होता है। कुछ विद्वानों ने दारूहरिद्रा मूल से तैयार किया हुआ घनसत्व को रसांजन लिखा है। जिसे रसोंत कहते है। रसौंत नेत्र रोगों की दवा है। इसी कारण इसे रसांजन कहा गया है।

ताक्ष्र्याजंन (नीलांजन) : यह नक्तान्धो (रतौंधी) नाशक है। नीलांजन (ताक्ष्र्याजंन) भस्म का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है। नीलांजन की भस्म श्वासरोग के वेग को कम करता है। यह कफ निकाल कर फुफ्फुस एवं श्वासनलिका के कफ दोष को दूर कर देता हैं।

पुष्पांजन : यह श्वेतवर्ण का स्निग्ध, शीतवीर्य, सब प्रकार के नेत्ररोंगों में हितकारी, हिक्का, विषमज्वर एवं क्षयनाशक है।

पुष्पांजनं सितं स्निग्धं, हिमं सर्वाक्षिरोगनुत् ।
अतिदुर्धर हिक्काध्नं, विष ज्वर क्षयापहम् ।। *(रसामृतम्)*

द्रव्यनाम :- संस्कृत : स्वर्णमाक्षिक, सुवर्णमाक्षिक, तावीज
लद्दाखी : सरदो, हिन्दी : सोनामाखी
अंग्रेजी : **Copper pyritas**

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र में यह खनिज लिनसिंड, रंगदूम एवं जनस्कार की पहाड़ियों एवं नालों में पाया जाता है। यह खनिज नीलाभ मटमैले रंग का चमकदार, चौकोर ढेले के रूप में प्राप्त होता है। ढेले कोण रहित होते है। यह आग पर रखने से जलता है तथा इसमें गंधक के जलने की सी गंध आती है। जलने के बाद बची भस्म में ताम्र तथा लोहे का अंश रहता है। अंधमूषा में बंद कर जलाने पर चट-चट आवाजें होकर उत्ताप से ताम्र, लौह मिश्रित धातु सत्व प्राप्त होता है। लद्दाख के अतिरिक्त भारत में सुवर्णमाक्षिक ताप्ती नदी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

के आसपास, हजारीबाग, दार्जिलिंग, सिक्किम, मद्रास, नेपाल, भूटान, वर्मा आदि स्थानों में भी पाया जाता है।

भेद : मुख्यत दो भेद होते हैं ।

1. सुवर्णमाक्षिक, 2. रौप्यमाक्षिक

ताम्रमाक्षिक व सुवर्णमाक्षिक इन दोनों में विशेष अन्तर नहीं है। स्वर्ण माक्षिक हरिताभ विशेष पीत वर्ण का होता है। निम्न तालिका में स्पष्ट अन्तर किया गया है।

क्र.स.	नाम	प्रधानधातु	धात्वांश	काठिन्य	गुरूत्व	रंग
1.	सुवर्णमाक्षिक	ताम्र	ताम्र 2 भाग लौह 2 भाग गंधक 3 भाग	6	4.8	मटमैला चमकदार
2.	ताम्रमाक्षिक	ताम्र	ताम्र 2 भाग लौह 2 भाग	4	4	मटमैला पीतवर्ण
3.	रौप्यमाक्षिक	लौह	लौह 1 भाग गंधक 2 भाग	6	4.8	मटमैला पीत
4.	विमल	लौह	लौह 1 भाग गंधक 2 भाग	6	5	चमकयुक्त
5.	कांस्यमाक्षिक	लौह	लौह 1 भाग गंधक 1 भाग	6	6.2	स्टील सम श्वेत

आयूर्वेदिय गुण-धर्म :

सुवर्ण माक्षिकं वृष्यं मधुरं तु रसायनम् ।
तिक्तं स्वर्यञ्च चक्षुष्यं त्रिदोषघ्नं परं मतम् ।।
अनिद्रांनाशयत्याशु : योगवाहि परंमतम् ।। *(रस तरंगिणी)*

गुणकर्म : यह नेत्रविकार नाशक, रक्ताल्पता, पाण्डु, यकृत रोग, वस्तिशूल, कुष्ठ, प्रमेह, विषविकार, उदररोग, अर्श, शोथ, कण्डू एवं क्षयनाशक है। अनुपान भेद से देने पर अनेक रोगनाशक एवं बलप्रद है। स्वर्णमाक्षिक सत्व को पिघलाकर अलग किया जाता है।

वक्तव्य : चरक, सुश्रुत एवं अष्टांगसंग्रह में विमल का उल्लेख नहीं मिलता है सुश्रुत ने चिकित्सा स्थान - 13 के मधुमेह चिकित्सा में माक्षिक का उल्लेख किया है। यथा :-

"सुवर्ण शैल प्रभवो, विष्णुना कांचनों रसः ।
तापी किरात चीनेषु यवनेषु निर्मित :।।
मधुरः कांचनामास : साम्लोर जतुसन्निभ :।। *(सुश्रुत चि.अ. 13)*

सुश्रुत ने कांचना भास (सोने जैसे रंग वाला), रजत प्रभ (चांदी के समान रंग वाला) मधुर और अम्ल दो भेद

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बताये गये हैं। चरक ने भी माक्षिक, सुवर्णमाक्षिक का उल्लेख किया है।

डा. वामन गणेश देसाई ने लोहा, तांबा गंधक से मिल कर बने खनिज पाषाणों को भूगर्भ शास्त्र में पायराइटीज (अग्नि पाषाण) कहा है क्योंकि ये पाषाण आग पर रखने पर जलते हैं। ताम्र एवं विमल जिसमें मिला होता है और उसे सुवर्ण माक्षिक ताम्र गन्ध्यास कहते हैं। सुवर्णमाक्षिक भीतर से सोने जैसा पीला दिखाई देता है। आचार्य यादव जी त्रिविक्रम ने रसामृत में इसका विस्तृत उल्लेख किया है। शोधशास्त्री इसकी विस्तृत जानकारी रसामृत नाम पुस्तक देखें।

द्रव्यनाम :– संस्कृत : **अभ्रक, व्योम, बाहुपत्र,** लद्दाखी : **सीसानग्पो**

अंग्रेजी : **Mica**

प्राप्ति स्थान : लद्दाख में यह परकाची, पनामिक जन्सकार आदि स्थानों में पाया जाता है। भारत के अन्य स्थानों राजस्थान, पंजाब, मद्रास, उत्तरप्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों के कतिपय स्थानों पर भी पाया जाता है। अभ्रक के टेढे-मेढे आकार के बहुत बड़े-बड़े ढेले खदानों में से निकलते हैं। ये श्वेत एवं कृष्ण वर्ण के परतदार एवं वजन में हल्के होते हैं। रंग भेद से अभ्रक 4 प्रकार का होता है । श्वेताभ, कृष्णाभ, पीताभ, रक्ताभ। रसतंत्रों में श्वेत (सफेद) तथा कृष्ण (काला), अरूण (लाल) तथा पीत (पीला) चार प्रकार का उल्लेख मिलता है। कृष्ण अभ्रक उत्तम माना जाता है। काला अभ्रक भी पिनाक, नाग, दर्दुर, वज्र भेद से चार प्रकार का होता है। इनमें वज्र अभ्रक उत्तम होता है। चिकित्सा में वज्राभ्रक का उपयोग किया जाता है।

अभ्रक की जाति परीक्षा : पीनाक नामक अभ्रक को तेज अग्नि पर तपाने से उसकी परतें शीघ्र अलग हो जाये, तो यह अभ्रक औषध उपयोग के योग्य नहीं होता है। जिस अभ्रक को तेज अग्नि पर रखने में सर्प की फुफ्कार के समान सूं-सूं की आवाज निकले वह नागाभ्र औषध सेवन योग्य होता है। जो अभ्रक आंच पर मेढक के समान उछल-उछल कर बाहर निकले वह दद्रुर अभ्रक कहलाता है। सर्वोत्तम अभ्रक तेज अग्नि पर बिना किसी गति या ध्वनि के प्रकृतिस्थ पड़ा रहे वह वज्राभ्रक सर्वश्रेष्ठ एवं औषध सेवन योग्य होता है ।

गति एवं ध्वनि निकलने का कारण :

तालिका

क्र.सं.	नाम	गुरूत्व	काठिन्य
1.	श्वेत अभ्रक	2.75	2.5
2.	कृष्ण अभ्रक	2.7	2.5
	इस जाति में जलीयांश कम तथा लौह सत्वांश अपेक्षाकृत अधिक होता है ।		
3.	पीत अभ्रक	2.7	1.5
4.	रक्त अभ्रक	3	3.2

सभी प्रकार के अभ्रक-खंडों में स्थित जलीयांश, सच्छिद्रता तथा रचना उनकी गति व ध्वनि में कारण होते हैं । अभ्रक में 4 से 6 प्रतिशत जलीयाँश होता है।

अभ्रक भस्म की पुट संख्या : अभ्रक भस्म में 10 पुट से लेकर 1000 तक पुट लगाये जाते हैं। पुट

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लगाने का कारण रसायन शक्ति को बढ़ना होता है। जो अभ्रक भस्म निश्चन्द्र, अरूणवर्ण, साफ, अतिसूक्ष्म तथा स्पर्श करने पर मृदु हो वह श्रेष्ठ भस्म होती है। अभ्रक से सत्व रूप में उत्तम लौह अयस प्राप्त होता है उसे अभ्रक सत्व कहते हैं। पारद एक भाग, अभ्रक भस्म एक भाग, गंधक 2 भाग, कुमारी स्वरस से मर्दन कर बालुका यंत्र में पकाने पर अभ्रक सत्व बनता है।

आयुर्वेदीय गुणधर्म : अभ्रक भस्म बलकारक, बुद्धिवर्धक, बाजीकर, रसायन है। यह कास, श्वास, पाण्डुरोग, क्षय, जीर्णज्वर, प्रमेह, परिणामशूल, अम्लपित्त, ग्रहणी रोग, श्वेतप्रदर, अर्श आदि रोगनाशक है। यथा :

अनुपान विशेषेण सर्वरोगां स्तुनाशयेत्।
बल्यं मेध्यं तथा बृष्यं, रसायनमुत्तमम्।। *(रसामृतम्)*

द्रव्यनाम :- संस्कृत : **स्वर्ण, कनक, हिरण्य,** हिन्दी : **सोना**

अंग्रेजी : **Gold.**

प्राप्ति स्थान : लद्दाख क्षेत्र के सिंध नदी के बालू में (रेती में) सोना पाया जाता है। इस का उल्लेख मूरक्राफ्ट ने "ट्रेवल्स इन हिमालया'' नामक पुस्तक में किया है। चूंमाथांग तथा पाकिस्तान की सीमा पर ईन्डसनदी के उद्गम स्थलों के पास सोना मिलता है। ऐसा स्थानिक ग्रामीणों का विश्वास है आयुर्वेद में यह सोने के वर्क, स्वर्ण द्रुति, स्वर्णलवण, स्वर्ण भस्म के रूप में उपयोग होता है।

स्वर्ण के भेद : प्राकृत, सहज, अग्निजात, खनिंज तथा पारद वेधोत्पन्न। सहज तथा वह्निज को दुर्लभ बताया गया है।

शास्त्रीय योग : पूर्ण चंद्रोदय, सुवर्ण मालती-वसंत, लक्ष्मीविलास रस, कुमार-कल्याण रस, चतुर्भुज रस, बसन्त-कुसुमाकर, जयमंगलरस, सुवर्णपर्पटी, सुवर्ण-सिंदूर, सिद्धमकरध्वज आदि कतिपय योग तैयार किये जाते हैं।

द्रव्यनाम :- हिन्दी : **जहरमोहरा,** लद्दाखी : **मेलचे**

अंग्रेजी : **Serpentine**

लद्दाख क्षेत्र में यह बुद्धखरब्, नुब्राघाटी आदि स्थानों में पाया जाता है। लद्दाख में इसे मेलचे कहते हैं। स्थानिक लामा इसके कटोरी, गिलास बनाकर गुम्पाओं में रखते हैं। यह हरित, कृष्ण, पीले-भूरे रंग का धब्बेदार पत्थर होता है। जिस स्थान पर प्लेटिनम, ताम्र, लोहा आदि खनिज मिलते हैं। वहां पर मिलने की अधिक सम्भावना रहती है।

गुण : हृत्पौष्ठिक, वालातिसार, अपचन, वमन, अतिसार, भ्रम, दाह आदि में उपयोगी है।

रत्न (Gem stones)

वह पाषाण खंड जो कि अतिरमणीय एवं हृदय को प्रिय हो, उसे रत्न नाम से पुकारा जाता है। यही कारण है कि नर-नारियों में कई प्रकार के रत्नों को धारण करने की प्रथा है। रमणीयता में सुंदर होने के

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कारण ही इन ठोस पारदर्शी पाषण खण्डों को रत्न कहते हैं। लद्दाख की नारियाँ कई प्रकार के मणि-रत्नों को आभूषण के रूप में धारण करती हैं। पंचरत्न, सप्तमहारत्न एवं नवरत्नों का उल्लेख आयुर्वेद में हैं।

नवरत्न : माणिक्य, मुक्ता, प्रवाल, पन्ना, पुखराज, वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद, वैदूर्य (लहसुनिया) आदि नवरत्न नौ ग्रहों के रत्न माने गये हैं। उपरत्नों में वैक्रांत, सूर्यकांत, चन्द्रकांत, राजावर्त, लाल फिरोजा, मुक्ताशुक्ति, शंख, कर्पूरी पाषाण, कांच पत्थर आदि की गणना की गई है। कुछ आचार्य पालक, रूधिर, पूर्त्तिक, तार्क्ष्यज, पीलू, उपल एवं सुगन्धिक ये सात उपरत्न मानते है।

आठ मणियां : वैक्रांत, सूर्यकांत, हीरा, मोती, मणि, चन्द्रकांत, राजावर्त एवं पन्ना ये आठ मणियां बताई हैं। वेदोंक्त 14 आर्ष मणियों का उल्लेख है। चरक, सुश्रुत में भी वज्र (हीरा), अर्कमणि, कुरूविन्द, गजमुक्ता, प्रवाल, मरकत मणि, मुक्ता, वराटक, शंख, वैदूर्य, पुलकमणि, स्फटिकमणि, शुक्ति, सर्पमणि, कान्तमणि, सूर्यमणि, पिचुक आदि कतिपय मणियों का उल्लेख है। पौराणिक ग्रंथों में कौस्तुभ मणि, अश्मन्तक मणि आदि अनेक मणियों का उल्लेख है। समुद्र मंथन से जो 14 रत्न निकले हैं उनमें लक्ष्मी, कौस्तुभ, पारिजात, सुरा, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु, उच्चैश्रवा, शारंगधनु, शंख, सुधा, ऐरावत (गज), रम्भा (अप्सरा) आदि है।

रत्न समुद्र, पृथ्वी, नदियों, पर्वतों तथा बड़े-बड़े गहन वनों में खदानों से प्राप्त होते हैं। प्राय: सभी रत्नों में अपनी-अपनी विशेष प्रकार की रश्मियां होती हैं। इन्द्रधनुष स्थित सात रंगों की भांति इन रत्नों में भी श्वेत, पीत, रक्त-नील, हरित-कृष्ण तथा बैंगनी या कर्बुर रंग होते हैं । इन रश्मियों का मानव देह पर सीधा प्रभाव पड़ता है। स्पर्श से ही फल प्राप्त होते हैं। रत्नों की विकिरण किरणों से प्रसारित प्रभा पुंज से विपरीत दुष्ट ग्रहों तथा विषों की अनिष्टकारी तरंगें स्तम्भित हो जाती हैं। विभिन्न ग्रहो के आधार पर धारण करने वाले रत्नो के नामो की तालिका यहाँ दी जा रही है।

नौ ग्रहों के रत्नों के नाम :

क्र.सं.	ग्रहों के नाम	रत्न
1.	सूर्य ग्रह	माणीक्य (Ruby)
2.	चन्द्र ग्रह	मुक्ता (मोती) (Pearl)
3.	मंगल ग्रह	प्रवाल (मूंगा) (Coral)
4.	बुध ग्रह	मकरद (पन्ना) (Emerald)
5.	बृहस्पति ग्रह	पुखराज (Topaz)
6.	शुक्र ग्रह	हीरक (हीरा) (Diamand)
7.	शनि ग्रह	नीलम (Sapphire)
8.	राहु ग्रह	गोमेद (Cinnamosi Stone)
9.	केतु ग्रह	वैदूर्य (लहसुनिया)

रत्नों के धारण करने या सेवन करने के दिनों का भी उल्लेख आयुर्वेद में है। माणिक्य को रविवार, मोती को सोमवार, प्रवाल को मंगल, पन्ना को बुध, पुखराज को बृहस्पति, हीरे को शुक्र, नीलम को शनिवार, गोमेद एवं वैदूर्य को अमावस्या या पूर्णिमा में धारण करना चाहिये। ये रत्न ग्रहों के अनुसार अलग-अलग फल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

देते हैं। विस्तार भय से विस्तृत उल्लेख देना सम्भव नहीं है। नौ रत्नों में से कतिपय लद्दाख हिमालय में पाये जाते है। उसमें से जिनकी जानकारी मिल सकी है उनका उल्लेख किया जा रहा है।

स्फटिका : लद्दाख में कई किस्म के पारदर्शक क्वार्टस (Quartaz) पाये जाते हैं। इन्हें शैलमणी (Rock crystals) कहते हैं। स्फटिक मणि विन्ध्याचल की तराई में भी पाई जाती है। स्फटिक मणि की मालायें बनती हैं। जिनकों हाथ में धारण करने से उत्तम फल प्राप्त होता है। यह वीर्य में शीत, रस-मधुर एवं पित्तध्न है। सूर्यकांतमणि यह भी हिमालय के शिखरों पर मिलता है। आजकल यह विन्ध्याचल, जबलपुर, बांदा, लंका, ब्राजील, आदि स्थानों से प्राप्त किया जाता है। चन्द्रकांत मणि भी हिमालय के बर्फीले हिम शैलों से प्राप्त किया जाता है।

पीलु मणि (संगेयशव) : यह एक कठोर पत्थर होता है। इसका रंग श्वेत मरकत के समान होता है किन्तु इससे चमक नहीं होती है। यह हरा व हरापन लिये सफेद या नीलापन लिये हुये हरे रंग का पत्थर होता है। यहाँ के लोग इससे रकावी, प्याले बनाते है। तथा गले में पहनने की मालायें भी बनाई जाती है।

गुण-धर्म : वीर्य में शीतल, हृदय एवं आमाशय को बल देने वाला, आमाशय शूल, मूत्रदाह तथा अश्मरी में लाभप्रद है। संगेयशवपिष्ठी का चिकित्सा उपयोग किया जाता है।

इसी प्रकार लद्दाख क्षेत्र में कई अन्य खनिज प्लोराइट, जिप्सम, ग्रेफाइट, फास्फोरस, फास्फोराइट एवं प्लेटिनम भी पाया जाता है। सोपस्टोन (Magnesium silicate), कैल्शियम स्टोन, मार्बल पत्थर, औषध उपयोगी लवण, पाषाण एवं फौसील्स भी लद्दाख में पाये जाते हैं।

FOSSIL

द्रव्यनाम :- संस्कृत : वदराश्म, यूनानी : संगेयहूद, लद्दाखी : मंझीरा

परिचय : यह बेर एवं सीता सुपारी के सदृश गोल या लम्बगोल आकार के पाषाण होते हैं। रगड़ने पर इनमें अजीब किस्म की गंध आती है। यह गोल, भूरे रंग के, झुरियों वाला, भीतर से हरापन लिये हुये होता है। यह चूना एवं सिकता का यौगिक (Salicate of lime) है। लद्दाख में यह मरका, रिनम, जन्सकार आदि स्थानों पर पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची इस पाषाण की भस्म का प्रयोग उदरशूल, प्रदर, मूत्र एवं अर्श आदि विकारों में करते हैं। यूनानी हकीम इसकी पिष्ठी एवं भस्म का प्रयोग मूत्रल, पित्तनाशक, वमन को बंद करने वाला, अश्मरी शूलहर एवं मूत्रावरोध में प्रयोग करते हैं।

द्रव्यनाम : स्थानिक : बनू

परिचय : यह बदराश्म एवं गोश्रृंग सदृश, लम्बगोल फोसिल (Fossil) है। जमीन पर इस पाषाण को घिसने पर अपनी विशेष गंध छोड़ता है। इसके पाषाण स्क्यु, मरका, खालसी, ससपोल, जन्सकार आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची इन पाषाणों की भस्म बनाकर परिणाम शूल, उदरविकार एवं

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मूत्रविकारों में प्रयोग करते हैं।

बनू का शोधन : बनू के छोटे-छोटे टुकड़े कर इसे आग पर तपाते हैं। जब ये पत्थर रक्त वर्ण के हो जाते हैं तो इन्हे पानी में बुझाते हैं । तीन-चार बार यह क्रिया कर पुनः पानी एवं औषध द्रव्यों के साथ घोट कर टिकिया बनाकर भस्म तैयार करते हैं। इस भस्म का औषध में उपयोग किया जाता है। आयुर्वेदिक नामकरण इन पाषणों का करना अनिवार्य है।

द्रव्यनाम : लद्दाखी : चोंजी

परिचय : लद्दाख में कतिपय श्वेतवर्ण के विभिन्न आकार के खनिजों एवं लवणों के यौगिक पाषाण पाये जाते हैं। ये पाषाण भूतापीय ऊर्जा के फलस्वरूप उष्ण जल स्रोतों एवं झीलों में पाये जाते हैं। इनमें से एक चोंजी नामक पाषाण का स्थानिक आमची भस्म बना चिकित्सा में प्रयोग करते है। इसकी कई किस्में यहाँ मिलती है।

भेद : वर्ण एवं आकार-भेद से चोंजी स्त्री-पुरूष, पुत्र-पुत्री एवं नपुंसक भेद से इसकी कतिपय किस्में पाई जाती है। यथा :

1. फोचुंगं चोंजी (पुरूष) : इसका वर्ण श्वेत रंग का होता है।
2. मोचुंगं चोंजी (स्त्री) : श्वेताभ एवं घूसर वर्ण के लम्बे, स्तनाकार एवं चपटे होते हैं।
3. मचूंगं चोंजी (पुत्र) : श्वेतवर्ण का चमकीला दानेदार।
4. मनींग चोंजी (पुत्री) : श्वेत वर्ण का या श्वेताभ वर्ण का।
5. पूचोंजी (नपुंसक) : घूसर एवं कृष्णाभ वर्ण का होता है।

प्राप्तिस्थान : चौंजी की सभी किस्में जन्सकार, चुमाथांग, तिमसागाम, वनका, नुब्रा, पनामिक एवं लेह तहसील में उष्ण जल स्रोतो, झरनों एवं झीलों के आस-पास पाये जाते हैं।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची इन किस्मों की भस्में तैयार करते हैं। ये भस्में पुटपाक-विधि से तैयार की जाती है। कतिपय उदर-रोगों :- अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी रोग :- परिणाम शूल, अम्लपित्त, यकृतविकार, अरोचक आदि विकारों में इसकी भस्म का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इनसे मिलता पाषाण भी यहाँ सरका क्षेत्र में में पाया जाता है। जिसे स्थानिक आमची टूजी (दुआ-छोलो) कहते है।

वक्तव्य : आयुर्वेद में दुग्ध पाषाण, वदराश्म का चिकित्सा में प्रयोग करने का उल्लेख है। चौंजी शास्त्रीय आधार पर क्या हो सकता है, इस पर विद्वानों को विचार आना अपेक्षित है। तिब्बत एवं लद्दाख में परम्परागत रूप से इनका चिकित्सा में उपयोग किया जा रहा है। ये पाषाण फोसील्स के रूप में हिमशैलों एवं लवणीय झीलों में पाये जाते हैं ।

द्रव्यनाम : लद्दाखी : दोजो

परिचय : लद्दाख में ये विभिन्न आकार के फोसील्सनुमा पाषाण कारजा, लेह ऐन, डिसकीत, चमशन नाला, स्क्यू, मरका आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

भेद : 1. दोजोकारपो (श्वेतवर्ण), 2. दोगी, 3. थींगी, 4. दे तुंग 5. बानू आदि किस्में होती है। दे तुंग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यह शंख के आकार का होता है।

स्थानिक प्रयोग : स्थानिक आमची इन विभिन्न आकार के पाषाणों की भस्म का उपयोगं चिकित्सा में किया करते हैं। विस्तृत जानकारी के लिये इन सभी के नमूनों का संग्रह कर गुणधर्मों का अध्ययन करना अपेक्षित हैं। इसीप्रकार दो-छिगो, दो पानु मिलते-जुलते दोजो सदृश पाषाण है । इनका भी चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

द्रव्यनाम :- लद्दाख : दोरगिस, दोंगरिस (पहाड़ों की कण्डरा)

परिचय : यह भी एक किस्म का फासिल्स है। ग्रामीण लोग इसे पहाड़ों की कण्डरा कहते हैं। यह परतदार रज्जुसदृश्य हरितवर्ण की होती है जो कि पाषाणों के अंदर पाई जाती है। स्थानिक आमचियों का कहना है कि यह लद्दाख क्षेत्र के लेह रेंज में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : आमची दोंगरिस की भस्म तैयार करते हैं। भस्म बनाने के लिये सर्वप्रथम इनको गर्म कर के लाल वर्ण करते हैं। फिर इनको जल एवं लस्सी में बुझाते हैं। यह क्रिया 3-4 बार करते हैं। पुन: पुट पाक-विधि से भस्म तैयार करते हैं। भस्म का उपयोग एकांगवात (अधरंग) एवं आमवात आदि रोगों में करते हैं। निम्न किस्में लद्दाख में पाई जाती है।

1. दोगी 2. थींगी 3. चवलमा

इनका भी औषध में प्रयोग किया जाता है। लद्दाख क्षेत्र में **दोठीं, दोपानु, नीमाखाचु, कारची, दंगचते, दो फांगु, दो छिंगा** आदि कतिपय उपयोगी पाषाण पाये जाते हैं। लद्दाख के पहाड़ों में प्राय: वोलकेनी क्रोमाइड़, (Valcani chromides) क्वार्टस एवं सेंडिमेन्टरी-रौक्स काफी मात्रा में पाये जाते हैं। भूगर्भ शास्त्री विस्तृत रूप से लद्दाख क्षेत्र में सर्वेक्षण कार्य कर रहें हैं। अन्य कतिपय खनिजों के मिलने की सम्भावना है।

लवण एवं क्षार

लद्दाख में विशेष प्रकार के लवण एवं क्षार भी पाये जाते हैं। जिनका उपयोग चिकित्सा में एवं प्रयोग शालाओं में होता है। ये लवण एवं क्षार बर्फीले ऊंचे हिमनदों के समीप झीलों में पाये जाते हैं। चुमाथांग ब्लाक में कुरदुंग एवं टंगलंगला के पास कुछ झीलें हैं। इन झीलों एवं उष्ण जल स्रोतों में श्वेत, भूरे रंग के लवण पाये जाते हैं, जिनका उपयोग स्थानिक आमची करते हैं। इनमें कुछ निम्न है :

1. पुल Sodium bicarbonate
2. याप्पाखरा Sodium sulphale
3. सेरचे

द्रव्यनाम : लद्दाखी : याप्पाखरा

अंग्रेजी : Sodium Sulphate

लद्दाख के कुरदुंग, छोकर आदि कतिपय झीलों में यह लवण पाया जाता हैं। चुमाथांग रेंज में धोका लेख

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लवणों के लिये प्रसिद्ध है। लेह से यह स्थान करीब 180 किलोमीटर की दूरी पर है। यहीं से एक रास्ता बड़ालाचा 'पास' होते हुये लाहुल, कुल्लु-मनाली, हिमाचल प्रदेश को चला गया है। मार्ग में सबसे ऊंचा पास टंगलंगला नामक 'पास' पार करना होता है। इस 'ला' (पास) की ऊंचाई 17,500 फीट है। मार्ग में सेंगल नामक स्थान आता है जहां पर भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग का अनुसंधान कैम्प अस्थाई रूप से कार्यरत है। यहां के भूगर्भ शास्त्रियों से विचार विमर्श करने पर मालूम पड़ा कि इन झीलों में सोडियम सल्फेट, पोटास, सोडियम कार्बोनेट आदि कतिपय लवण पाये जाते हैं। स्थानिक भाषा में इन लवणों को थाप्पाखरा कहते हैं। यहां के बकरवाल अपने मवेशियों को यही लवण खिलाते हैं। कतिपय स्थानों पर अच्छे किस्म के लवण भी पाये जाते हैं। तिब्बत सीमा पर अन्य झील है जो चिथूल मार्ग पर है। न्यूमा से चिथूल 90 किलोमीटर है। स्थानिक आमची अपनी दैनिक चिकित्सा में इन सभी लवणों का प्रयोग करते हैं।

द्रव्यनाम :- स्थानिक : पुल, हिन्दी : खाने का सोडा
अंग्रेजी : Sodium Bicarbonate

प्राप्तिथान : स्थानिक भाषा में इसे पुल कहते हैं। यह पनामिक, पूगाघाटी में गर्म पानी के झरने (हौटस्प्रिंग) एवं झीलों के पास पाया जाता है। व्यापारिक रूप से इनका इन स्थानों से संग्रह किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मैग्नीशियम (Magnesium) नामक साल्ट भी यहां की झीलों में पाया जाता है। यह लवण सोमोरी नामक झील में पाया जाता है।

स्थानिक प्रयोग : ग्रामीण लोग नमकीन चाय में इस लवण का प्रयोग करते हैं। स्थानिक आमची अग्निमांद्य, पाचन सम्बंधी विकारों में उपयोग करते हैं।

द्रव्यनाम :- स्थानिक : सेरचे

यह लवण खरदुंग एवं चुमाथांग ब्लाक के समीप स्थित झील में पाया जाता हैं। यह भूरे रंग का चूर्ण रूप में होता हैं। स्थानिक आमची इसका मूत्रल (diuretic) के रूप में प्रयोग करते है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लद्दाख हिमालय में अनेक प्रकार के खनिज, पाषाण, रत्न एवं लवणों के मिलने की काफी संभावना है। इन कतिपय खनिजों का उपयोग यहाँ परम्परागत ढंग से सदियों से किया जा रहा है। विस्तृत रूप से यदि सर्वेक्षण कार्य किया जाय तो अन्य औषध उपयोगी द्रव्यों का पता लगाने में भी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) नई दिल्ली, इस दिशा में सक्रिय कार्य कर रही है। भूगर्भ शास्त्रियों के सहयोग से अन्य रस-शास्त्र में उपयोगी धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्नों, लवणों का पता लगाने में भी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उपरोक्त आलेख में हिमालय की औषधीय सम्पदा की जानकारी दी गई है जिसमें वानस्पत्य द्रव्यों एवं खनिजों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त हिमालय क्षेत्र में उपयोगी कस्तुरी मृग आदि वन्य प्राणी पाये जाते हैं जिनका कि संक्षिप्त विवरण इस लेख में दिया जा रहा है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जान्तवद्रव्य

लद्दाख हिमालय के ऊंचे स्थानों पर कई किस्म के वन्य प्राणी पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में भारवाहक पालतू एवं वन्य पशु याक पाया जाता है। स्थानिक भाषा में नर को जो तथा मादा को जेमी कहते हैं। इस पशु को चौंर गाय भी कहते हैं। हिमालय क्षेत्र का भारवाहक पशु याक बहुत उपयोगी है। इस पशु का उपयोग कृषि एवं दूध के लिये भी किया जाता है। याक की पूंछ गुच्छेदार, सफेद, काले रंग के बाल बहुत उपयोगी माने जाते हैं। लामा लोग बौद्ध मठों में याक की पूंछ के बाल रखते हैं चौंरी गाय की पूंछ का उपयोग चंवर डुलाने के लिये किया जाता है। इस क्षेत्र में निम्न उपयोगी वन्य प्राणी पाये जाते हैं।

1. कस्तूरी मृग (Moschus moschiferus)
2. मराल
3. उरेल
4. हिमालय आइवैक्स
5. टिवटियनगंजील
6. भरखोर
7. स्नोलेपड़
8. थार
9. जंगली बिल्ली (पालासकैट) आदि वन्यजन्तुलद्दाख क्षेत्र में पाये जाते हैं ।

द्रव्यमान : संस्कृत : कस्तूरी, स्थानिक : रिव्यो

अंग्रेजी : Musk

परिचय : "कस्तूरी" नर कस्तूरी मृग **(Male Musk Dear)** की नाभी से प्राप्त की जाती है। जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त लद्दाख क्षेत्र में भी यह कस्तूरी मृग करगिल तहसील के मटाईन, जोजीला, एवं जन्सकार, बड़ालाचा आदि स्थानों में पाया जाता है।

नरमृग जब युवावस्था में रहता है तो मादा मृग की ओर आकर्षित होता है एवं उस अवस्था में कस्तूरी विशेष उग्रसुगन्धित एवं प्रभावशाली होती है। औषध उपयोग में कस्तूरी का बहुत उपयोग है। कस्तूरी काफी मंहगी होने से शिकारी इसे चोरी-छिपे मारते हैं यही कारण है कि हिमालय में इन मृगों की संख्या घटती जा रही हैं। भारत सरकार ने इन मृगों की सुरक्षा हेतु वन्य जीव सुरक्षा कानून बनाया है। केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद्, भारत सरकार, नई दिल्ली ने कस्तूरी मृगों के प्रजनन हेतु घरमघर (अल्मोड़ा) उ. प्र. नामक स्थान पर "कस्तूरी मृग प्रजनन फार्म" की स्थापना की है। इस समय इस फार्म में नर एवं मादा मृगों की काफी संख्या है। पशु पालन विभाग एवं शल्य शास्त्रियों के सहयोग से बिना मृगों को मारे कस्तूरी निकालने की नई विधा खोज निकालने का सफल प्रयास किया जा रहा है। आशा है कि निकट भविष्य में अन्य सभी प्रांतों के हिमालय क्षेत्र में कस्तूरी मृग प्रजनन केन्द्रों की स्थापना की जा सकेगी जिससे इस प्राणरक्षक औषधि की कमी की पूर्ति की जा सकेगी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

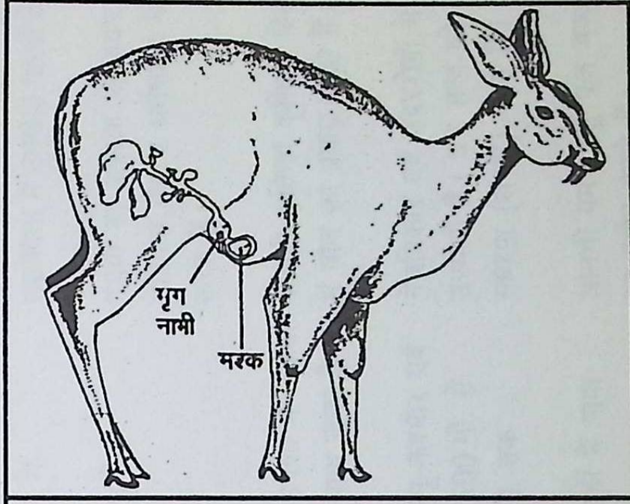

कस्तूरी मृग *(Moschus moschiferus)*

आयुर्वेदिक गुण-धर्म :

कस्तूरी कटु, तिक्त, उष्ण, कफ-वातशामक, शुक्रल, वाजीकर क्षयनाशक, दौर्ग्यन्ध नाशक है। यह वृष्य, ने, सुगन्धि, उत्तेजक, सौमनस्यजनन, आविजनन, हृदय एवं ज्ञानेन्द्रियों के लिए बलकारक, उद्वेष्टननिराधी तथा कफ, वायु, कण्डू और स्वेद की दुर्गन्ध को दूर करने वाला एवं स्थानिक पीडाशामक है। इसका प्रयोग अपतन्त्रक, वातनाडीदुर्बलता जन्यशैथिल्य, नपुंसकताहर एवं सुख प्रसवकर है।

"मृगनाभि मृगमदो वेध्यमुख्य मृगाण्ड़जम्।"
कस्तूरिका कटुस्तिक्ता, क्षारोष्या शुक्रला गुरू:।
कफवात विषछर्दि शीतदौर्गन्धिय शोषहृत् ।। *(भाव प्रकाश)*

असली कस्तूरी की पहचान :

या गन्धं केतकीनां बहतिपरिमलं वर्णत: पिजराभा: ।
स्वादे तिक्ता कटुर्वा लघुरथ तुलिता मर्दिता चिक्कणास्यात् ।।
दग्धा नोयाति भस्म्यं शिभि शिमिकुरूते चर्मगन्धातु चान्ते ।
सा भद्रालोभनीया पर मृगतनुजा राज्य योग्या प्रदिष्ठा ।
कामरूपोद्भावा श्रेष्ठा, नैपाली मध्यमा भवेत् ।
काश्मीर देश सम्भूता, कस्तूरी ह्यधमा मता ।
कामातुरे च तरूणी कस्तूरी बहुल परिमला भवति ।। *(कैय्यदेव निघण्टु)*

इस प्रकार से शास्त्रों में असली कस्तूरी के संदर्भ में उल्लेख मिलता है।

भेड़ पालन का लद्दाख में काफी महत्व है। इस क्षेत्र में कुछ चलते-फिरते परिवार ऐसे है जिनका व्यवसाय भेड़ पालने का है। ये लोग प्राय: रूपस, खरनक एवं सिरदु आदि स्थानों पर अस्थाई रूप से निवास करते हैं। ऊंचाई की दृष्टि से ये स्थान 16 हजार फीट से लेकर 17 हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित है। ये गांव संसार के सबसे ऊंचाई वाले भागों में बसे हुये हैं। इनका काम भेड़ एवं पशमीना बकरी पालने का है। इनकी भाषा लद्दाखी भाषा से कुछ भिन्न है। ये लोग टोग्पा जाति के प्राय: होते हैं। इनका पहनावा वेषभूषा भी कुछ भिन्न होता है।

स्थानिक आमची अन्य कतिपय जान्तव द्रव्यों का भी अपनी चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। इनमें कच्छप (कछुआ) की हड्डी, गोरोचन, वाघ का पित्त, भालू का पित्त, सुअर की चर्बी, खरगोश का दिल, नरकपाल, केंचुआ, सर्प आदि हिंसक जानवरों का उपयोग करते हैं। सर्प मांस एवं भस्म का उपयोग आमवात तथा नेत्र-रोगों में प्रयोग करते हैं। स्थानिक चिकित्सक कतिपय औषध-योगों में इन जान्तव द्रव्यों का प्रयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख में तिब्बतीय चिकित्सा प्रणाली में प्रयुक्त जड़ी-बूटियों के स्थानिक प्रयोगों की संक्षिप्त तालिका

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
1.	स्पांगपोस	जटामांसी, मांसी	*Nardostachy jatamashi.*	भौमिक कांड, मूल	लद्दाख, सिक्किम, भुटान में 3,000 मी. से 4,500 मी. तक	मानसिक, रोग भूत बाधा हर एवं हवन सामग्री में उपयोगी
2.	टोंगठा,तोगठा, तोंका	कुलन्जन, द्वीपान्तरवचा	*Alpina galanga.*	राईजोम	हिमालय क्षेत्र में विशेषकर दार्जिलिंग, नेपाल में	आमची उदरविकार,ज्वर एवं वातवेदना में उपयोगी मानते हैं।
3.	यॉंकी		स्पष्ट नहीं	पञ्चांग	लद्दाख में सुलभ है।	पंचांग का उपयोग तिब्तियन मेडिकल सैन्टर धर्मशाला मे करते हैं।
4.	चितंग (चिंतांका)	वायविडंग	*Embelia ribes.*	बीज	भारत के उष्ण प्रदेशों में विशेष-कर आसाम में पाया जाता है।	आमची कतिपय कृमिघ्न योगों में बीज का प्रयोग करते हैं।
5.	किरसिंग	दारूहरिद्रा	*Berberis vulgaris.* *Berberis ulicina.*	मूल, काष्ठ, धनसत्व	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख में 1,500 मी. से लेकर 3,900 मी. तक	नेत्रविकार एवं उदररोगों में उपयोगी है। धन सत्व को स्केरपा (खण्डा) कहते हैं।
6.	लुगथांन, सोछा	अरिष्ठक, रीठा	*Sapindus mukorssi.*	फल	मैदानी उष्ण भागों में पाया जाता है।	आमची वमन हेतु फल मज्जा का प्रयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
7.	खलमाजोसा	कपिकच्छु, कौंच	*Mucuna prurita.*	बीज	मैदानी उष्ण भागों में पाया जाता है।	आमची वल्य, वाजीकर के रूप में प्रयोग करते हैं।
8.	स्निंगजोसा	आम्रातक	*Spondis pinnata.*	फल	मैदानी उष्ण भागों में	पाचन, सारक के रूप में प्रयोग
9.	अगेरू	अगुरू, अगर	*Aquilaria agallocha.*	काष्ठ	अरूणाचल प्रदेश में पाया जाता है।	आमची अपनी चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।
10.	लुगमिक	–	*Sedum tibeticum.* *Sedum trificum.*	पञ्चांग	लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची उदरविकारों में पञ्चांग का प्रयोग करते है।
11.	सोलोमारपो	–	*Seedum milicaule.*	मूल	लद्दाख हिमालय में पाया जाता है।	आमची अपनी चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।
12.	तिक्ता	त्रायमाण	*Gentiana moorcroftiana.*	पुष्प, पंचांग	इसकी कतिपय प्रजातियाँ लद्दाख में पाई जाती है।	आमची पुष्प एवं पंचांग का कतिपय ज्वरघ्न योगों में उपयोग करते हैं।
13.	पांगेन, स्नंगपो	त्रायमाण भेद	*Gentiana elgida.* *Gentiana detonasa.*	पंचांग	हिमालय में 3000-4000 मी. की ऊँचाई तक	आमची पुष्प एवं पंचांग का उपयोग रक्त विकार एवं ज्वरहर योगों में करते हैं।
14.	तिक्ता, ग्यातिक	त्रायमाण के भेद	*Gentiana moorcroftiana.*	पंचांग	जम्मू-कश्मीर, उत्तराखण्ड, लद्दाख क्षेत्र में	आमची पंचांग को ज्वरघ्न, कासघ्न के रूप में प्रयोग करते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
			Gentiana humilis.		विशेष रूप से सुलभ है।	हैं।
15.	चम्पा	खुब्वाजी	*Malva rotundifolia.*	–	भारत के मैदानी भागों में	आमची चिकित्सा में प्रयोग करते है।
16.	पलेका	–	–	कांड, पुष्प एवं मूल	आमचिओं का कहना है कि यह वनस्पति रिवालसर हिमाचल प्रदेश के उष्ण भागों में सुलभ है।	बीज एवं पुष्पों का चिकित्सा में उपयोगी करते हैं।
17.	सरमेतोक	कारवेल्लक पुष्प	*Momordica charantia.*	पुष्प, बीज	लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची शिरशूल एवं उदर-विकार में प्रयोग करते हैं।
18.	ग्येंसिंग	श्वेतमूशली	*Chlorophytum arundinaceum.*	मूल	मैदानी उष्ण भागों में मिलता है।	बल्य, बाजीकर के रूप में प्रयोग करते हैं।
19.	चावा	मूशली भेद	-	पञ्चांग	स्पष्ट नहीं है ।	स्थानिक आमची पंचांग का उपयोग करते हैं ।
20.	रांग्ये	शतावरी	*Asparaqus racemosus.*	मूल	मैदानी एवं निचले भागों में सुलभ है।	स्थानिक आमची चिकित्सा में.मूल का उपयोग करते हैं।
21.	गस्क्या, (ग्यचा)	कपूरकचरी	*Hedychium spicatum.*	मूल	हिमालय प्रदेश के बाह्य भागों में	उदरविकार, वातविकार, कास-श्वास में उपयोग।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
22.	लेटिस	गुडूची, गिलोय	*Tinospora cordifolia.*	काण्ड, सत्व	सम्पूर्ण भारत में इसकी बेल पायी जाती हैं।	त्वक् विकार, प्रमेह, ज्वरघ्न एवं रसायन के रूप में प्रयोग करते हैं।
23.	कुचीला	कपीलू, कुचला	*Strchnos nuxvomica.*	बीज	मैदानी उष्ण भागों में सुलभ है।	आमची चिकित्सा में बीजों का उपयोग करते हैं।
24.	वंगलक, वंगवोलग्पा	सालमपन्जा	*Orchis latifolia.*	मूलकन्द	हिमालय में 2,700-3,600 मी. की ऊँचाई तक सुलभ है।	बल्य, बाजीकर के रूप में उपयोग करते है।
25.	तली	प्रचलित तालीस पत्र	*Rhododendron anthopogon R. lepidotum.*	पत्र, पुष्प	हिमालय में 2,700-4,000 मी. ऊँचाई तक सुलभ है।	वातवेदनानाशक, श्वासघ्न, निन्द्राकर के रूप में प्रयोग करते है।
26.	सिंगर	मधुयष्ठी, मुलेठी	*Glycirrhiza glabra.*	मूल	मैदानी भागों से क्रय किया जाता है।	स्थानिक आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं ।
27.	शुक्पा, शुगछर	हाउवेर	*Juniperus cumminus.*	फल	हिमालय में 3,000 से 4,000 मी. की ऊँचाई तक पाया जाता है।	स्थानिक आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं ।
28.	ड्रसुम, अरूरा	हरीतकी, हरड़	*Terminalia chebula.*	फल	हिमालय के निचले भागों में तथा उष्ण प्रदेशों में ।	उदरविकार में विशेष उपयोगी
29.	पेरूरा	विभीतक, बहेड़ा	*Terminalia balarica.*	फल	मैदानी प्रदेशों के उष्ण भागों में	उदरविकार में चक्षुष्य के रूप में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
30.	स्क्वीरूरा	आमलकी, आँवला	*Embelica officinal.*	फल	मैदानी प्रदेशों के उष्ण भागों में	पित्त एवं उदरविकारों में उपयोगी
31.	कब्रा, आलमोसे	व्याघ्रनखी	*Caparis spionosa.*	मूल, फल, पत्र	लद्दाख क्षेत्र के पठारी भागों में 2,700 मी. से 3,800 मी. तक	आमची फल का उपयोग चिकित्सा में करते हैं।
32.	थंग्दुम कारपो	श्वेतधस्तूर, धतूरा	*Datura matel.*	बीज, पत्र	मैदानी प्रदेशों एवं पहाड़ी प्रदेशों के उष्ण भागों में पाया जाता है।	आमची बीजों का उपयोग चिकित्सा में करते हैं।
33.	मरूचे	पलाशबीज	*Butea monosperma.*	बीज	मैदानी प्रदेशों एवं पहाड़ी प्रदेशों के उष्ण भागों में	आमची बीजों का चिकित्सा में उपयोग करते हैं।
34.	लंगथंग	पारषीक यवानी, खुरसानी अजवाइन	*Hyoscyamus niger.*	बीज, मूल, पत्र	हिमालय में 2,700 मी. से 3,900 मी. ऊँचाई तक	कृमिघ्न, मादक के रूप में प्रयोग करते है।
35.	जती	जायफल	*Myristica fragrans.*	फलमज्जा, बीज	लंका, मलेशिया	स्थानिक आमची चिकित्सा में बीजों का उपयोग करते हैं।
36.	लिसी	लवंग, लौंग	*Syzygium aromaticum.*	पुष्प	केरल, मैसूर, कर्नाटक एवं विदेशों से आयातित।	आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं।
37.	सुक्समेल, शुक्पा	छोटी इलाइची	*Eleptaria cardamomum.*	बीज, फल	केरल, मैसूर, कर्नाटक आदि प्रदेशों में खेती होती है।	आमची कतिपय दीपन, पित्तशामक, कासहर योगों में प्रयोग करते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
38.	ककोला, लेन्जी	बड़ी इलाइची	*Amomum subulatum.*	बीज, फल	सिक्किम, भूटान में खेती की जाती है।	आमची कतिपय दीपन, पित्तशामक, कासहर योगों आदि में उपयोग करते हैं।
39.	चुकंग, चुकांग	वंशलोचन	*Bambusa bambos.*	वंशलोचन	बंगाल, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश के वनो में	आमची चिकित्सा में वल्य एवं धातुविकार के लिये प्रयोग
40.	करकुम, खचीछगम	कुंकुंम, केशर	*Crocus sativus.*	पुष्प पराग	जम्मू कश्मीर, पामपुर आदि क्षेत्रों में खेती की जाती है।	आमची वाजीकर, वल्य, वर्ण्य, दौर्गध्यहर आदि के रूप में प्रयोग करते है।
41.	पिपलिंग	पिप्पली	*Piper longum.*	फल, मूल	मैदानी प्रदेशों के छायादार स्थानों पर खेती की जाती है।	कतिपय औषधयोगो में दीपन-पाचन के रूप में प्रयोग
42.	फरील	काली मिर्च	*Piper nigrum.*	बीज	मैसूर, केरल, आंध्रप्रदेश आदि स्थानों में पाया जाता है।	आमची बीजों का दीपन, पाचन, शूलहरयोगों में प्रयोग करते हैं।
43.	सिंगडिंग	अर्जुन	*Terminalia arjuna.*	छाल	भारत के उष्ण भागों में पाया जाता है।	स्थानिक आमची हृदयरोग एवं रक्तशामक के रूप में चाय में छाल चूर्ण का उपयोग करते हैं।
44.	तुग्मेयोंग दुंग्मयूग	इन्द्रयव	*Holarrhena antidysenterica.*	बीज, छाल	भारत के उष्ण भागों में पाया जाता है।	आमची छाल एवं बीज का उपयोग अतिसार ग्रहणी, उदर रोगों में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
45.	तनरूक्	जयपाल	*Croton tiglium.*	बीज	दक्षिण कर्नाटक व मद्रास एवं विदेशों से आयातित।	आमची चिकित्सा में बीजों का विरेचन के लिए प्रयोग करते हैं।
46.	ग्यासकेक	लाक्षा	–	कृमिकीट	भारत के उष्ण भागों में पाया जाता है।	बाह्य प्रयोग हेतु तैलों में उपयोग करते हैं।
47.	चोत	मंजिष्ठा	*Rubia cordifolia.*	मूल	उत्तरी हिमालय, नेपाल में पाया जाता है।	मूल का उपयोग रक्तविकार, कण्डू एवं त्वक् रोगों में करते
48.	डिमोक	रतनजोत	*Onosma echioides.*	मूल	उत्तरी हिमालय, कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	स्थानिक आमची कतिपय रक्तशोधक योगों में इसका उपयोग करते हैं। अग्निदग्ध होने में बाह्य प्रयोग करते हैं।
49.	नागकेशर	शाल्मलीपुष्प	*Salmalia malabarica.*	पुष्प	भारत के उष्ण प्रांतों में पाया जाता है।	आमची सेमल के पुष्प को नागकेशर कहते हैं तथा रक्तशामक, शीत गुणों वाला मानते हैं।
50.	सींगच्छा	दालचीनी	*Cinnamomum zeylanicum.*	पत्र, छाल	उत्तराखण्ड़, हिमाचल प्रदेश, एवं जम्मू-कश्मीर राज्य में पाया जाता है।	छाल का उपयोग दीपन, कासघ्न, ज्वरघ्न एवं उदरविकार में करते है।
51.	सीन्डू	अनारदाना	*Punica granatum.*	बीज, छाल	उत्तराखण्ड़, हिमाचल प्रदेश,	बीज एवं छाल का उपयोग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
				फलमज्जा	एवं जम्मू-कश्मीर में पाया जाता है।	आमची चिकित्सा में करते हैं।
52.	अरून-चूंग	वालहरीतकी	*Terminalia chebula.*	कच्चे फल	भारत के मैदानी भागों में सर्वत्र सुलभ है।	बालहरीतकी का आमची चिकित्सा में उपयोग करते है।
53.	चूमचा	चूक्री	*Rumex acetosa.*	पञ्चांग	उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, में पाया जाता है।	लद्दाखी आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं।
54.	जेमा	गोक्षुर	*Tribulus terrestris.*	बीज, पंचांग	भारत के मैदानी भागों में सर्वत्र, लद्दाख में भी दस हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है।	बीजों का उपयोग आमची मूत्रल एवं मूत्रवह संस्थान के विकारों में करते हैं।
55.	बिल्वमन्झरा	बिल्वमज्जा, बेल	*Aegle marmelos.*	फलमज्जा, छाल	भारत में सर्वत्र पाया जाता है।	फलमज्जा का उपयोग आमची अतिसार, ग्रहणी आदि रोगों में करते हैं।
56.	खुरच्या, लाचू	रेवन्दचीनी	*Rheum emodi.* *Rheum nobile*	मूल, पत्र	उत्तराखण्ड़, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में विशेष पाया जाता है।	आमची मूल का उपयोग चिकित्सा में एवं नवीन पत्तियों का शाक बना कर खाते है।
57.	ट्रोंका	भुर्जपत्र	*Betula utilis.*	छाल	उत्तराखण्ड़, जम्मूकश्मीर, लद्दाख आदि क्षेत्रों में	तन्त्र-मन्त्र में एवं चिकित्सा में भूर्ज पत्र का उपयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
58.	एरमा	तेजबल, तुम्बरू	*Zanthoxylum alatum.* *Z. acanthopodium.*	बीज, छाल	उत्तराखण्ड़, हिमाचल प्रदेश, जम्मूकश्मीर, लद्दाख में	आमची बीज का उपयोग उदर-शूल, दन्तकृमि में करते हैं।
59.	तौंका	आरग्वध, अमलतास	*Cassia fistula.*	फलमज्जा, पुष्प	भारत के मैदानी भागों में सर्वत्र सुलभ है।	स्थानिक आमची फलगूदा का उपयोग उदररोगों में करते है।
60.	स्तरगा	अक्षोड, अखरोट	*Guglans regia.*	मूलछाल, गिरी	उत्तराखंड, जम्मूकश्मीर, लद्दाख क्षेत्र में सुलभ है।	फलगिरी का उपयोग आमची बल्य एवं वृंहण में करते हैं।
61.	टिग्टिकमो	हिरनखुरी	*Convolvulus arensis.*	पंचांग	उत्तराखंड, जम्मूकश्मीर, लद्दाख क्षेत्र में सुलभ है।	पंचांग का उपयोग आमची सर्वांगवेदना में करते हैं ।
62.	छरूग्नुकमा, चरकनुग्मा	–	स्पष्ट नहीं है।		यह वनस्पति लद्दाख क्षेत्र में पायी जाती है।	आमची स्थानिक चिकित्सा में ज्वरनाशक एवं कासहर योगों में प्रयोग करते हैं।
63.	चितांकां	–	–	पंचांग	यह वनस्पति लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है।	ज्वरघ्न एवं वातवेदना में क्वाथ का प्रयोग करते है।
64.	चंग्, गमुक	शुण्ठी, सौंठ	*Zingiber officinale.*	मूल	देहरादून, चकराता, हिमाचल में इसकी खेती की जाती है।	मूलकन्द का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।
65.	गुन्द्रुम	किशमिश	*Vitis vinifera.*	फल	जम्मू-कश्मीर में इसकी खेती की जाती है।	आमची वल्य, वृंहण, रसायन के रूप में प्रयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
66.	बटू	अश्वगंधा, असगंध	*Withania somnifera.*	मूल	भारत के मैदानी भागों में सर्वत्र सुलभ हैं।	आमची चिकित्सा में मूल का वल्य, वातवेदना एवं रसायन योगों में प्रयोग किया जाता है।
67.	कुबू	पूग, सुपारी	*Areca catechu.*	फल	आसाम, कर्नाटक, मैसूर, आंध्र आदि प्रदेशों में पाया जाता है।	आमची यकृतरोग की चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।
68.	सिरफुरनु	कोशातकीबीज	*Luffa acutangula.*	फल, बीज	मैदानी भागों में इसकी खेती की जाती है।	आमची मधुमेह, विषमज्वर, कास में प्रयोग करते हैं।
69.	चेठिस रिस कुसमा	चठी	*Cremanthodium arnicoides.*	पुष्प, मूल	लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची इसके पुष्पों का उपयोग रक्तविकार, कुष्ठ एवं ज्वरहर योगों में करते हैं।
70.	सदनक,	रूदन्ती	*Astragalus condolenus.* *Astragalus munori*	मूल, पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में 5 किस्में पायी जाती है।	आमची मूल एवं पंचांग का फुफ्फुस विकार में उपयोग करते हैं।
71.	चारगोत्पोस, लदार		*Delphinium brunonianum.* *Delphinium cashmirianum.*	पुष्प	उत्तराखण्ड, हिमाचल, जम्मूकश्मीर, लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची पुष्पों का प्रयोग ज्वरहर एवं कासहर योगों में करते हैं।
72.	स्कोचे	–	*Allium augiculatum.*	पंचांग	लद्दाख के करगिल, द्रास, साँकू	आमची दीपन, पाचन में पंचांग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
			Allium tuberosum.		घाटी में पाया जाता है।	का प्रयोग करते हैं।
73.	गोग्पा	लशुन	*Allium sativum.*	मूल, पत्र	भारत के सभी भागों में खेती की जाती है।	आमची मूल का प्रयोग वात-वेदना, सन्धिवेदना में करते है।
74.	कपिचूंग	सुरन्जान भेद	*Tulipa stellata.*	मूल	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची कफघ्न, ज्वरघ्न योगों में मूल का उपयोग करते हैं।
75.	लुगरू-कारपो, लुगरू-मारपो		*Pedicularis longipholora. P.oliveriana.*	पंचांग, पुष्प	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता हैं।	आमची पुष्पों का उपयोग उदरविकार, स्त्रीरोगों में करते हैं।
76.	लोलाफुत, अजेमो	यवानी, अजवाईन	*Trachyspermum ammi.*	बीज	भारत के उष्ण भागों में खेती की जाती है।	आमची बीजों का उपयोग उदरशूल एवं दीपन-पाचन में करते हैं।
77.	देवदारू	देवदारू	*Cedrus deodara.*	काष्ठसार	उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर में इसके वृक्ष स्वयंजात पाये जाते है।	आमची वातवेदना, सन्धिवेदना में काष्ठ तैल का प्रयोग
78.	वौंगमर	निर्विषी	*Aconitum palmatum.*	मूल	दार्जिलिंग, सिक्किम, भुटान में पाया जाता है।	निर्विषी के नाम से मूल का उपयोग ज्वरघ्न के रूप में
79.	जिन्बा	श्रृंगीविष	*Aconitum naviculare.*	मूलकन्द	जम्मू-कश्मीर, उत्तराखण्ड,	आमची मूल का उपयोग ज्वरघ्न

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
					लद्दाख में पाया जाता है।	एवं वेदनाशामक के रूप में करते हैं.।
80.	चैन्तुक, बुआंनगपो	वत्सनाभ	*Aconitum balfourii.*	मूल	उत्तरी हिमालय, गढ़वाल, कुमायुं, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची शोधित मूल कन्दों का उपयोग कतिपय औषध योगों में ज्वरघ्न एवं वेदनाशामक के रूप में करते हैं।
81.	पौंकर, भौं	अतिविषा, अतीस	*Aconitum heterophyllum.*	मूल	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाई जाती है।	मूलकन्दों का उपयोग अतिसार, अर्श एवं बालरोगों में करते हैं।
82.	थंगदुंमकारपो	श्वेतधस्तूर	*Datura metal.*	बीज, पत्र, मूल	भारत के मैदानी भागों से लेकर हिमालय की निचली घाटियों में पाया जाता है।	लद्दाखी आमची बीजों का उपयोग श्वास, कास में करते हैं।
83.	गोग्थुक्	–	स्पष्ट नहीं	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची चिकित्सा में कतिपय औषध योगों के साथ उदर-विकार में प्रयोग करते हैं।
84.	टोंगठा	आमाहरिद्रा	*Curcuma amada.*	मूलकन्द	भारत के मैदानी भागों में पाया जाता है।	आमची बाह्य गुमचोट में उपयोग करते हैं।
85.	युगवा, ग्यासिर	हरिद्रा	*Curcuma longa.*	मूल	भारत के मैदानी भागों में खेती की जाती है।	आमची मूल का रक्तविकार, व्रण, क्षत में प्रयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
86.	सेंगढुंम	गुड़मार	*Gymnema sylvestre.*	पत्र	भारत के मैदानी भागों में सर्वत्र सुलभ हैं।	स्थानिक आमची रंग बनाने के काम में पत्र स्वरस का उपयोग करते हैं तथा प्रमेहहर योगों में पत्रचूर्ण का प्रयोग करते
87.	निरमा, चिटांका,	लाल मिर्च	*Capsicum annum.*	बीज, फल	भारत के मैदानी भागों में एवं हिमालय की निचली घाटियों में	मशालों में प्रयोग करते हैं।
88.	लांगटंन	पागल झाड़	*Physochlaina praealta.*	पत्र, बीज	लद्दाख और लाहुल स्पीति में मिलता है।	आमची इसे विषैला मानते हैं। पत्र एवं मूल में हायोसायमस नामक तत्व पाया जाता है।
89.	स्तपसिंग	–	स्पष्ट नहीं है ।	पंचांग	लद्दाख में पाया जाता है।	आमची पञ्चांग का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।
90.	पुशिलचे	कतृण,सुगन्धि मूल-तृण	*Cymbopogon jwarancusa.*	मूल, पत्र	हिमालय की निचली उष्ण घाटियों में पाया जाता है।	मूल एवं पत्र का उपयोग आमची मूत्रल के रूप में करते हैं।
91.	जे(रूता)	कुष्ठ, कूठ	*Saussurea lappa.*	मूल	हिमाचल, जम्मू-कश्मीर एवं उत्तराखंड में खेती की जाती है	आमची मूल का उपयोग श्वास, कास में विशेष रूप से करते हैं। हृदय विकार में भी प्रयोग करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
92.	पांगची	स्थलपद्म	*Saussurea bracteata.*	पंचांग	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में सुलभ है।	आमची पंचाग एवं पुष्पों का उपयोग मानसिक रोगों में करते हैं।
93.	स्पांगचीतवो	ब्रह्मकमल	*Saussurea ovolata.*	पंचांग	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	पुष्पों का उपयोग मानसिक विकारों एवं भूतबाधा हर के रूप में प्रयोग करते हैं।
94.	स्पांग्ची	ब्रह्मकमल	*Saussurea jacea.* *Saussurea stoliczkae.*	पुष्प	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	मानसिक विकार एवं शिर:शूल में पुष्पों के चूर्ण का प्रयोग करते है।
95.	धुलिपांग, भेड़गन्धा	ब्रह्मकमल	*Saussurea gnaphalodes.* *Saussurea gossypiphora.*	पुष्प	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची मानसिक विकार में पुष्पों का उपयोग करते है।
96.	मानू	पुष्करमूल	*Inula racemosa.*	मूल	जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख में खेती की जाती है।	हृदयविकार, श्वास एवं आमवात में प्रयोग करते हैं।
97.	तौंगजील		स्पष्ठ नहीं है ।	पंचांग	लद्दाख में पाया जाता है।	आमची पञ्चांग का उपयोग उदरविकार में करते हैं।
98.	पालू(धूप)	हाऊबेर	*Juniperus recurva.* *J. communis.*	पञ्चांग, फल	लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची पंचांग एवं फलों का प्रयोग उदरविकार में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
99.	सोनमपस्या	–	स्पष्ट नहीं है ।	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	स्थानिक आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं।
100.	खुरचोत, खरसंग	दुग्धफेनी	*Taraxacum officinale.* *Taraxacum tibetium.*	मूल, पंचांग	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची पंचांग का उपयोग रक्तविकार एवं फोड़े-फुन्सी में चूर्ण एवं क्वाथ के रूप में करते हैं।
101.	रम्बु	कुक्कुटी	*Polygonum offine.*	मूल	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	मूल का प्रयोग रक्त विकार में करते हैं।
102.	स्कोचे, कोचे	पहाड़ी लशुन	*Allium tuberosum.* *Allium balandum.*	पंचांग	उत्तराखंड, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में।	शाक के रूप में प्रयोग करते हैं।
103.	युम्बोक	भग्नसन्धानकरी	*Ulmus parvifolia.*	छाल	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	अस्थिभग्न एवं गुमचोट में छाल का लेप व प्लास्टर करते हैं।
104.	उम्बु,उमरूक		*Myricaria eleganus.*	छाल	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख राज्य में पाया जाता है।	आमची चिकित्सा में उपयोग करते है।
105.	स्पोंस्कर	राल, डामर	a) *Vateria indica.* b) *Dipterocarpus undus.*	निर्यास	आसाम, बंगाल, उड़ीसा, म.प्र. में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।	निर्यास का आमची चिकित्सा में प्रयोग।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
106.	हौंगलैंग, लाचूंग	कुटकी	*Picrorhiza kurroa.*	मूल, कांड	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	मूल काण्ड का यकृत विकार, उदर विकार आदि रोगों पर प्रयोग करते हैं।
107.	छैरूंगमुन	कलिहारू	*Meconopsis aculeata. M. napaulensis.*	पंचांग, पुष्प बीज	लद्दाख क्षेत्र में शुरू घाटी में पाया जाता है।	आमची हृदय विकार में बीज एवं पुष्पों का प्रयोग करते हैं।
108.	जिमथिक	–	–	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति पाई जाती है।	आमची अपनी चिकित्सा में में प्रयोग करते हैं।
100.	डियांकू, ड़यांकू	दयाकुंज्जी	*Nepeta longibracteata.*	पंचांग	लद्दाख में पाया जाता है।	आमची अपनी चिकित्सा में कासघ्न हेतु प्रयोग करते हैं।
110.	आवा	–	स्पष्ट नहीं है।	पंचांग	यह लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है।	आचमी चिकित्सा में कासहर एवं रक्तशोधक के रूप में प्रयोग करते हैं।
111.	छेफट	सोमकल्प	*Ephedra gerardiana.*		उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची पंचाग का प्रयोग कास, श्वास में करते हैं।
112.	छेलदुम, छोटा छेफट	–	*Ephedra saxatilis.*	पंचांग	उत्तराखंड एवं लद्दाख में पाया जाता है।	पंचांग का प्रयोग कास-श्वास में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
113.	खन्पा, खम्बा	–	स्पष्ट नहीं है।	मूल	यह लद्दाख में पाया जाता है	आमचीं चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।
114.	बुरनक	अफसन्तीन, कीटमारी	*Artemisia maritima.* *Artemisia absinthium.*	पंचांग	इसकी कई किस्में लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है।	आमची कृमिध्न के रूप में सत्व एवं को पुष्पों का प्रयोग करते हैं।
115.	रवम्वा, रवामचु यांगछन		*Artemisia sieversiana.* *Artemisia moorcrofitiana.* *Artemisia strica.*	पुष्प, पत्र	इसकी कई किस्में लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है।	आमची इनका प्रयोग कृमिध्न एवं ज्वरघ्न योगों में करते हैं। इन किस्मों में सेन्टोनीन पाया जाता है।
116.	पशाक		*Centaurea depressa.*	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में यह वनस्पति विशेष रूप से पाई जाती है।	आमची विषमज्वर की चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।
117.	पर्पत		*Arabis tibitica.*	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में विशेष रूप से पाई जाती है।	आमची चिकित्सा में विशेष महत्व का पौधा है।
118.	घुमाची	–	*Nepeta* sp.	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में विशेष रूप से पाई जाती है।	आमची चिकित्सा में विशेष रूप से कासघ्न रूप में प्रयोग करते
119.	रेस्कुन		स्पष्ट नहीं है।	पंचांग	लद्दाख में विशेष रूप से पाई जाती है।	आमची चिकित्सा में प्रयुक्त होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
120.	डितासांजीन	-	स्पष्ट नहीं है।	कांड, मूल	उत्तराखंड, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख आदि क्षेत्रों में पाई जाती है।	आमची पंचांग का उपयोग कास-श्वास में करते हैं।
121.	लांगटन	-	*Physochlaina praealata.*	बीज, मूल पत्र	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख आदि क्षेत्रों में पाई जाती है ।	आमची तीव्र विष मानते हैं। इसके खाने से मवेशी पागल हो जाते हैं।
122.	चिछर, चिछिरमो	-	स्पष्ट नहीं है।	पंचांग	उत्तराखंड, हिमाचल, जम्मू-लद्दाख, जम्मू-कश्मीर आदि क्षेत्रों में।	पुष्पों का उपयोग आमची फुफ्फुस विकार में करते हैं।
123.	सेगौत, स्तरगा,	सेवती, गुलाब	*Rosa webbiana.* *Rosa foetida.*	पुष्प	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची पुष्पों का उपयोग सारक एवं पित्तशामक के रूप में करते हैं।
124.	न्यूं	वन्यवास्तुक	*Chenopodium botris.*	पंचांग	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख आदि में पाई जाती है।	पंचांग क्वाथ का प्रयोग चिकित्सा में करते हैं।
125.	इमोगं	-	*Clematis orientalis.*	पंचांग	उत्तराखंड, लद्दाख, जम्मू-कश्मीर आदि क्षेत्रों में पाया जाता है।	आमची वाह्यशोथ में इसके क्वाथ से सेक करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
126.	जिपची	–	*Lamium amplexicause.*	पंचांग	उत्तराखंड, लद्दाख, जम्मू-कश्मीर आदि में मिलता है।	आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं।
127.	तटीक	समाकदाना	*Rhus parviflora.*	बीज	हिमालय की उष्ण घाटियों में सर्वत्र सुलभ है।	आमची बीजों का उपयोग दीपन, अरोचक में करते हैं
128.	सोमाराजा	लताकस्तूरी	*Hibiscus abelmoschus.*	बीज़	भारत के मैदानी भागों में इसकी खेती की जाती है।	आमची बीजों का उपयोग दीपन, शूलहर, उदररोगों में करते हैं।
129.	स्वितांग	वचा	*Acorus calamus.*	मूल	उत्तराखण्ड क्षेत्र में पाया जाता है।	आमची मूल का प्रयोग चिकित्सा में करते हैं।
130.	तरबू, खंन्टा	आमील	*Hippophae salicifolia.*	फल, छाल	उत्तराखण्ड, लद्दाख, जम्मू-कश्मीर राज्यों में इसका वृक्ष मिलता है।	फलों के घनसत्व का प्रयोग आमची उदर विकारों में दीपन पाचन के रूप में करते हैं।
131.	थरम, नरम, रम्बु	जंगली ईसबगोल	*Plantago major.* *Plantago himalica.*	बीज	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख क्षेत्र में विशेष रूप से सुलभ है।	आमची बीजों का प्रयोग पित्तविकार में करते है।
132.	जंगची-नगपो	-	*Chenopodum murale.*	पंचांग	जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख क्षेत्र में सुलभ है।	आमची पंचांग का उपयोग उदरकृमि में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
133.	चांगतिक,	–	*Lactuca talarica.*	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में विशेष रूप से सुलभ है।	आमची चिकित्सा में इसका उपयोग किया जाता है।
	जंगतिक	दुधेल	*Lactuca scariola.*	पुष्प	लद्दाख क्षेत्र में विशेष रूप से सुलभ है।	यकृत, उदर एवं रक्तशोधन में करते हैं।
134.	कोसगिंत	काला जीरा	*Carum carvi.*	बीज	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में विशेष रूप से पाई जाती है।	आमची चिकित्सा में बीजों का दीपन, पाचन एवं मशालों में प्रयोग करते हैं।
135.	चेछा	कण्डीर भेद	*Ranunculus hirtellus.*	पंचांग	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख क्षेत्र में सुलभ है।	आमची पंचांग का प्रयोग यदा कदा करते हैं।
136.	क्यार-पा	–	स्पष्ट नहीं है।	पंचांग	लद्दाख क्षेत्र में सुलभ है	आमची चिकित्सा में उपयोग करते हैं।
137.	चाख्यू	पीतमूला	*Thalictrum alpinum.*	मूल	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, क्षेत्र में पाई जाती है।	आमची मूल का उपयोग ज्वरघ्न, यकृतविकार एवं उदरशूल में करते हैं।
138.	ट्रोमा, टोमा	–	स्पष्ट नहीं है।	मूल	जम्मू-कश्मीर लद्दाख में सुलभ है।	मूल का प्रयोग कतिपय औषधयोगो में करते हैं।
139.	अटूंग, सींगअटूंग खन्अटूंग		*Tragopogon dulius.*	पुष्प, मूल	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में सूलभ है।	आमची पुष्प एवं मूल क्वाथ एवं चूर्ण का प्रयोग पित्तविकार, आन्त्र विकृति एवं रक्तदोष में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
140.	चा-अटूंग,		*Tragopogon gracile.*	पुष्प, मूल	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में सुलभ है।	आमची पुष्प एवं मूल क्वाथ एवं चूर्ण का प्रयोग पित्तविकार, आन्त्र विकृति एवं रक्तदोष में
141.	पयश्चवा	–	स्पष्ट नहीं है।	पंचांग	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में सुलभ है।	आमची मूल का प्रयोग पित्तशामक में करते है।
142.	ठक्-ढुंक्पा	–	स्पष्ट नहीं है ।	बीज	लद्दाख क्षेत्र में सुलभ है।	आमची बीजों का प्रयोग रक्तविकार में करते है।
143.	छिरूक्, फोलोलिंग	पूदीना	*Mentha longifolia.*	बीज	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में सुलभ है।	उदरविकार एवं वमन होने पर पत्र स्वरस का प्रयोग करते हैं।
144.	दम्बुकारा	–	स्पष्ट नहीं है।	मूल	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख आदि क्षेत्र में सुलभ है।	आमची मूल का उपयोग मूत्रल के रूप में करते हैं।
145.	क़ीचे	उस्तखद्दूस	*Prunella vulgris.*	पंचांग	जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में सुलभ है।	पंचाग का आमची श्वास, कास में उपयोग करते हैं।
146.	ब्रो	कोटू	*Fagopyrum esculentum.*	बीज, पत्र	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	पत्र का शाक के रूप में एवं बीजों का उपयोग खाद्य सामग्री में होता है।
147.	सुकलो	मकोय	*Solanum nigrum.*	पंचांग, फल	भारत के मैदानी भागों से लेकर	आमची फलों का उपयोग यकृत

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
					हिमालय की निचली घाटियों में सर्वत्र सुलभ है।	एवं वृक्क विकार में करते है।
148.	चीचा	चीनाक	*Panicum miliaceum.*	बीज	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख आदि क्षेत्र में खेती की जाती है।	खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग करते हैं।
149.	छा	कंगु	*Panicum* sp.	बीज	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर आदि क्षेत्रों में खेती की	खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग करते है।
150.	टीस्तासांजीन	आकाशवल्ली	*Cuscuta clinensis.* *Cuscuta capitala.*	पंचांग	मैदानी भागो से लेकर हिमालय में ऊँचे भागो में पाया जाता है।	आमची वातविकारों में उपयोग करते हैं।
151.	लीकातुर	नागरमुस्तक, नागरमोथा	*Cyprus pangori.*	मूल	भारत के मैदानी भागों में पाया जाता है।	आमची मूलकाण्ड का प्रयोग अतिसार एवं उदरविकारों में करते है।
152.	स्मरंगा	पाषाणभेद	*Bergenia ligulata.*	मूलकाण्ड	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख क्षेत्र में पाया जाता है ।	वृक्क विकार एवं मूत्रल के रूप में प्रयोग करते हैं।
153.	थैकलदोर्जी	चक्रमर्द	*Cassia tora.*	बीज, पत्र	भारत के मैदानी भागों में सुलभ है।	बीजों का प्रयोग त्वक् विकारों में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
154.	चन्देनमारपो	रक्तचन्दन	*Pterocarpus santalinus.*	काष्ठसार	कर्नाटक, मद्रास, आंध्र में मिलता है।	आमची काष्ठसार का उपयोग रक्त-विकार एवं पित्तशामक के रूप में।
155.	चन्देनकारपो	श्वेतचन्दन	*Santalum album.*	काष्ठसार	कर्नाटक, मद्रास, आंध्र में मिलता है।	आचमी काष्ठसार का उपयोग पित्तशामक, मूत्रल हेतू प्रयोग करते हैं।
156.	बुसू	धान्यक, धनियां	*Coriandrum sativam.*	बीज	भारत के उष्ण भागों में सर्वत्र खेती की जाती हैं।	बीजों का प्रयोग पित्तशामक में करते हैं।
157.	गायों	सोया	*Anethum sowa.*	बीज	भारत के उष्ण भागों में सर्वत्र सुलभ है।	आमची बीजों का उपयोग दीपन, पाचन, ज्वरघ्न के रूप में करते हैं।
158.	तिक्ता	चिरायता	*Swertia purpurascens* *Swertia chirata.*	पंचांग	उत्तराखंड, हिमाचल, लद्दाख, जम्मू-कश्मीर में सुलभ हैं।	आमची पंचांग का रक्तविकार एवं ज्वरघ्न के रूप में प्रयोग करते हैं।
159.	रदांणी, द्रेमुकुसु	वन्यकर्कटी	*Podophyllum hexandrum.*	मूल, फल	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची पित्तविकार में प्रयोग करते हैं।
160.	थायों, कुम्भडीक	कृष्णजीरक	*Carum bulbocastanum.*	बीज	हिमाचल, जम्मू-कश्मीर लद्दाख में पाया जाता है।	बीजों का प्रयोग मशालों के रूप में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं. लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
161. तुंवरा	वन्ययवानी	*Thymus serpyllum.*	पंचांग	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची घनसत्व का प्रयोग छर्दि, उदरशूल आदि में करते हैं।
162. स्पित, हिस्पत	वन्यमेथी	*Medicago sativa.* *Medicago lupulina.*		उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची वातवेदना, प्रमेंह में उपयोग करते हैं।
163. प्रगोंस	छत्राभेद	*Prangos pabularis.*	बीज, मूल	लद्दाख क्षेत्र में मिलता है।	आमची बीजों का उपयोग उदरशूल एवं मूत्रल के रूप में करते है।
164. होटूंगप्रगोंस	छत्राभेद	स्पष्ट नहीं है ।	बीज, मूल	जम्मू-कश्मीर, एवं लद्दाख में पाया जाता है।	उपरोक्त
165. नस, ब्रो	यव	*Hordeum vulogare.*	बीज	उत्तराखण्ड, लद्दाख, जम्मू-कश्मीर, पाया जाता हैं।	सत्तू बनाकर खाते हैं। स्थानिक पेय छंग तैयार करते हैं।
166. मरखुखणी	रूदन्तीभेद	*Cecer soongoricum.*	पंचांग	उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	शाक के रूप में प्रयोग करते हैं।
167. संकुन	हींग, हिंगु	*Ferula jeschkeana.*	मूलनिर्यास	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	मूलनिर्यास का उपयोग चिकित्सा में करते हैं।
168. ड्रो	गन्धूम	*Triticum aestivus.*	बीज	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	खाद्य सामग्री में प्रयोग करते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
169.	टांगठा	–	स्पष्ट नहीं।	–	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	आमची चिकित्सा में प्रयोग करते है।
170.	थरनू	सातला (हिरवी)	*Euphorbia thomsonianum.*	पंचांग	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	चिकित्सा में आमची प्रयोग करते हैं।
171.	,,	दुधी	*Euphorbia tibetica.*	पंचाग	उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख में पाया जाता है।	पंचांग का सारक के रूप में आमची प्रयोग करते हैं।
172.	सुकलो	मकोय, काकमाची	*Solanum nigrum.*	पंचांग, फल	लद्दाख के लेह के आसपास	आमची फलो का उपयोग वृक्कविकार एवं यकृतविकृति में करते हैं।
173.	चीचा	चीनाक	*Panicum miliaceum.*	बीज	लद्दाख में खेती की जाती हैं।	खाद्य साम्रगी में उपयोग करते।
174.	गिंजडी, छकारा	–	*Chaerophyllum villosum.*	पत्र	लद्दाख में पाया जाता हैं।	लद्दाख एवं कश्मीर के ग्रामीण शाक के रूप में पत्रं एवं काण्ड का उपयोग करते है। शाक पाचक और रोचक होता है।
175.	कैंडूल, स्वूकारपो,	मलाण फूलों, छत्र्या,	*Heracleum candicans.* *Heracleum pinnatum.* *Heracleum thomsani.*	मूल, बीज	लद्दाख में पाया जाता हैं।	स्थानिक लोग बीजों का उपयोग मशालों एवं छंग (मद्य) के तैयार करने में करते है। मूल का उपयोग चिकित्सा में करते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
176.	जीरक	भेद	*Pimpinella diversifolia.*	बीज	लद्दाख में पाया जाता हैं।	स्थानिक ग्रामीण बीजों का उपयोग मशालों में करते है।
177.	जंगची कारपो, (ल.) रंगछे	खोरी	*Galium aparine.* *Galium pauciflorum.*	पंचांग	लद्दाख में पाया जाता हैं।	आमची पंचांग क्वाथ का उपयोग रक्तविकार एवं फौड़े-फुन्सियों पर करते है।
178.	कंडियारी,किम कंडेदार धारू बूटी	विषकंडार	*Morina coulteriana.* *Morina longifolia.*	मूल	लद्दाख में पाया जाता हैं।	स्थानिक आमची मूल का प्रयोग श्वास-कास में करते है। व्रण-शोथ पर व्रण को पकाने के लिये बाह्य लेप करते है।
179.	चिन्-चिन्-हा लोमारा		*Lonicera heterophylla.* *Lonicera spinosa.*	पुष्प, पंचांग	लद्दाख में पाया जाता हैं।	स्थानिक आमची पुष्पों का उपयोग क्वाथ विधि से उपदंश, सुजाक पर करते हैं। श्वास-कास पर कंडियारी मूल के साथ फूलों का चूर्ण देते है।
180.	मोपने-छओ	मुश्कवाला	*Valeriana dioica.* *Valeriana dubia.*	मूल, पंचांग	लद्दाख में पाया जाता हैं।	स्थानिक आमची मूल चूर्ण का उपयोग मानसिक विकार, शिर-शूल एवं निद्रानाश में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्य अंग	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
181.	लुग्मिक स्काल जंग मैन्तोक	–	*Aster tibeticus.* *Aster himalicus.*	पुष्प	लद्दाख में पाया जाता हैं।	पुष्प का प्रयोग स्थानिक आमची आन्त्र-विकृति, रक्तदोष एवं कफ रोग में करते हैं।
182.	सोलो-कारपो सोलो-नगपो	पलु	*Waldheimia tomentosa.* *Waldheimia glabra.*	पुष्प	लद्दाख में पाया जाता हैं।	तीव्र सुगन्धित धूपन साम्रगी में पंचांग का उपयोग करते है।
183.	खुरचोत सरपो	दुधलो	*Sondhus asper.* *Sondhus avvensis.*	मूल, पंचांग	लद्दाख में पाया जाता हैं।	आमची पंचांग का उपयोग रक्तविकार एवं उदर-रोगों में करते है।
184.	फुरनक, खामचु योरचोकमा		*Tanacetum gracile.* *Tanacetum tibeticum.* *Tanacetum tomentosum.*	पंचांग, पुष्प	लद्दाख में पाया जाता हैं।	पुष्प एवं पंचांग क्वाथ का प्रयोग स्थानिक आमची उदरशूल कृमि उदरशूल रोग एवं कर्णविकार में प्रयोग करते है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाख में उपलब्ध औषधोपयोगी खनिज

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
1.	ब्रागजून	शिलाजीत शिलारस	Black bitumen. (Asphaltum)	यह करगिल तहसील के हरिदास नामक स्थान की पहाड़ियो पर पाया जाता हैं।	आमची शुद्ध शिलाजीत का प्रयोग मूत्र जन्य विकार, वृक्करोग एवं उरोगत विकारो में करते है।
2.	मूंजी	गन्धक	Sulphur.	लद्दाख की पूगा घाटी में गन्धक काफी मात्रा में विद्यमान है।	आमची मूंजी का प्रयोग सन्धिशूल, त्वचा रोग एवं रक्तविकार में करते हैं।
3.	पला	हरताल	Yellow Aresenic.	यह लद्दाख के जन्सकार, लिनसिंड़ आदि स्थानों पर पाया जाता है।	आमची इसका प्रयोग त्वक् रोग एवं रक्त विकार में करते हैं।
4.	टींक्षा	सौवीराँञ्जन (काला सुरमा)	Antimoni Sulphate.	यह लद्दाख क्षेत्र के स्कुमा एवं भरका गांव की पहाड़ियों की खदानों में पाया जाता है।	यह नेत्र विकार एवं कण्डू, दाह में उपयोगी हैं।
5.	सरदो	स्वर्णमाक्षिक	Copper pyritas.	यह खनिज लिनसिंड़, रंगदून एवं जन्सकार की पहाड़ियों में पाया जाता है।	यह रक्ताल्पता, पाण्डुरोग, यकृत रोग, कुष्ठ, विषविकार, अर्श, शोथ एवं क्षय नाशक एवं बलप्रद है।
6.	सीसानग्पो	अभ्रक	Mica.	यह लद्दाख में परकाची, पनामिक, जन्सकार आदि स्थानों पर पाया जाता हैं।	आयुर्वेद के अनुसार अभ्रक भस्म बल-कारक, बुद्धिवर्धक, बाजीकर, रसायन है। यह कास, श्वास, पाण्डुरोग क्षय, जीर्ण ज्वर, परिणाम शूल, श्वेत प्रदर अर्श आदि रोग नाशक हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
7.	मेलचे	जहरमोहरा	Serpentine.	यह लद्दाख क्षेत्र के बुद्ध खरबू, नुब्रा-घाटी आदि स्थानों पर पाया जाता है	यह हरित, कृष्ण, पीले-भूरे रंग का धब्बेदार पत्थर हैं। इसकी पिष्ठी हृत्पौष्ठिक, वालातिसार, अपचन, वमन, अतिसार, दाह में उपयोगी है।
8.		स्फटिका	Quartaz.	लद्दाख में कई किस्म में पारदर्शक क्वार्टस पाये जाते हैं। इन्हे शैलमणी भी कहते है।	इसकी भस्म शीतवीर्य, रस मधुर एवं पित्तघ्न होता हैं।
9.		पीलुमणी (संगेयशव)	Quartaz.	यह भी लद्दाख में पाया जाता हैं।	श्वेत मरकत के समान कठोर पाषाण हैं। संगेयशव पिष्ठी का चिकित्सा में उपयोग होता है। यह हृदय एवं आयाश को बल देने वाला, मूत्र दाह एवं अश्मरी में लाभप्रद हैं।
10.	मंझीरा	वदराश्म (संगेयहुद)	Fossil.	यह लद्दाख में मरका, रिनम, जन्स-कार आदि स्थानों पर पाया जाता है।	आमची इस पाषाण की भस्म का प्रयोग उदरशूल, प्रदर, मूत्र एवं अर्श आदि विकारो में करते हैं।
11.	बनू	-	Fossil.	यह स्क्यु, मरका, खालसी, ससपोल, जन्सकार आदि स्थानों पर पाया जाता है।	यह गोश्रृंग सदृश्य फोसिल हैं। आमची इन पाषाणों की भस्म का प्रयोग परिणाम शूल उदरविकार एवं मूत्र विकारो में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्रम सं.	लद्दाखी/ तिब्बती नाम	संस्कृत/ हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	प्राप्ति स्थान	स्थानिक प्रयोग
12.	चोंजी	-	-	चोंजी की सभी किस्में जन्सकार, चुमाथाँग, तिमसागाम, वनका, नुब्रा, पानामिक स्थानों में उष्ण जल स्रोतों एवं झीलों के पास पायी जाती हैं।	यह विभिन्न आकार के, खनिजों एवं लवणो के यौगिक पाषाण है। आमची इनकी भस्म का उपयोग उदर रोगो :- अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी रोग, परिणाम शूल, अम्लापित्त, यकृत विकार में करते है।
13.	दोरासिंग	पहाड़ो की कण्ड़रा	-	लद्दाख के लेह रेंज में पाया जाता है।	यह भी एक किस्म का फासिल हैं। आमची इसकी भस्म का उपयोग एकांगवात (अधरंग) एवं आमवात में करते है।
14.	याप्पाखरा	-	Sodium Sulphate.	लद्दाख के कुरदुंग, छोकर आदि झीलों में यह लवण पाया जाता है।	आमची दैनिक चिकित्सा में इसका उपयोग करते है।
15.	पुल	खाने का सोड़ा	Sodium Bicarbonate.	यह लवण लद्दाख में पनामिक, पूगा-घाटी में गर्म पानी के झरने एवं झीलों के आस-पास पाया जाता है।	ग्रामीण लोग नमकीन चाय में इस लवण का उपयोग करते है। आमची अग्निमांद्य एवं पाचन सम्बंधी विकारों में प्रयोग करते है।
16.	सेरचे	-	-	यह लवण चुमाँथांग ब्लाक के समीप स्थित झील में पाया जाता है।	आमची इसका मूत्रल के रूप में प्रयोग करते है।

(टिप्पणी :- विस्तृत विवरण खनिज प्रकरण में देखे)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

औषधीय पादपो एवं खनिजों के तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत एवं वानस्पतिक नामों की तालिका

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
	अहिफेन कुल (PAPAVERACEAE)	
उत्पल, कलिहारु	***Meconopsis aculeata*** Royle.	**51**
छेरसुन	***Meconopsis horridula.***	**51**
छै-रूंग्-गुन्	***Papaver nudicaule*** Linn.	**52**
अहिफेन, अफीम	***Papaver somniferum*** Linn.	**52**
	पर्पटादिवर्ग (FUMARIACEAE)	
तौंगजील, ग्यातुंक्, भूत केशी	***Corydalis govaniana*** Wall.	**52**
	Corydalis boweri Hemsl.	**53**
योन् स्यूं-चिन्चिंग	***Corydalis chrysosphaera.***	**52**
	Corydalis tibetica Hook. f.	**53**
	Corydalis stricta Steph.	**53**
	Corydalis crassifolia Royle.	**53**
	Corydalis flabellata Edgew.	**53**
	Corydalis Cornuta Royle.	**53**
	सर्षपकुल (CRUCIFERAE)	
पर्पत	***Arabis tibetica*** Hook.f. & Thoms.	**53**
पित्तपापड़ा	***Fumaria indica.***	**53**
पर्पत	***Hypecom leptocarpum*** f.	**53**
सोलो	***Arabis recta*** Vall.	**54**
	Arabis auriculata DC.	**54**
ठक्-ठुक्पा	***Capsella thomsoni*** Hook. f.	**54**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
सोक्पा	***Capsella bursa-pastoris*** Linn.	**54**
च्यूल्-फुक्	***Malcolmia africana*** R.Br.	**55**
ब्रेका भेद	***Thlaspi alpestre*** Linn.	**55**
ब्रेका	***Thlaspi arvense*** Linn.	**55**
ठंग्-ठुक्-पा (तोदरी-भेद)	***Lepidium apetalum*** Willd.	**55**
स्गों-ठोग्-पा	***Erysimum odoratum*** Ehrh.	**55**
खूबकला भेद	***Sisymbrium mollissiumum.***	**55**
सर्षप भेद	***Brassica napus*** var. ***chinensis***	**55**
	वन्पशाकुल (VIOLACEAE)	
तिहा-तिहिंग	***Viola cinerea*** Boiss.	**55**
	Viola kunawarensis Royle.	**55**
वन्पशा	***Viola serpens*** Wall.	**55**
वन्पशा	***Viola odorata*** Linn.	**55**
	वरूणकुल (CAPPARIDACEAE)	
कब्रा	***Capparis spinosa*** Linn.	**56**
	वासन्ती कुल (HYPERICACEAE)	
च्या-स्यांग्, वांग-छु	***Hypericum perforatum*** Linn.	**56**
	CARYOPHYLLACEAE	
थैन्-यांग्-लू	***Silene himalayensis*** Me.	**57**
	Salene conoidea Linn.	**57**
	Salene persica Boiss.	**57**
	Salene vulgaris (Moench.) Garcke.	**57**
	Salene moorcroftiana Wall.	**57**
	Salene tenuis Willd.	**57**
रैल-चक्पा	***Stellaria decumbens*** Edgrw.	**57**
	Stellaria longissima Wall.	**57**
	Stellaria crispata Wall.	**57**
	Stellaria media Linn.	**57**
च-ओ.-टु-ओ	***Arenaria musciformis*** Wall.	**58**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
	Arenaria foliosa Royle.	58
	Arenaria holosteoides Edgew.	58
लुक्-सुक्	*Vaccaria pyramidata.*	58
	कार्पासकुल (MALVACEAE)	
चम्पा, सोची-लिंग्, खुब्बाजी	*Malva verticillata* Linn.	58
	Malva rercillata	58
	Malva rotundifolia Linn.	58
	लालजड़ीकुल (GERANIACEAE)	
मिक्-स्मान्, लालजड़ी	*Geranium nepalense* Sweet.	59
	Geranium pratense Linn.	59
	Geranium grandiflorum Edgew.	59
मिक्-स्मान्-छुरिंग	*Erodium stephanianum* Willd.	59
	Erodium tibetanum Edgew.	59
	विदारी कुल LEGUMINOSEAE (Fabaceae)	
सतकर, रूद्रवन्ती	*Astragalus munroi* Benth.	59
चिन्-सन्-कारपो	*Astragalus tibetanus* Benth.	59
चिन्-सन्-कांग्चवा	*Astragalus membranacus* Beg.	59
सातकर	*Astragalus yunnaanensis* Fr.	59
सतसिर	*Astragalus floridus* Benth.	59
	Astragalus candolleanus Royle.	59
रूदन्ती	*Cicer songaricum* Staph.	60
हिस्पित्, अश्वबला	*Medicago sativa* Linn.	61
	Medicago falcata Linn.	61
	Medicago lupulina Linn.	61
जरद्तकारपो	*Thermopsis alpina.*	61
	Thermopsis inflata Cambess.	62
जरद्त-ग्याजबुक्	*Thermopsis barbata.*	62
स्कीवा	*Sophora moorcroftiana* Benth.	62
ख-ऊ-सिन	*Sophora flavescans* Ait.	62
थलका-दुरजे-यन्पा	*Piptanthus concolor* Har.	62

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
ड्रामासिंग	***Caragana franchetiana.***	**62**
तस्क्या, अजश्रृंगी	***Caragana cuneata*** Baker.	**62-76**
धिस्तुंग-जामोंसिंग	***Caragana tibetica*** Hane.	**62**
मेथिका-भेद	***Trigonella emodi*** Benth.	**62**
	Lotus carniculatus Linn.	**62**
	तरूणी-कुल (**ROSACEAE**)	
सेवे-मेतुक्-कारपो	***Rosa webbiana*** Wall.	**62**
ग्यासल	***Rosa chinensis*** Jaq. syn. ***R. indica.***	**62**
सेवा	***Rosa sericea*** Lindl.	**63**
रौंगसल	***Rosa macrophylla*** Lindl.	**63**
संगील	***Rosa eglanteria*** Linn.	**63**
स्पे-लोमा-घु-ओं	***Chaenomeles lagenaria.***	**63**
दुम्बु-ठक्-चुत्	***Agrimonia pilosa*** Linn.	**63**
	Agrimonia eupatoria Linn.	**63**
सिंगे-जिरपा	***Potentilla fulgens.***	**63**
थुओं-यूंची	***Cotonester acutifolium.***	**63**
टंकपा-सिंग	***Phyrus pashia.***	**63**
ए-खम्बु, खुमानी	***Prunus mira*** Linn.	**63**
टोमा	***Potentilla anserina.***	**63**
कण्टेकारी	***Rubus ellipticus.***	**63**
	Rubus saxalilis Linn.	**63**
	पाषाण भेद कुल (**SAXIFRAGACEAE**)	
सुमंतिक	***Saxifraga sibirica*** Linn.	**63**
	Saxifraga pasumensi Marg.	**63**
सेरग्युत्-छेरमा, मैन्तोक्	***Ribes emodens*** Reh.	**64**
असकुटर	***Ribes orientale*** Desf.	**64**
पाषाण भेद	***Bergenia stracheyi*** Engl.	**64**
पाषाण भेद	***Saxifraga ligulata*** Wall.	**64**
	Parnassia ovata Leded.	**64**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
	CRASSULACEAE	
लुग्मिक्, सोलोकारपो	***Sedum tibeticum stracheyi*** Hook.f.	65
सोलो-मारपो	***Sedum milticaule*** Wall.	65
	Sedum asiaticum Spreng.	65
	Sedum trifidum Wall.	65
	कोषातकी कुल (CUCURBITACEAE)	
सेरमे-मैन्तोक, करैला	***Momordica charantia*** Linn.	65
	ONAGRACEAE	
जरपन-घुरची	***Epilobium angustifolium*** Linn.	65
	CAMPANULACEAE	
जर-दुत्-दोर्जे	***Codonopsis nervosa.***	66
	Codonopsis ovata Benth.	66
	Campanula latifolia Linn.	66
	वत्सनाभकुल (RANUNCULACEAE)	
बुआँ, पौंकर, अतिविषा, अतीस	***Aconitum heterophyllum*** Wall.	66
पौंगभर	***Aconitum violaceum*** Jacq.	66
चैन्तुक, बुआँ गनपो वत्सनाभ	***Aconitum balfourii*** Stapf.	67
	Aconitum napellus Linn.	67
	Aconitum naviculare Stapf.	67
हाला	***Aconitum rotunlifolium*** Kar.	67
श्रृंगीविषं	***Aconitum chasmanthum*** Staph.	67
चारव्यू, पीतमूला	***Thalictrum alpinum*** Linn.	69
	Thalictrum minus Linn.	69
स्पोंस्पीन	***Thalictrum rutaefolium*** Hook.f.	69
ममीरा	***Thalictrum foliolasum*** DC.	69
इमोंग, ठओ कारपो	***Clematis montana*** Buch-Ham.	69
	Clematis arientalis Linn.	69
चारगोस्पास, लदार मैन्तोक	***Delphinum brunonianum*** Royle.	70
चारगोस्पोस	***Delphinium cashmirianum*** Royle.	70

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
जदवार भेद	***Delphinium altissimum*** Wall.	**70**
र्निविषी	***Delphinium denudatum*** Wall.	**70**
पद्मा-सरपो, ममेक, उदसलीव	***Paeonia emodi*** Wall.	**70**
	Paeonia lutea Fr.	**70**
चेच्छा	***Ranunculus hirtellus*** Royle.	**71**
काण्डीरभेद	***Ranunculus affinis*** R.Br.	**71**
	Ranunculus pulchellus C.A.Mey.	**71**
स्गों-सुर-पका	***Anemone rivularis*** Buch-Ham.	**71**
शुक्का	***Anemone rupicola*** Combess.	**71**
ग्यारूची-तुगलो	***Cimicifuga foetida*** Linn.	**71**
ममीरी भेद	***Caltha palustris*** Linn.	**71**
	दारुहरिद्राकुल (BERBERIDACEAE)	
किरसिंग, खिचरमा, दारुहरिद्रा	***Berberis vulgaris*** Linn.	**71**
	Berberis ulicina Hook. f. & Thoms.	**72**
दारूहरिद्रा	***Berberis aristata*** DC.	**72**
ड्रेमे-कुशु, वन्यकर्कटी	***Podophyllum hexandrum*** Royle.	**72**
	syn. ***P. emodi*** Wall. ex. Hook. f. Th.	**72**
	अपराजिताकुल (FABACEAE)	
तस्क्या, अजश्रृंगी	***Caragana cuneata*** Baker.	**76**
	शतपुष्पाकुल UMBELLIFERAE (Apiaceae)	
गायों, सोया, सतपुष्पी	***Anethum sowa*** Kurz.	**77**
कोसगिंत्, थायों, कालाजीरा	***Carum bulocastanum*** Koch.	**77**
	Bunium persicum.	**77**
कोसगिंत्, कुम्बुक, कृष्णजीरक	***Carum carvi*** Linn.	**78**
जीरा-सरपो	***Bupleurum chinense*** DC.	**79**
	Bupleurum gracilimum.	**79**
	Chaerophyllum reflexum.	**79**
कैंडूल, हिंगुभेद	***Ferula jaeschkeana*** Vatke.	**79**
होंटूंग-प्रंगोस	***Heracleum candicans*** Wall.	**79**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
मलाणफूलो	***Heracleum pinnatum*** C.B.Clarke.	**79**
उम्बो	***Heracleum thomsoni*** C.B.Clarke.	**79**
प्रगोंस	***Prangos pabularia*** Lindl.	**80**
बुसु, धनियाँ	***Coriandrum sativum*** Linn.	**80**
चवा, कठचोरा	***Angelica archangelica*** Linn.	**80**
चोरक	***Angelica glauca*** Edgw.	**81**
चांग्यो	***Peducedanum terelinthaceum.***	**81**
	Peducedanum hookeri.	**81**
बुसु-हांग	***Hydrocotyle nepalensis*** Hook.	**81**
जीरा-कारपो, देशीसौंफ	***Foeniculum vulgare*** Mill.	**81**
स्यात्-गोत्, औक्ष्यगन्धि	***Pleurospermum hookeri*** C.B. Clarke.	**81**
चवां-सुग्वा	***Changium smyrniodies*** Wellf.	**81**
जीरक-भेद	***Pimpinella saxifraga*** Linn.	**81**
	मञ्जिष्ठाकुल (RUBIACEAE)	
जांगची-कारपो	***Galium aparine***	**81**
	Galium vercum Linn.	**82**
	Galium bareale Linn.	**82**
	Galium pauciflorum Bunge.	**82**
चोत, मंजीठ	***Rubia cordifolia*** Linn.	**82**
	Rubia tibetica Hook.	**82**
चिन्-हिन्-हा	***Lonicera lanceolata.***	**83**
लौंग-छंग, चिन्-हा	***Lonicera heterophylla*** Decne.	**83**
	DIPSACEAE	
यांग-छिर-कारपो	***Morina coulteriana*** Royle.	**83**
यांग-छिर-लोमा-ठपा	***Morina betonicoides.***	**83**
	तगरकुल (VALERIANACEAE)	
कोंडा, तगर	***Valeriana walliichii*** DC.	**84**
	Valeriana diaica Linn.	**84**
तगर	***Valeriana hardiwickii*** Wall.	**84**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
	Valeriana stracheyi C.B. Clarke.	84
स्पांगपोस, जटामाँसी	*Nardostachys jatamansi* DC.	85
	भृंगराजकुल (COMPOSITAE)	
मानो, पुष्करमूल	*Inula racemosa* Hook. f.	85
	Inula rhizocephaloides C.B. Clarke.	85
	Inula barbata Wall.	85
पांगची-हर्वे, स्थलपद्म	*Saussurea bracteata* Decne.	85
स्पांग्चीतवो	*Saussurea glacialis.*	85
ब्रह्मकमल (स्पांग्ची)	*Saussurea obvallata.*	86
मैतोक्-कांग्था	*Saussurea tridactyta*	86
हेमा-मैन्तोक्-कांग्था	*Saussurea albescens* Hook.f.	86
कूठ	*Saussurea lappa* C.B. Clarke	86
बुरचे, बुरनक	*Artemisia maritima* Linn.	86
खंन्-धुंग-सरपो	*Artemisia siversiana* Willd.	86
खम्बा	*Artemisia parviflora* Buch-Ham.	86
यांक्-छंग्	*Artemisia stricta* Edgew.	86
नूरचे	*Artemisia moorcroftiana* Wall.	86
सीतावनी	*Artemisia scoparia* Waldst & Kit.	86
गंगातुलसी	*Artemisia sacrorum* Ledeb.	86
सेन्जुम, विरंज्जसिफ	*Achillea millefolium* Linn.	87
फुरनक, खनकर	*Tanacetum grocile* Hook.f. & Thoms.	87
खामचू	*Tanacetum tomentosum* DC.	88
थीर चोकमा	*Tanacetum tibeticum* Hook.f. & Thoms.	88
यांकी, याकिमों, आदित्यपर्णी	*Crepis racenifera.*	91
सैगों	*Crepis cremathoclium.*	92
ब्रह्मसुवर्चला	*Lactuca orientalis* Boiss.	92
रेसकुन	*Crepis depressa.*	92
चठी	*Cremanthodium decaisnei* C.B. Clarke.	92
खन्-अटूँग	*Tragopogon gracile.*	93

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
चा-अटूँग	***Tragopogon pratensis*** Linn.	**93**
लुगमिग् (हिमपुष्पा)	***Aster heterochaeta*** C.B. Clarke.	**93**
लुक्-युंग	***Aster himalicus*** Clarke.	**93**
खर-चोत	***Taraxacum officinale*** Weber.	**93**
खुर-मंग्	***Taraxacum tibeticum***	**93**
सोलो-कारपो	***Waldhemia tomentosa.***	**93**
सोलो-मारपो	***Waldhemia glabra.***	**93**
खुरचोत-सरपो	***Sonchus asper*** (L) Hill.	**93**
तबाड़ी-सान् (कड़वीबूटी)	***Ainsliaea latifolia*** D.Don.	**93**
ची-चुंक्	***Arctium lappa*** Linn.	**94**
ग्यांतुर	***Picris hieracioides.***	**94**
गन्दापाटा	***Ganaphalium affine.***	**94**
	Ganaphalium stewartii. C.B. Clarke.	**94**
चठीस-यन्पा	***Ixeris gracilis*** DC.	**94**
युगी-सींग-कारपो	***Senecio dianthus*** Franch.	**94**
गु-टुस-सरपो	***Senecio scandens*** Bach-Ham.	**94**
क्यूस-सांची	***Senecio chrysanthemoides*** DC.	**94**
लुग्-मिक्-नगपो	***Carpesium lipskyi*** Linn.	**94**
स्गों-ज्जा	***Cremanthodium oblongatum*** C.B. Clarke.	**94**
छिर-मेतोक्-छिवा	***Cirsium souliei*** C.B. Clarke.	**94**
मिंग्-चंग्-सरपो	***Pulicaria insigenis*** Gaertn.	**94**
जिन्-चन्-छओ	***Siegesbeckia pubescens.***	**94**
यांग-ठंग्-छओ	***Bidens pilosa*** Linn.	**94**
	Bidens tripartita Linn.	**94**
फलेन	***Eupatorium cannabinum*** Linn.	**94**
छिर-युंग, जांग छिर	***Carduus acanthoides*** Linn.	**94**
पशाक	***Centaurea depressa*** Bicb.	**96**
बशाक	***Dichroa febrifuga*** Lour (Saxifragaceae)	**96**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
	कुरूवककुल (ERICACEAE)	
तली, सुनपाती, तालीस	***Rhododendron anthopogon*** D.Don.	**97**
टामा, सुनपाती	***Rhododendron campanlatum*** D.Don.	**97**
स्तंग्-मां-लिंग, कुरुवक	***Rhododendron arboreum*** Sm.	**97**
	अतसी कुल (LINACEAE)	
जांगती, अलसी	***Linum usitatissimum*** Linn.	**98**
जंगली, अलसी	***Linum perenne*** Linn.	**98**
	निम्बुकुल (RUTACEAE)	
एरमा, टिम्बुरू	***Zanthoxylum tibetanum.***	**98**
तेजबल	***Zanthoxylum alatum*** Roxb.	**98**
	सूरणकुल (ARACEAE)	
लक्ष्मणा (विचारणीय)	***Remusatia vivipara*** Schott.	**101**
धोकुम-थायों, लक्ष्मणा (विचा)	***Aralia quinquelfolia* (Araliaceae)**	**101**
जिनसैंग	***Panxa pseudoginseng*** Wall. **(Araliaceae)**	**102**
	कीचे कुल (PRIMULACEAE)	
छुरकांग, कीचे	***Primula denticulata*** Capitata Hook.	**103**
स्यांग्-टिल-मारपो	***Primula elliptica*** Royle.	**103**
स्यांग्-टिल-सरपो	***Primula sibirica*** Jacq.	**103**
स्यांग्-तिक्-स्गुनपो	***Androsace ellitica*** Royle.	**103**
	रतनजोत कुल (BORAGINACEAE)	
डिमोक, रतनजोत	***Onosma bracteatum*** Wall.	**103**
	Onosma echioides Linn.	**103**
	Arnebia tibetana Kurz.	**103**
लालजड़ी	***Macrotomia benthami*** DC.	**103**
	Cynoglossum wallichi.	**103**
	शंखपुष्पी कुल (CONVOLVULACEAC)	
तीस्ता-साँजीन, अफ़स्तीमून	***Cuscuta capitata*** Roxb.	**103**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
आकाशवल्ली	*Cuscuta europaea* Linn.	103
थुन्-युन्-हाँ	*Convolvulus arvensis* Linn.	104
तावन-हा	*Calystegia hederacea.*	104
	जीवन्ती कुल (ASCLEPIDACEAE)	
स्गों-तुक्मों-यूं	*Cynanchum acutum* Linn.	104
	Cynanchum glaucum Wall.	104
	त्रायमाणकुल (GENTIANACEAE)	
तिक्ता, पांगेन, त्रायमाण	*Gentiana moorcroftiana* Griseb.	104
स्पां-ग्यान्-कारपो	*Gentiana elgida* Linn.	104
स्पां-ग्यान्-सरपो	*Gentiana humilis* Stev.	104
स्पां-ग्यान्-सांग्-नक्	*Gentiana flistyla.*	104
कीलचे	*Gentiana tibetica.*	104
कीलचे-कारपो	*Gentiana straminea.*	104
कीलचे-नगपो	*Gentiana dahurica.*	105
त्रायमाण	*Gentiana kuroo* Royle.	105
ग्यातिक, तिक्ता, चिरायता	*Swertia cordata* Wall.	105
चिरायता	*Swertia chirata* Buch-Ham.	106
	Swertia purpurascens Wall.	106
	Swertia canelea Wall.	106
च्याग्-तिक्, मोमा	*Halenia elliptica* D.Don.	106
	कण्टकारी कुल (SOLANACEAE)	
लंगतांन, पारषीक यवानी	*Hyoscyamus niger* Linn.	106
शमशी-चशिमयां	*Hyoscyamus pusillus* Linn.	106
लांग्टन, धतूरे	*Physochlaina praealta* Miers.	107
सुकलो, काकमाची, मकोय	*Solanum nigrum* Linn.	108
	कुटकीकुल (SCROPHULARIACEAE)	
हौंग्लैंग्, कुटकी	*Picrorhiza kurroa* Benth.	108
लुगरू-मुंग्पो	*Pedicularis purpurea* Pennel.	109

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
लुगरू-स्मुग्पो	***Pedicularis oliveriana.***	109
लुगरू-सरपो	***Pedicularis pycnantha*** Boiss.	109
लुगरू-मारपो	***Pedicularis longiflora*** Rudolph.	109
सिंगि-सेरचे	***Verbascum thapsus*** Linn.	109
छिलदुंग	***Veronica javanica*** Blume.	109
वशका	***Veronica ciliata*** Fisch.	109
अवीश	***Hemiphragma heterophylla*** Wall.	109
पयश्चवा	***Lancea tibetica.***	109
पयश्चवा	***Lagatis scraphularia.***	109
	तुलसीकुल (LABIATAE)	
डियांक, दयाकुंजी, जूफा	***Nepeta longibracteata*** Benth.	109
तुंवरा, बन्ययवानी	***Thymus serpyllum*** Linn.	110
जिपची	***Nepeta salviaefolia*** Royle.	110
चिरूंग्-सरपो	***Nepeta cataria*** Linn.	110
चिरूंग्-स्युंग्पो	***Elsholtzia calycocarpa.***	110
चिरूग्-मारपो	***Elsholtzia cristata*** Willd.	110
फोलोलिंग	***Mentha sylvestris*** Linn.	110
स्यांग्-स्वा, उस्तखद्दूस	***Prunella vulgaris*** Linn.	110
लुग्-मुर	***Phlomis kawaguchi.***	111
पिपरमैन्ट	***Mentha arvenisi.***	111
डियांक्	***Dracocephalum heterophyllum*** Benth.	111
जीतुक	***Ajuga lupulina.***	111
जिमतिक्	***Leonurus heterophyllus*** Benth.	111
जिपची-मुग्पो	***Salvia przewalskii.***	111
साथरा, बनतुलसी	***Origanum vulgare*** Linn.	111
	ईसबगोल कुल (PLANTAGINACEAE)	
थरम	***Plantago major*** Linn.	111
नरम	***Plantago tibetica*** Hook.f. & Thoms.	111

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
स्मरंग	*Plantago brachyphylla* Edgew.	111
	VERBENACEAE	
मापेन-छओ	*Verbena officinalis* Linn.	112
	वास्तुक कुल (CHENOPODIACEAE)	
स्ठ्यूं, सुगन्ध-वास्तुक	*Chenopodium botrys* Linn.	112
जंगची-नगपो	*Chenopodium blitum* Hook.	112
जंगची-कारपो	*Chenopodium glaucum* Linn.	112
	आमीलकुल (ELAEAGNACEAE)	
सरचिंग	*Elaeagnus angustifalia* Linn.	112
सरमंगी, तरबूसींग, आमील	*Hippophae rhamnoides* Linn.	113
	Hippophae salicifolia D.Don.	113
	अक्षोडादिवर्ग (JUGLANDACEAE)	
स्तरगा, अखरोट	*Juglans regia* Linn.	113
	चुक्रादिवर्ग (POLYGONACEAE)	
लाचू, रेवन्दचीनी	*Rheum tibeticum* Meissn.	114
चूमचा	*Rheum emodi* Wall.	114
चूमाखची	*Rheum nobile* Hook.f. & Thoms.	114
चूचा	*Oxyria digyna* (L.) Hill.	114
रम्बु	*Polygonum affine* D.Don.	115
स्पागरस, लोभा-छेआ	*Polygonum coriaceum* Linn.	115
घुरची-नगपो	*Polygonum plystachyum* Wall.	115
निर्विषी	*Polygonum rumicifolium* Linn.	115
चीना-छा	*Polygonum aviculare* Linn.	115
रिस-किस्-ठवो	*Polygonum cymosum* Roxb.	115
रम्बु	*Polygonum tubulosum* Boiss.	115
ब्रो, कोट्टु	*Fagopyrum tataricum* Gaertn.	115
चूचा	*Rumex acetosa* Linn.	115
चूचा	*Rumex webbeniana.*	115

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
	ULMACEAE	
युम्बोक, भग्नसन्धानकारी	***Ulmus parvifolia*** Jacq.	**115**
	Ulmus pumila.	**115**
	TAMARICACEAE	
उम्बु	***Myricaria elegans*** Royle.	**116**
उम्बोक	***Myricaria germanica*** Royle.	**116**
	BETULACEAE	
ट्रौंगा, भूर्जपत्र	***Betula utilis*** D.Don.	**116**
	स्नुहीकुल (EUPHORBIACEAE)	
थरनू हिरवी, स्वर्णक्षीरी	***Euphorbia thomsoniana*** Boiss.	**117**
युम्-थिव-धु-जिम	***Euphorbia clarkeana*** Hook.	**117**
थरन्	***Euphorbia imaddeni*** Boiss.	**117**
थरन्-लोंग-छुआं	***Euphorbia tibetica*** Boiss.	**117**
	गोक्षुरादिकुल (ZYGOPHYLLACEAE)	
जेमा, गोक्षुर	***Tribulus terrestris*** Linn.	**117**
	SALICACEAE	
सोयच्यांग्, जलवेतस	***Salix flabbellaris*** Anderss.	**118**
विलो	***Salix angustifolia*** Willd.	**118**
चंगमा	***Salix alba*** Linn.	**118**
	Salix fragilis Linn.	**118**
	Salix pychostachya Anderss.	**118**
	MORACEAE	
सोमवल्ली, होप	***Humulus lupulus*** Linn.	**118**
शहतूत	***morus alba*** Linn.	**118**
	रसोनकुल (LILIACEAE)	
स्कोचे	***Allium augiculatum*** Kunth.	**118**
च्यू-छलमो-अबु	***Allium tuberosum*** Roxb.	**119**
स्गों-पारूपा	***Allium odorum*** Linn.	**119**
	Allium humile.	**119**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
कपीचुंग, सुरंजानभेद	*Tulipa stellata* Hook.	119
अविख्या-यन्पा, क्षीरकाकोली	*Fritillaria cirrhosa* D.Don	119
अविख्या-मैतोक्-सरपो	*Fritillaria roylei* Hook.	119
रांग्ये, मेदा महामेदा	*Polygonatum cirrhifolium.*	120
महामेदा	*Polygonatum verticillatum* Allioni.	120
लुग्में	*Polygonatum cathcarii* Baker.	120
जा-छुई-स्ताग्जी-मेतोक्	*Lilium lankongense.*	120
स्ताग्-जीक्-मेतोक	*Lilium lacifolium.*	120
यन्पा (तिब्बती)	*Lililum sp.*	120
यन्पा (तिब्बती)	*Notholirion hyacinthinum.*	120
ड्रा-वे-लोमा (तिब्बती)	*Cardiocrinum giganteum.*	120
यान्-लिंग्-छओ (तिब्बती)	*Trillum govanianum* Wall.	120
चि-कांग्-थिन	*Smilax borkii.*	120
आवा	*Lloydia serotina* Roxb.	120
चिड़ियाकन्द, शतावरीभेद	*Asparagus filicinus* Buch-Ham.	120
	हरमलकुल (RUTACEAE)	
हरमल	*Peganum harmala* Linn.	121
	IRIDACEAE	
ट्रैज्मा	*Iris ensata* Thumb.	121
मर्नींगे	*Iris kamaonensis* Wall.	121
	हाउबेरकुल (CUPRESSACEAE)	
शुक्पा, हाऊबेर	*Juniperus macropoda* Boiss.	121
	Juniperus communis Linn.	121
	सोमकल्प कुल (EPHEDRACEAE)	
छैलदुंग, छेफट, सोम	*Ephedra gerardiana* Wall.	122
	मुंज्जातक कुल (ORCHLIDACEAE)	
बंगलक शालमपंज्जा	*Orchis latioflia* Linn.	122
संजीटू	*Orchis folifosa* Lindl.	122

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिब्बती/लद्दाखी/संस्कृत नाम	वानस्पतिक नाम	पृष्ठ सं.
वांगलप्-यन्पा	***Spiranthes sinensis.***	123
पुशेलचे	***Denodrobium mobiliforme.***	123
लद्नम्-वुजांग	***Cypridedum tibrticum.***	123
वांगलप	***Gymnadenia crassinerris.***	123
पुशेलचे-लोमा-चेवा	***Loegogyne occltata.***	123
लोलदन, ड्राज्गां	***Bulbophyllum*** sp.	123
चिसिन-छवो	***Habenaria densa.***	123
जीवक-ऋषभक	***Mycrostylis wallichi.***	123
	ARALIACEAE	
मरील-गोनुक्	***Aralia pseudoginseng***	123
	सूरणकुल (ARACEAE)	
अजगरी सौं	***Arisaema wallichinaum*** Hook.	124
तावा	***Arisaema intermedum.***	124
तारवोगुल	***Arisaema flavum.***	124
तवा-लोमा	***Typhonium gigantum.***	124
सुता-सूतेक, वचा	***Acorus calamus*** Linn.	124
	धान्यकुल (GRAMINEAE)	
नस, यव, जौ	***Hordeum vr1Lep*** Linn.	125
	Hordeum nodosum Linn.	125
गन्दुम, गोधूम	***Triticum vulgare*** Linn.	125
जई	***Avena sotora*** Linn.	126
यवस	***Avena fatua*** Linn.	126
चीचा, चीनाक	***Panicum miliaceum*** Linn.	126
छा, कंगु	***Panicum miliare*** Lam.	126
श्यामाक, झंगोरा	***Echinochloa frumentacea*** Link.	126
नृत्यकुण्डल	***Eleusine aegyptiaca*** Desf.	126
कोद्रव, ग्यमरास	***Paspalum scrobiculatum*** Linn.	126

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लद्दाखी/हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	पृष्ठ सं.

खनिज द्रव्य (Mineral Drugs)

व्रागजून, शिलाजीत	**Black-bitumen (Asphaltum)**	**135**
मूंजी, गन्धक	**Sulphar**	**136**
पला, हरताल	**Yellow Arsenic**	**137**
टींछा, कालासुरमा	**Antimoni sulphate**	**138**
सरदो, स्वर्णमाक्षिक	**Copper sulphate**	**139**
सीसा नग्पो, अभ्रक	**Mica**	**141**
स्वर्ण	**Gold**	**142**
मेलचे, जहर मोहरा	**Serpentine**	**142**
स्फटिका	**Quartaz**	**144**
पीलूमणि, संगेयशव		**144**
मंझीरा, वदराश्म	**Fossil**	**144**
बनू	**Fossil**	**144**
चोंजी		**145**
दोजो		**145**
दोरगिस		**145**
यप्पाखरा	**Sodium sulphate**	**146**
पुल, सोड़ा	**Sodium bicarbonate**	**147**
सेरचे		**147**

जान्तव द्रव्य (Animal Drugs)

कस्तूरी	**Musk**	**148**

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आधारभूत सन्दर्भ ग्रन्थ तालिका

1. अवरोल एवं चोपड़ा (1962) 'सम वैजिटेबिल ड्रग रिसोर्सिस ऑफ लद्दाख'

2. समर चन्द कौल (1971) 'ब्यूटिफुल वैलीज़ ऑफ कश्मीर एण्ड लद्दाख'

3. सी.सी.आर.एस. पब्लिकेशन, नई दिल्ली (1978) 'प्रिलिमनरी टेक्नो इकनोमिक सर्वे ऑफ नेचुरल रिसोर्सिस एण्ड हर्बल वेल्थ आफ लद्दाख'

4. कौलेट (1921) 'प्लोरा सिमलेन्सिस'

5. सी.सी.आर.एस. पब्लिकेशन, नई दिल्ली (1991) 'सिक्किम हिमालय का प्रजातीय औषध वानस्पतिक सर्वेक्षण'

6. वैद्य भगवान दास (1976) 'तिब्बतियन मेडिसन विद स्पेशल रिफरेन्सिस टु योगशतक'

7. स्टिवार्ट (1916-17) 'दि प्लोरा ऑफ लद्दाख, वैस्ट्रन तिब्बत'

8. टी.जे. टसरोंग (1986) 'हैन्ड बुक ऑफ ट्रेडिसनल तिब्बतिन ड्रग्स्'

9. केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली (1990) 'आमची फार्मेकोपिया थेरापिटिक्स'

10. केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली (1991) 'आमची सिस्टम आफ मेडिसन एण्ड रिसर्च प्रोवलम्ब'

11. डॉ. मायाराम उनियाल (1980) 'उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका' सी.सी.आर.एस. (भारत सरकार) नई दिल्ली

12. डॉ. मायाराम उनियाल (1989) 'मेडिसिनल प्लोरा ऑफ गढ़वाल हिमालया' श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि., नागपुर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

13. डॉ. मायाराम उनियाल (1991) 'प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञानम्' (सचित्र) बैद्यनाथ आयुर्वेद शोध संस्थान, पटना

14. सी.सी.आर.एस. पब्लिकेशन, नई दिल्ली 'ए प्रिलिमरी स्टेडी आफ मेडिसनल प्लांट्स फ्रोम शुरूवेली इन लद्दाख'

15. डॉ. मायाराम उनियाल (1987-88) 'लद्दाख हिमालय की वनसम्पदा एवं पारम्परिक आमची चिकित्सा' धारावाहिक लेख 'आयुर्वेद विकास'

16. डॉ. मायाराम उनियाल (1976) 'मेडिसिनल प्लान्ट्स ऑफ लाहुलस्पीति फोरेस्ट हि.प्र.' सी.सी.आर.एस. (भारत सरकार) नई दिल्ली

17. डॉ. मायाराम उनियाल (1997) 'उत्तराखण्ड हिमालय की वनौषधियाँ एवं खनिज' बैद्यनाथ आयुर्वेद शोध संस्थान, पटना

18. चोपड़ा, आर. एन. नायर, एस. एल. (1966) 'ग्लासरी आफ इन्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स' (सी. एस. आई. आर.)

19. डॉ. मायाराम उनियाल (1995) 'बिहार के आदिवासी एवं जड़ी-बूटियाँ' बैद्यनाथ आयुर्वेद शोध संस्थान, पटना

20. कीर्तिकर के. आर., बसु वी. डी. (1935) 'इन्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स' (भाग 1 से 4)

21. यादव जी त्रिविक्रम आचार्य (1940) 'द्रव्यगुण विज्ञानम्' (भाग-दो), निर्णय सागर प्रेस, मुबई

Vaidyaraj ... Bhatji
National ... edic Library
Punjabi ... Delhi-26
Call No. ...
Book No.
Acc No. 000024

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

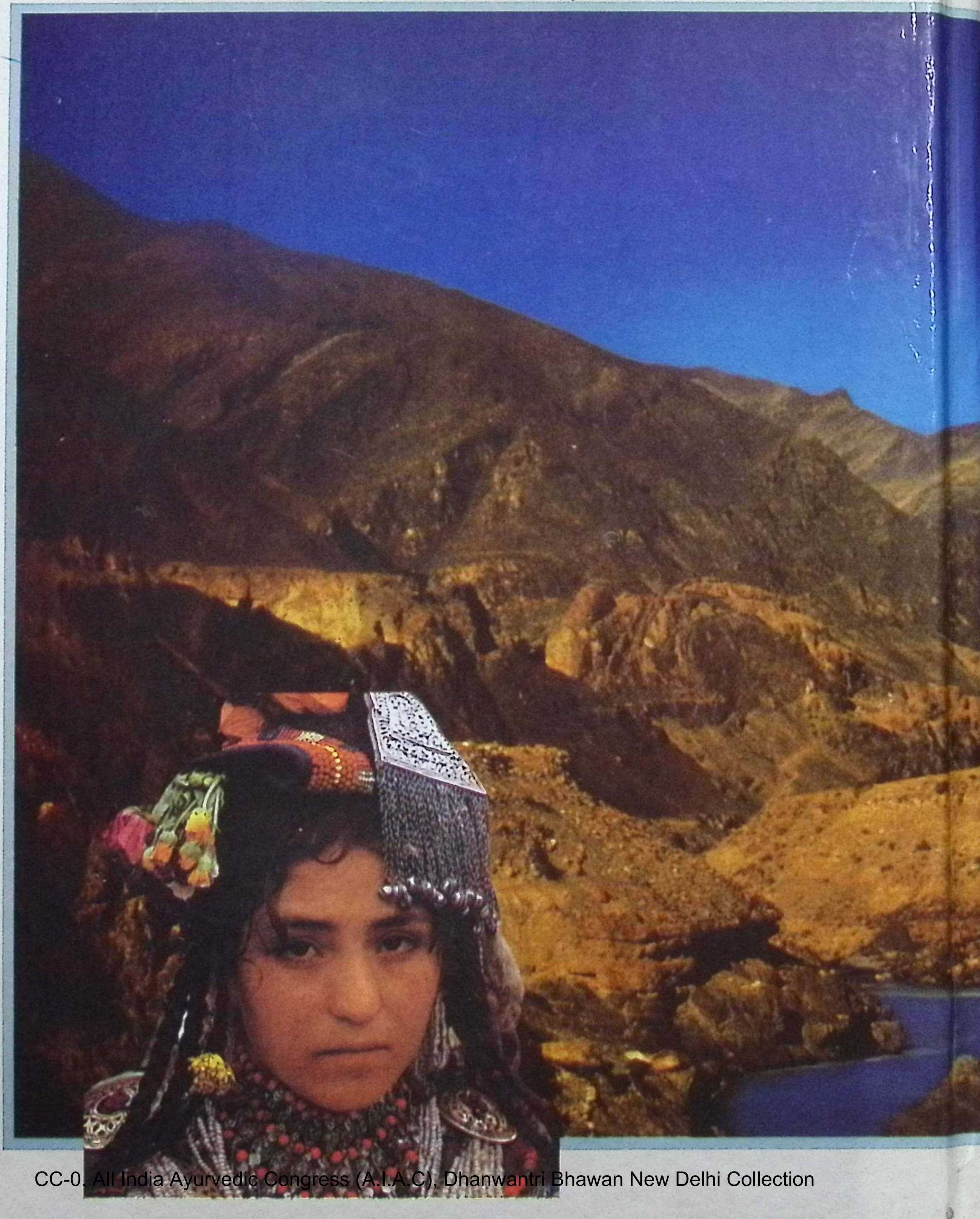

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection